(4) Nucleocytoplasmic Interaction.
(5) Mendel's laws of Heredity.
(6) Variations : Types and genetics basis of variations.

Unit-2. Gene and Genetic Material :

(1) Chemistry of Gene : Nucleic acids and their structure.
(2) Concept of DNA replication.
(3) Nucleosome (Solenoid Model).
(4) Types of genes : Split genes, Overlapping genes and Pseudogenes.
(5) Genetic code.

Unit-3. Linkage and Chromosomal Aberrations :

(1) Gene linkage and recombination.
(2) Sex-determination
(3) Sex-linked Inheritance.
(4) Structural changes in chromosomes : Deficiency , Duplication, Translocation and Inversion.
(5) Numerical changes in chromosomes : Aneuploidy, Polyploidy.
(6) Mutation : Types of mutations and mutagens.

Unit-4. Human Genetics :

(1) Human chromosomes : Human Karyotype and Human Genome Project.
(2) Common genetic disorders.
(3) Multiple factors and blood groups.
  (a) Twins : Fraternal, Maternal and Siamese twins.
  (b) Transgenic and knockout animals and their applications.

Unit-5. Genetic Engineering :

(1) Gene Therapy : Germline and Somatic cell gene therapy.
(2) Recombinant DNA technology.
  (a) Gene cloning.
  (b) Gene library.
  (c) PCR and Hybridization techniques.
  (d) DNA finger printing.

❑❑

अनुशंसित मूल्यांकन विधियाँ		
अनुशंसित सतत् मूल्यांकन विधियाँ (अधिकतम अंक : 100) सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE) अंक : 30 विश्वविद्यालयीन परीक्षा (UE) अंक : 70		
आंतरिक मूल्यांकनः सतत् व्यापक मूल्यांकन (CCE)	क्लास टेस्ट असाइनमेंट/प्रस्तुतिकरण (प्रजेंटेशन)	कुल अंकः 30
आंकलनः विश्वविद्यालयीन परीक्षा समयः 03.00 घंटे	अनुभाग (अ): अति लघुउत्तरीय प्रश्न अनुभाग (ब): चार लघु उत्तरीय प्रश्न अनुभाग (स): दो दीर्घ उत्तरीय प्रश्न	कुल अंक 70

जन्तु-विज्ञान
(अनुवांशिकी)

इकाई 1

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न– 1. आधुनिकतम खोजों के अनुसार गुणसूत्र के आकार, आकारिकी एवं कार्यों का संक्षेप में वर्णन कीजिये। [जीवकी 2013]

अथवा

एक प्रारूपिक गुणसूत्र की संरचना का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

उत्तर– **गुणसूत्र (Chromosomes)**– ग्रीक शब्दों से मिलकर बना है–
(i) Chroma- Coloured (ii) Soma- Body (coloured body)

गुणसूत्र केन्द्रक के अन्दर पायी जाने वाली तन्तुवत संरचनायें हैं। सन् 1875 में सर्वप्रथम स्ट्रान्सबर्गर नामक वैज्ञानिक ने देखा कि कोशिका विभाजन का अध्ययन करते समय केन्द्र के अन्दर कुछ धागेनुमा संरचनायें देखीं। डब्ल्यू वाल्डेयर (W. Waldeyer, 1888) ने इन धागेनुमा संरचनाओं को गुणसूत्र नाम दिया था। इन्हें गुणसूत्र नाम इसलिये दिया गया था, क्योंकि अभिरंजक पदार्थों जैसे ऐसीटोऑर्सिन एवं ऐसीटोकार्मीन के प्रति इनमें अत्यधिक बन्धुता होती है और ये इन अभिरंजकों के रंग को धारण कर लेते हैं।

गुणसूत्रों के ऊपर ही जीन्स (genes) पाये जाते हैं अतः इन्हें जीन के वाहक (Gene Carrier) या आनुवंशिकता के वाहक कहा जाता है। ये गुणसूत्र क्रोमेटिन (Chromatin) नामक पदार्थ के बने होते हैं।

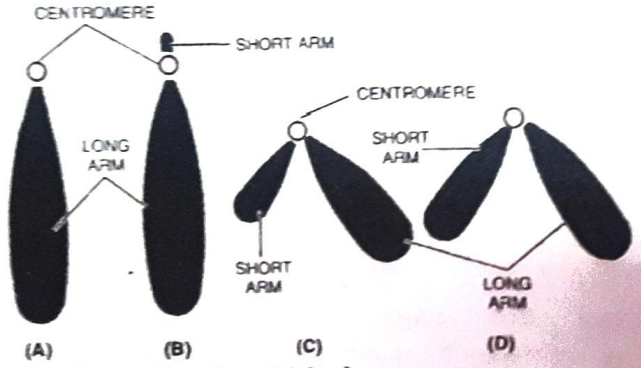
गुणसूत्रों की संख्या (Number of Chromosomes)– प्रत्येक जीवधारी में गुणसूत्रों की संख्या स्थिर रहती है। उच्चवर्गीय पौधों व जन्तुओं की दैहिक कोशिकायें द्विगुणित होती हैं, जबकि इनके युग्मक अगुणित होते हैं। गुणसूत्रों की अगुणित संख्या को जीनोम कहते हैं।

(i) पौधों में सबसे कम गुणसूत्र म्यूकर हीमेलिस (Mucor hemalis) में $2n = 1$ गुणसूत्र पाये जाते हैं, जबकि सबसे अधिक गुणसूत्र ऑफियोग्लासम रेटीकुलेटम (Ophioglossum reticulatum) में $2n = 1260$ गुणसूत्र होते हैं।
(ii) जन्तुओं में सबसे कम गुणसूत्र ऐस्केरिस मेगासिफेला (Ascaris megacephala) में $2n = 2$ गुणसूत्र पाये जाते हैं, जबकि सबसे अधिक गुणसूत्र ऑलेकेन्था (Aulacantha) में $2n = 160$ पाये जाते हैं।

गुणसूत्रों का परिमाप (Size of the chromosomes)– प्रत्येक जीव में गुणसूत्रों की लम्बाई भिन्न-भिन्न होती है। इनकी लम्बाई सामान्यतः 0.25μ से 30μ तक होती है। फफूँद एवं अधिकांश पक्षियों में गुणसूत्रों की लम्बाई 0.25μ तक होती है, जबकि ट्रिलियम (Trilium) नामक पौधे में इनकी लम्बाई 30μ तक होती है। गुणसूत्रों की लम्बाई का मापन मेटाफेज अवस्था में किया जाता है।

गुणसूत्रों का आकार (Shape of the Chromosomes)– कोशिका विभाजन की विभिन्न अवस्थाओं में गुणसूत्रों का आकार बदलता रहता है। अन्तरावस्था (Interphase) में ये पतले, लचीले एवं संकुचनशील (Thin, elastic and contractile) धागों के रूप में दिखाई देते हैं। एनाफेज अवस्था तक इनके सेण्ट्रोमियर (Centromere) स्पष्ट हो जाते हैं। अतः सेण्ट्रोमियर की स्थिति में गुणसूत्र अग्रलिखित प्रकार के हो सकते हैं–

1. **एक्रोसेन्ट्रिक (Acrocentric)**– ये छड़ाकार गुणसूत्र हैं, जिसकी एक भुजा बहुत लम्बी एवं दूसरी भुजा छोटी होने के कारण सेण्ट्रोमियर की स्थिति सबटर्मिनल (subterminal) होती है।
2. **सबमैटासेन्ट्रिक (Submetacentric)**– ये L या उल्टे J के समान होते हैं। इनमें एक भुजा लम्बी व दूसरी छोटी होती है, सेन्ट्रोमियर इन दोनों भुजाओं के मध्य में होता है।
3. **मेटासेन्ट्रिक (Metacentric)**– जब सेण्ट्रोमियर गुणसूत्र की दोनों भुजाओं के मध्य में होता है, तब वह 'V' के आकार का दिखाई देता है। ऐसे गुणसूत्र की दोनों भुजाओं की लम्बाई बराबर होती है।



चित्र– क्रोमोसोम्स के प्रकार

4. **टीलोसेन्ट्रिक (Telocentric)**– यह भी छड़ाकार गुणसूत्र है जिसमें केवल एक ही भुजा होती है। सेण्ट्रोमियर इस भुजा के किनारे पर होता है।

गुणसूत्रों की संरचना (Structure of Chromosomes)– संरचनात्मक रूप से प्रत्येक गुणसूत्र को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **पेलिकिल (Pellicle)**– यह गुणसूत्र की सबसे बाहरी झिल्लीनुमा भित्ति होती है। पेलिकिल के अन्दर आधार द्रव्य एवं क्रोमेनिमेटा पाये जाते हैं।
2. **आधार द्रव्य (Matrix)**– पेलिकिल की आन्तरिक सतह में पाये जाने वाला द्रव्य जिसमें क्रोमोनिमेटा पाये जाते हैं, उसे आधार द्रव्य कहते हैं।
3. **क्रोमेटिड एवं क्रोमोनिमेटा (Chromatid and chromonemata)**– मेटाफेज गुणसूत्र को देखने पर प्रत्येक गुणसूत्र दो उप-इकाइयों से युक्त दिखाई देता है, जिन्हें क्रोमेटिड्स कहते हैं। ये क्रोमेटिड आपस में सेण्ट्रोमियर के द्वारा जुड़े रहते हैं।

प्रत्येक क्रोमेटिड में आधार द्रव्य के अन्दर पूरी लम्बाई में कुण्डलित तन्तु पाये जाते हैं, जिन्हें क्रोमोनिमेटा कहते हैं। ये क्रोमोनिमेटा न्यूक्लियोप्रोटीन के धागों का बना होता है, जिन पर जीन्स पाये जाते हैं।

प्रश्न–2. क्रोमोसोम की संरचना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा [भोपाल 2001,12 इन्दौर 2004,12 जबलपुर 2013]

क्रोमोसोम की संरचना व कार्यों का वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– गुणसूत्र की संरचना एवं कार्य– यूकैरियोटिक जीवधारियों में न्यूक्लियोप्लाज्म का मुख्य भाग अनेक कणिकाओं और तंतुओं का बना होता है, जिसे क्रोमेटिन कहते हैं। यह केन्द्रक का सबसे महत्वपूर्ण तथा स्थिर अवयव है। कोशिका विभाजन के दौरान क्रोमेटिन 'निश्चित संख्या' में दण्डाकार रचनाओं का रूप ले लेता है। इन रचनाओं को क्रोमोसोम कहते हैं। केन्द्रक में गुणसूत्रों की संख्या, क्रम तथा रचना जाति विशेष के लिये सामान्यतः सुनिश्चित तथा स्थिर होती है।

गुणसूत्र के विभिन्न भाग– इसमें पाये जाने वाले निम्नलिखित भाग हैं–

(1) प्राथमिक संकीर्णन (Primary constriction)– क्रोमोसोम की संरचना में यह प्रथम संकीर्णन कहते हैं। यह क्रोमोसोम को दो भागों में विभाजित करता है।

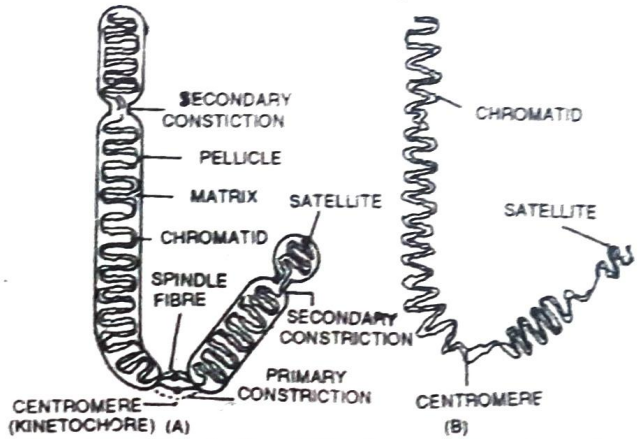


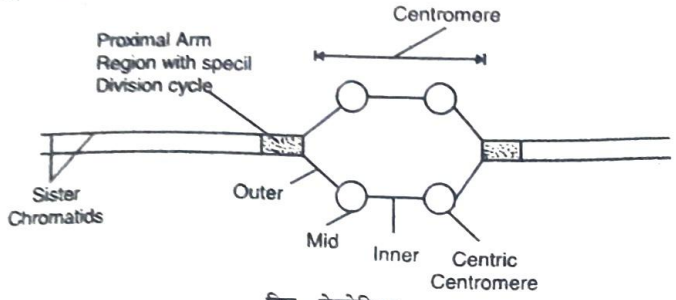
Fig. Structure of typical somatic chromosome at anaphase of mitosis

(2) सेन्ट्रोमियर (Centromere)– यह प्राथमिक संकीर्णन के क्षेत्र में स्थित होता है। यह कोशिका विभाजन के समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ज्यादातर इनकी संख्या एक गुणसूत्र में दो होती है। लेकिन कभी-कभी इनकी संख्या अधिक भी हो सकती है। सेन्ट्रोमियर की संख्या के आधार पर क्रोमोसोम निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

(A) मोनोसेन्ट्रिक (B) डाइसेन्ट्रिक
(C) पोलीसेन्ट्रिक (D) एसेन्ट्रिक
(E) डिफ्यूस्ड।

(3) **द्वितीयक संकीर्णन**– कभी-कभी गुणसूत्र पर प्राथमिक संकीर्णन के अतिरिक्त एक द्वितीयक संकीर्णन होता है। अन्तरावस्था में यह न्यूक्लियोलस के निर्माण में सहायता करता है।

(4) **सेटेलाइट**– क्रोमोसोम के सिरे के समीप स्थित सेन्ट्रोमियर वाले गुणसूत्र में घुण्डीनुमा भाग सेटेलाइट कहलाता है।



चित्र– सेण्ट्रोमियर

(5) **टेलोमीयर्स**– ये गुणसूत्र में स्थित विशिष्ट सिरे होते हैं, जो क्रियात्मक भिन्नता एवं ध्रुवता प्रदर्शित करते हैं।

(6) **क्रोमोटिड्स**– मेटाफेज प्रावस्था में गुणसूत्र में दो धागे के समान रचनायें स्पष्ट दिखायी देती हैं। इन्हें ही क्रोमेटिड्स कहते हैं। ये दोनों धागे सेन्ट्रोमिटर से जुड़े रहते हैं। एनाफेज प्रावस्था से सेन्ट्रोमियर के विभाजन होने पर दोनों क्रोमेटिड्स स्वतन्त्र गुणसूत्र का रूप धारण कर लेते हैं।

सेन्ट्रोमियर के कार्य

1. ये कोशिका विभाजन में अणुओं की गति में सहायक होते है, क्योंकि ये गुणसूत्री तर्कु तन्तुओं से जुड़े रहते हैं।
2. ये ट्युबलिन के निर्माण के केन्द्र हैं। जो माइक्रोट्यूबुल्स के प्रोटीन के निर्माण में भाग लेता है।

क्रोमोसोम के कार्य

1. क्रोमोसोम प्राणी के जीवन में विभिन्न जैविक क्रियाओं का नियमन करते हैं।
2. प्राणी में उत्पन्न लक्षणों के परिवर्तन का नियमन करते हैं।
3. इनके हेटरोक्रोमेटिक क्षेत्र न्यूक्लियोलस के निर्माण में सहायक होते हैं।
4. गुणसूत्रों की संख्या एवं संरचना में परिवर्तन के साथ-साथ ही नये-नये परिवर्तित लक्षण प्रकट होते हैं।

प्रश्न–3. क्रोमोसोम्स के रासायनिक संगठन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– क्रोमोसोम्स का रासायनिक संगठन– मुख्यतः क्रोमोसोमस न्यूक्लिक एसिड्स तथा न्यूक्लियो-प्रोटीन्स से निर्मित होते हैं। ये न्यूक्लियक एसिड्स DNA और RNA होते हैं तथा प्रोटीन्स में कम अणुभार वाले प्रोटीन्स जैसे– histone तथा complex high molecular weight proteins होते हैं। क्रोमोसोम के रासायनिक संगठन में निम्नलिखित भाग होते हैं–

(A) Deoxyribonucleoprotein	90%
(i) DNA	45%

(ii) Histone	55%
(B) Residual chromosome	10%
(i) RNA	14%
(ii) DNA	2-3%
(iii) Residual protein	83-86%

Residual protein का स्वभाव एसिडिक होता है, क्योंकि इनमें tryptophan तथा tyrosine अमीनो एसिड्स ज्यादा मात्रा में होते हैं। ये क्रोमोसोम के ढाँचे को बनाती हैं। जिससे न्यूक्लिक एसिड्स जुड़े रहते हैं। DNA तथा प्रोटीन के अणु आपस में आयोनिक अथवा साल्ट लिंकेज से जुड़े रहते हैं। इसके अलावा DNA तथा प्रोटीन के मॉलिक्युल्स के बीच मेटेलिक (जैसे– Ca++, Mg++ तथा Fe++) के द्वारा भी लिंकेज होता है। एक जाति के जन्तुओं की डिप्लॉयड कोशिकाओं में DNA की मात्रा हमेशा एक-सी होती है, भिन्न जातियों में यह अलग-अलग होती है। एक कोशिका में डी.एन.ए. की मात्रा कोशिका में पाये जाने वाले क्रोमोसोम्स की संख्या पर आधारित होती है।

कार्य–

(i) इनके हेटरोक्रोमेटिक क्षेत्र न्यूक्लिओलस के बनाने में मदद होते हैं।
(ii) क्रोमोसोम्स की संख्या तथा संरचना में बदलाव के साथ-साथ ही प्राणी में नये-नये बदलाव के लक्षण देखने को मिलते हैं।
(iii) जन्तु में पैदा हुये लक्षणों के बदलाव को नियमन करते हैं।
(iv) क्रोमोसोम्स किसी जन्तु के जीवन में अलग-अलग फिजियोलॉजिकल क्रियाओं को regulate करते हैं।

प्रश्न–4. मेण्डल के वंशागति के नियमों का वर्णन कीजिये।

उत्तर–(1) लक्षण की इकाई का नियम (Law of unit characters)– इस नियम के अनुसार जीव के विभिन्न लक्षणों की पित्रागति जीन के कारण होती है। जीन जोड़ों में रहते हैं। उदाहरण के लिए, लम्बाई का जीन TT तथा बौने पन का जीन tt है।

(2) प्रभाविता का नियम (Law of Dominance)– इस नियम के अन्तर्गत जीन के जोड़ों में से एक प्रणाली (Dominant) दूसरे अप्रभावी (Recessive) के प्रभाव को दबा देता है, जैसे कि एक संकर क्रांस में F_1 पीढ़ी में सभी पौधे लंबे होते हैं, क्योंकि T (लम्बाई का प्रभावी जीन)t (नाटेपन के अप्रभावी जीन) को दबा देता है।

(3) पृथक्करण का नियम (Law of Segregation)– इस नियम से युग्मक (Gamete formation) के समय जोड़े के जीन एक-दूसरे से पृथक हो जाते हैं और युग्मक में जोड़े का एक ही जीन पहुंचता है। इस नियम को युग्मकों की शुद्धता का नियम (Law of Purity of gametes) भी कहते हैं।

इस नियम के अनुसार गैमीट निर्माण के समय दो एलिलीय जोड (Allelomorpnic pair) पृथक हो जाते हैं तथा जीन के एक जोड़े में से केवल एक ही जीन गैमीट में पहुंचता है, दोनों जीन कभी भी नहीं पहुंचते। जीन की प्रवृत्ति को पृथक्करण (Segregation) कहते हैं। मेण्डल के एक संकर क्रास प्रयोग में F_1 पीढ़ी के पौधों में T तथा t दोनों ही जीन्स थे। एक-दूसरे के साथ लंबी अवधि तक रहने के बावजूद एक-दूसरे से अप्रभावित रहे। इनसे उत्पन्न

युग्मक (Gametes) दो प्रकार के थे। कुछ T तथा कुछ t जीन वाले थे। दूसरे शब्दों में युग्मक या तो विशुद्ध लम्बे (T) अथवा विशुद्ध बौने (t) थे। यही कारण है कि मेण्डेल ने कहा था कि युग्मक सदैव शुद्ध (Pure) होते हैं। वे कभी भी संकर(Hybrid) नहीं होते।

(4) स्वतन्त्र अपव्यूहन का नियम(Law of Independent Assortment)– इसमें दो या दो से अधिक भिन्न लक्षणों वाले जीनों के जोड़े एक–दूसरे से स्वतंत्र होकर युग्मक में आ जाते हैं और निषेचन के समय ये युग्मक आपस में अनियमित ढंग से संयोजित हो जाते हैं।

अर्थात् इस नियम के अनुसार यदि किसी क्रॉस में दो पौधे आपस में दो या उससे अधिक विपरीत गुणों के जोड़ों में भिन्नता हो तो प्रत्येक गुण के जोड़े की वंशागति दूसरे विपरीत गुणों के जोड़े से स्वतंत्र होता है। यदि मेण्डेल के प्रयोग को ध्यान में रखते हुए इस नियम को समझने की कोशिश की जाये तो स्पष्ट हो जायेगा कि मटर में बीज के आकारों का (गोल अथवा झुर्रीदार) वंशागति (inheritance) बीजपत्रों के रंगों (पीला या हरा) के वंशागति के स्वतन्त्र रूप से हुआ।

अतः जब दो जीव या दो से अधिक युग्म विकल्पी लक्षणों में एक–दूसरे से भिन्न होते है तो उनमें से एक लक्षण की वंशागति पर दूसरे लक्षणों की उपस्थिति का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रत्येक जोड़ी विपर्यासी लक्षणों के जीन अन्य विपर्यासी लक्षणो से प्रभावित हुए बिना स्वतंत्र रूप से अपव्यूहन करते हैं।

प्रश्न–5. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(1) एलिलीज (2) जीनोटाइप
(3) फीनोटाइप (4) जीन
(5) समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी

उत्तर– (i) एलिलीज (Alleles or Allelomorph)– एक ही गुण के विभिन्न असामान्य रूपों को प्रकट करने वाले कारकों को एक–दूसरे का एलील या एलिलोमार्फ (Allel or Allelomorph) कहते हैं। जैसे लम्बापन (T) और बौनापन (t) एक–दूसरे के एलील है। इसी प्रकार मटर के युग्मविकल्पी प्रभावी एवं अप्रभावी गुणों वाले गोल बीज (R) एवं झुर्रीदार बीज (r) एक–दूसरे के एलील या एलिलोमार्फ हैं।

(ii) जीनोटाइप (Genotype)– जीवधारियों के आनुवंशिक संगठन को उसका जीनोटाइप कहते हैं जो कि कारकों का बना होता है। जैसे– TT कोशिकाओं के दोनों लम्बे लक्षण वाले कारक जीनोटाइप कहलाते हैं।

(iii) फीनोटाइप (Phenotype)– जीवधारियों के जो लक्षण प्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ते हैं, उसे फीनोटाइप (Phenotype) कहते हैं, जैसे– पौधे का लम्बापन।

(iv) जीन (Gene)– मेण्डेल के अनुसार जीवों का प्रत्येक लक्षण उनकी जैविक कोशिकाओं के कोशिका द्रव्य में स्थित एक जोड़ी कारकों (Factors) या निर्धारकों द्वारा निर्धारित होता है। मेण्डेलियन कारक या निर्धारकों को आधुनिक आनुवंशिकी के अनुसार जीन कहते हैं। ये जीन ही जीव के जैविक लक्षणों को निर्धारित करते हैं। यह आनुवंशिक

पदार्थ DNA की क्रियात्मक इकाई हैं। अतः जीन DNA की इकाई हैं जो संतति में किसी लक्षण की वंशागति एवं प्रगटन के लिये उत्तरदायी होता है।

(v) समयुग्मजी एवं विषमयुग्मजी (Homozygous and Heterozygous)- मेण्डेल के अनुसार प्रत्येक जनक (Parents) की कायिक कोशिका में एक ही गुण व्यक्त करने के लिये दो कारक होते हैं। जब दोनों कारक एक समान हों, जैसे (TT, tt, RR, rr) तो ऐसी दशा समयुग्मजी (Homozygous) कहलाती है। इसके विपरीत जब दोनों कारक एक–दूसरे से भिन्न हों तो ऐसी दशा विषमयुग्मजी (Heterozygous) कहलाती है।

प्रश्न–6. लैम्पब्रुश गुणसूत्र की प्राप्ति स्थान संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिये। [भोपाल 2008,10,13]

अथवा

लैम्पब्रुश गुणसूत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2006,12]

उत्तर– लैम्पब्रुश गुणसूत्र (Lampbrush Chromosome)– सन् 1882 में इन क्रोमोसोम सबसे पहले फ्लेमिंग (Flemming) ने प्रेक्षित किया था। फिर इसका नामकरण रूकर्ट (Ruckert) ने किया था। ये क्रोमोसोम कशेरूकी (Vertebrates) प्राणियों के ऊसाइट (Oocyte) में पाये जाते हैं, इनका आकार अत्यधिक बड़ा होता है, अतः नग्न आँखों से देखा जा सकता है। इन गुणसूत्रों की मुख्य अक्ष (Main axes) धागे जैसी तथा DNA की बनी होती है। मुख्य अक्ष पर अनेक गोलाकार आकृति के लूप्स (Loops) निकलते हैं। लूप्स (Loops) के मध्य में DNA तथा प्रोटीन्स (Proteins) एवं RNA की बनी मैट्रिक्स (Matrix) होती है। यह सबसे बड़ा गुणसूत्र है जो कि मछलियों, उभयचरों, सरीसृपों तथा पक्षियों के योक से भरपूर प्राथमिक डिम्ब कोशिका ऊसाइट में पाये जाते हैं। ये अर्धसूत्री विभाजन की डिप्लोटीन अवस्था में स्पष्ट दिखाई देते हैं।

आमाप (Size)– इन गुणसूत्रों का आकार अत्यधिक बड़ा होता है तथा इन्हें नग्न आँखों से भी देखा जाता है। इनकी लम्बाई 1000μ (1 mm) तक होती है।

संरचना (Structure)– लैम्पब्रुश गुणसूत्र निम्नलिखित दो भागों से मिलकर बना होता है– 1. मुख्य अक्ष एवं 2. पार्श्वीय लूप।

1. मुख्य अक्ष (Main Axis)– यह लैम्पब्रुश गुणसूत्रों का मुख्य भाग होता है जो कि DNA एवं प्रोटीन्स का बना होता है। मुख्य अक्ष चार क्रोमेटिड्स से मिलकर बना होता है तथा जिस स्थान पर चारों क्रोमेटिड्स जुड़े रहते हैं, उसे काइनेटोकोर (kinetochore) कहते हैं। यहां पर लूप का अभाव होता है।

2. पार्श्वीय लूप (Lateral Loops)– लैम्पब्रुश गुणसूत्र के मुख्य अक्ष से अनेक स्थानों पर पार्श्व लूप निकलते हैं। उनकी लम्बाई 9.5μ से 200μ तक होती है। लूप के मध्य भाग में DNA तथा प्रोटीन्स एवं RNA की बनी मैट्रिक्स होती है। अर्धसूत्री विभाजन की डिप्लोटीन अवस्था में लूप की संख्या सबसे अधिक होती है। लूपों की संख्या इतनी अधिक होती है तथा वे मुख्य अक्ष पर इस प्रकार लगे रहते हैं कि सम्पूर्ण गुणसूत्र एक ब्रुश की भाँति दिखाई देता है अतः इन्हें लैम्पब्रुश गुणसूत्र कहते हैं। ये लूप प्रायः जोड़ों में व्यवस्थित होते हैं।

प्रथम अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis-I) के प्रोफेज की डिप्लोटीन अवस्था में ये क्रोमोसोम स्पष्ट तथा लम्बे दिखायी देते हैं और लम्बाई 1000 μ तक होती है। इस अवस्था में लैम्पब्रुश क्रोमोसोम की हेटेरोक्रोमेटिक (Heterochromatic) केन्द्रीय अक्ष दिखायी देती है। इस अक्ष

पर अनेक जोड़ों में लूप्स विन्यस्त होते हैं। प्रत्येक ऐसी लूप की लम्बाई लगभग 10–15 μ तक होती है। लूप्स, अक्ष पर इस प्रकार लगे रहते हैं कि वह ब्रुश जैसे दिखायी पड़ते हैं।

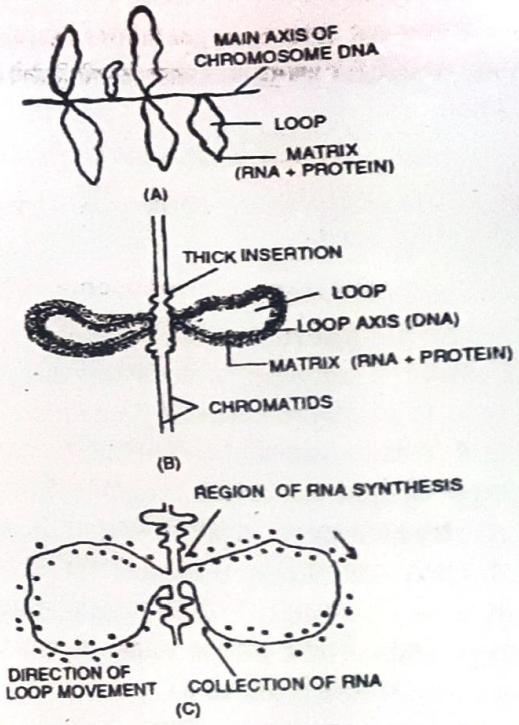


Fig. Lampbrush chromosome : (A) Gross structure, (B) Fine structure, (C) RNA synthesis in a loop

प्रत्येक लूप में एक पतली अक्ष पायी जाती है जो DNA से निर्मित होती है, इस पर अनेक रेशे या फाइबर्स निकलते हैं और लूप की मैट्रिक्स को बनाते हैं जो RNA तथा प्रोटीन की बनी होती है। लूप की अक्ष दोहरी हैलिक्स (Double helix) DNA की बनी होती है। ये लचीली तथा क्रियाशील होती है। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप अध्ययन से यह जाहिर हुआ कि प्रत्येक सिंगल लूप दो समानान्तर स्ट्रेण्ड का बना होता है और प्रत्येक स्ट्रेण्ड 100 से 150A° व्यास का होता है। कालन तथा गाल (Callan and Gall) ने इस स्ट्रेण्डस में DNA का होना प्रमाणित किया और उन्होंने लूप के बड़े आकार के बारे में विचार प्रकट किया कि प्रत्येक लूप में जीन्स की अनेक डुप्लीकेट प्रतियाँ इन प्रत्येक लूप में सुव्यवस्थित होती हैं।

उन्होंने ये भी बताया कि प्रत्येक लूप पेपर एक विशिष्ट जीन सक्रियता से सम्बन्धित है और प्रत्येक लूप में DNA रिपीटिंग DNA क्रम (Sequence) या जीन्स एक क्रम में विन्यसित हैं। अधिक संख्या में जीन की डुप्लीकेट प्रतियों की मौजूदगी का सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि RNA के संश्लेषण की तेज गति सम्भव होती है।

कार्य (Functions)–

1. लेम्पब्रुश क्रोमोसोम RNA एवं प्रोटीन निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।
2. ये गुणसूत्र कुछ सीमा तक अण्डे के योक के निर्माण में सहायक होते हैं।

प्रश्न–7. लार ग्रंथि या पॉलीटीन गुणसूत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2013]

अथवा

बाल्बियानी वलय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

लार ग्रंथि गुणसूत्र अथवा जाइन्ट गुणसूत्र या पॉलीटीन गुणसूत्र की संरचना एवं कार्यों का वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2007,10,13]

उत्तर– **पॉलीटीन गुणसूत्र (Polytene Chromosome)**– इन्हें लार ग्रंथि गुणसूत्र (Salivary gland Chromosome) या जायण्ट क्रोमोसोम (Giant Chromosome) भी कहते हैं। इस तरह के क्रोमोसोम जन्तुओं की लार ग्रंथियों, मैलपीजियन नलिकाओं (Malpighian tubules) वसा बॉडी (Fat body), तथा डिप्टैरा के लार्वा की आँत की एपीथीलियम कोशिकाओं में पाये जाते हैं। यह भी बड़े क्रोमोसोम (Giant Chromosome) के उदाहरण हैं। **ई.जी. बलबियानी** (E.G. Balbiani) ने सन् 1881 में इन बड़े क्रोमोसोम का सर्वप्रथम अध्ययन किया। **कॉलर** ने इन्हें पॉलीटीन क्रोमोसोम कहकर पुकारा। **कॉस्टाफ** (Kostoff, 1930) ने इन क्रोमोसोम की रचना एवं महत्व के बारे में बताया।

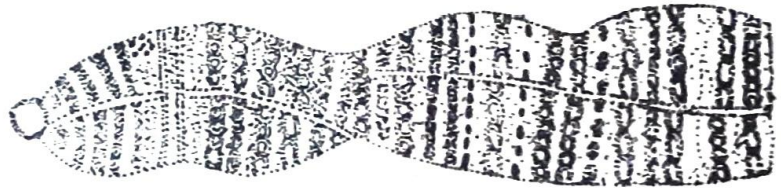


Fig. Polytene chromosome form salivary gland cell of Drosophila melanogaster

पॉलीटीन क्रोमोसोम ड्रोसोफिला मेलेनोगेस्टर (Drosophila melanogaster) में पाये जाते हैं। और सामान्य क्रोमोसोम की अपेक्षा 200–300 गुना बड़े होते हैं। यह बड़े क्रोमोसोम लगभग 200 μ लम्बे होते हैं जबकि साधारण क्रोमोसाम की लम्बाई 5–7 μ तक होती है। ये पॉलीटीन क्रोमोसोम क्रोमेटिड के अनेक लम्बवत् विभाजन और विभाजित भागों के अलग न होने के परिणामस्वरूप उत्पन्न इस क्रिया को एण्डो डुप्लीकेशन (Endo-duplication) कहते हैं। पॉलीटीन क्रोमोसोम में क्रोमेटिड की संख्या 5 से हजारों के बीच होती है। बहुलड़ीय अवस्था के कारण ही इन क्रोमोसोमों को पॉलीटीन क्रोमोसोम कहते हैं।

उपरोक्त लड़ियों में अनेक सूत्र होते हैं जो सरलतापूर्वक विभेदित नहीं किये जा सकते हैं। इस प्रकार बनी हुई लड़ियाँ आपस में निकट आ जाती हैं और इनके सेण्ट्रोमियर भी एक–दूसरे के सम्पर्क में आ जाते हैं। इन पॉलीटीन क्रोमोसोमों में हजारों क्रोमेटोनेमिक लड़ियाँ (Chromatonemic Strands) पायी जाती हैं।

बेण्ड्स तथा इण्टर बेण्ड्स (Bands and Inter-Bands)– पॉलीटीन क्रोमोसोम पे अनुप्रस्थ बेण्ड्स अनुप्रस्थ रूप में एकान्तर क्रम में पाये जाते हैं। गहरे रंग वाले भागों को बेण्ड्स (Bands) और हल्के रंग वाले भागों को इण्टर–बेण्ड्स (Iuterbands) कहते है।

बेण्ड्स (Bands) यूक्रोमेटिक प्रकृति के होते हैं और इनमें पर्याप्त मात्रा में DNA अल्प मात्रा में RNA और अम्लीय प्रोटीन्स होती हैं। ये बेण्ड्स क्रोमोसोम के अक्ष के समकोण पर स्थित होते हैं। इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपिक अध्ययन से पता चला है कि इन बेण्ड्स में न्यूक्लियो हिस्टोन फाइबर्स अधिक मात्रा में संघनित और वलयित (folded) हो जाते हैं। इण्टर बेण्ड भाग में DNA की सान्द्रता कम होती है।

पफ तथा बलबियानी रिंग्स (Puffs and balbiani Rings)– पफ का निर्माण विशेष जीन के नियंत्रण से एक निश्चित समय में होता है। **बीयर मैन तथा बार्ह** (Beerman and Bahr, 1954) ने पफ की सूक्ष्म रचना का अध्ययन किया और बताया कि पफ उस रीजन का प्रतिनिधित्व करता है जहाँ सख्ती से कुण्डलित (Tightly coiled) क्रोमोसोम फाइबर खुलकर लूप्स बनाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि पफिंग बेन्ड में इण्डीविजुअल क्रोमोमियर्स की अकुण्डलन (Unfolding) के कारण बनते हैं। इसलिये इन वैज्ञानिकों ने पफ को सक्रिय जीन्स माना है जो RNA संश्लेषण संस्थान का प्रतिनिधित्व करते हैं।

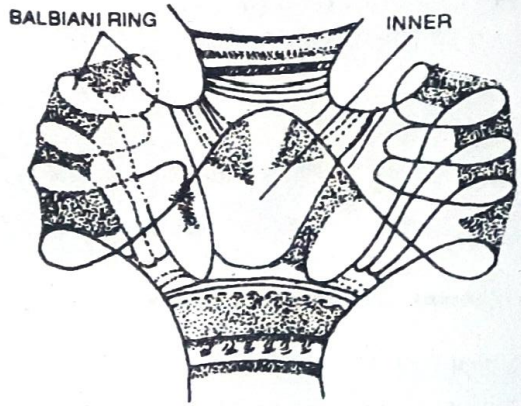


Fig. Polytene chromosome of Salivary gaind of Drosophila showing the Balbiani rings

कुछ पफ्स छोटे जबकि कुछ बड़े आकार के होते हैं। वे क्षेत्र जिसमें पफ्स होते हैं उसको बलबियानी रिंग्स (Balbiani Rings) कहते हैं। इन संरचनाओं के परिणामस्वरूप क्रोमोसोम मोटे और रोयेंदार प्रतीत होते हैं। इन पफ्स का मुख्य कार्य क्रोमोसोम की चयापचय क्रियाशीलता और लारग्रन्थि से स्त्राव कि क्रियाशीलता को आरम्भ करना होता है।

प्रश्न–8. β– गुणसूत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2007,12 भोपाल 2010,13]

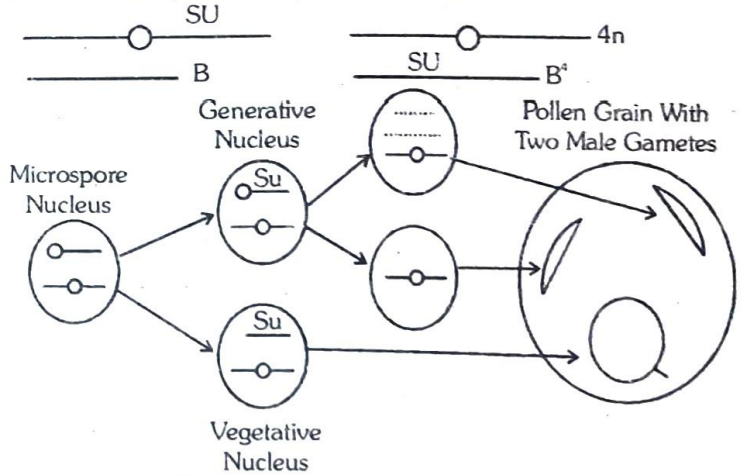
अथवा

β– गुणसूत्र के बारे में आप क्या जानते हैं? संक्षेप में वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– कुछ पौधे एवं जन्तुओं के केन्द्रक में सामान्य पूरक क्रोमोसोमों के अतिरिक्त कुछ छोटे तथा हेटेरोक्रोमेटिक क्रोमोसोम्स पाये जाते हैं। इस प्रकार के क्रोमोसोम्स को अधिसंख्यक

(Supernumary) या सहायक (Accessary) था β– क्रोमोसोम्स कहते है। इसकी संख्या एक ही प्रजाति में, एक ही जीन्स के विभिन्न प्रजातियों में विविधता प्रदर्शित करती है। इनको विल्सन (Wilson) ने सन् 1905 में मेटाडोनियम (Metadonium) कीट में खोजा था। इस प्रकार के क्रोमोसोम्स सामान्यतः सरलतापूर्वक प्रेक्षित नहीं किये जा सकते क्योंकि यह अनियमित रूप से बिखरे रहते हैं। ये क्रोमोसोम्स अन्य छोटे क्रोमोसोम्स से अभिरंजन गुण (Staining Property) प्रदर्शित करते हैं।

ऐसी सम्भावना व्यक्त की गई है कि ये क्रोमोसोम सम्भवतः सामान्य क्रोमोसोम से ही उत्पन्न होते हैं। ये क्रोमोसोम अपसारी विकास (Divergent evolution) के कारण, आकारिकी में पूर्णतः विभिन्न प्रकार के होते हैं। β– क्रोमोसोम में DNA अधिक मात्रा में पाया जाता है। मक्का में इन क्रोमोसोम को रेडाल्फ (Radolph) ने 1928 में तथा लोंगले (Longely) ने 1972 में खोजा था। मक्का में 34, β– क्रोमोसोम होते हैं और सभी कोशिकाओं में पाये जाते हैं, इस कारण उनमें DNA की मात्रा द्विगुणित आनुवंशिक पूरक के बिना ही पाँच गुना तक हो जाती है। जहाँ तक इन क्रोमोसोम के प्रभाव का सवाल है कि ये पॉलीजैनिक तन्त्र के समान है। यह देखा गया है कि यह सतत् (Continuous) या असतत् प्रकार की विभिन्नताओं (Variations) को उत्पन्न करते हैं।



चित्र– मक्का में द्वितीय माइक्रोस्पोर विभाजन में बी–गुणसूत्र का अवियोजन प्रदर्शित

मक्का की कोशिकाओं में अर्द्धसूत्री विभाजन के अलावा β– क्रोमोसोमों में वरीयतानुसार पृथक्कीकरण (Preferential Segregation) प्रेक्षित करने को मिलता है। परागकण के द्वितीय विभाजन में विभाजित β–क्रोमोसोम के दोनों क्रोमेटिड्स में पृथक्कीकरण नहीं पाया जाता है। अतः यह नवनिर्मित स्पर्म केन्द्रकों में से किसी एक केन्द्रक में वरीयतानुसार आ जाता है।

यह विशिष्ट गैमीट वरीयतानुसार अण्ड केन्द्रक को निषेचित करता है तथा दूसरा गैमीट जिसमें β– क्रोमोसोम नहीं होते हैं सेकेण्डरी केन्द्रक (Secondary nucleus) को निषेचित करता है। उपरोक्त विवरण के समरूप उदाहरण राई (Rye) में प्रेक्षित किया गया है।

अर्द्धसूत्री विभाजन के समय एवं β-क्रोमोसोम के समसूत्री विभाजन के कारण वंशागत वाले विशिष्ट क्रोमोसोम की दर (Frequency) समजात क्रोमोसोम की अपेक्षा अधिक या कम होती है। अतः इस क्रोमोसाम पर जीन्स का पृथक्कीकरण सामान्य न होकर विकृत हो जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि यह जीन्स अपेनी–अपनी संख्या में वृद्धि करते हैं चाहे वह ऐलील्स के समक्ष निर्धारक (Determental) क्यों न हो। इसके समक्ष उदाहरण चूहों में देखने को मिलता है।

ट्रेडेसकेन्शिया ऐडवर्डसिआना (Tredescantia Edwardsina) में 12 सोमेटिक क्रोमोसोम के अलावा लगभग 30 अधिसंख्यकी (Supernumarary) क्रोमोसोम क्रॉसिंग के परिणामस्वयप प्रत्येक केन्द्र में प्राप्त किये गये हैं और इनके सन्दर्भ में यह भी कहा गया है कि इस प्रकार के क्रोमोसोम्स भ्रूण निर्माण के समय कुछ भागों के ऊतकों से विलुप्त (Eliminate) हो जाते हैं पर कुछ पौधों जैसे कि सोरघम (Sorghum) में यह बने रहते हैं।

β– क्रोमोसोम्स मक्का में पृथक्करण को रोकने (Non-disjunction), गेहूँ में अर्द्धसूत्री युग्मन (Meiotic Pairing) राई (Rye) में राइबोसोमल RNA संश्लेषण में भाग लेते हुये पाये गये हैं। यह भी संभावना व्यक्त की गई है कि यह विशिष्ट क्रोमोसोम किसी जाति के चुनाव तथा अनुकूलन में भाग लेते हैं। ब्रेडबरी तथा सहयोगियों (Bradburry etal) के अनुसार आनुवंशिक क्रियाशीलता तथा घनिष्ठ संघनन (Severe condensation) इन क्रोमोसोम्स के सामान्य लक्षण हैं।

प्रश्न–9. केन्द्रक की संरचना एवं कार्य का वर्णन कीजिये।

[सागर 2004,12 भोपाल 2006,13 जीवाजी 2006]

अथवा

केन्द्रक की इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी संरचना का विवेचन कीजिये। [सागर 2007]

अथवा

केन्द्रक की संरचना व कार्यों का वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2005,13 भोपाल 2007]

उत्तर– केन्द्रक झिल्ली की उपस्थिति को सबसे पहले रॉबर्ट ब्राउन ने दर्शाया। इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी का अध्ययन करने पर यह पता चलता है कि यह दो इकाई झिल्ली की बनी होती है। यह संरचना में प्लाज्मा झिल्ली के समान ही होती है, जो प्रोटीन एवं लिपिड्स की बनी होती है। दोनों यूनिट मेम्ब्रेन एक–दूसरे से पेरीन्यूक्लियर अवकाश (Perinuclear Space) के द्वारा पृथक् रहती हैं।

यह अवकाश 100–300A° चौड़ा होता है। प्रत्येक इकाई मेम्ब्रेन की मोटाई 60A° के समतुल्य होती है। बाहरी इकाई झिल्ली मेम्ब्रेन की बाहरी सतह पर अनेक राइबोसोम संलग्न रहते हैं, लेकिन आन्तरिक सतह पर ये अनुपस्थित होते हैं। केन्द्रीय झिल्ली पर अनेक स्थानों पर एण्डोप्लाज्मिक झिल्ली, माइटोकॉण्ड्रिया, गॉल्जीकाय आदि से संलग्न रहती है।

केन्द्रक छिद्र (Nuclear Pores)– केन्द्रकीय झिल्ली में अनेक छोटे–छोटे छिद्र पाये जाते हैं, जिन्हें केन्द्रकीय छिद्र या न्युक्लियर पोर्स (Nuclear Pores) कहते हैं। इनका अवलोकन सबसे पहले केलन एवं टॉक्लिन ने सन् 1950 में किया। इन छिद्रों की संख्या एवं परिमाण अलग–अलग कोशिका में अलग–अलग होता है।

अधिकांश केन्द्रकीय छिद्रों का व्यास 100–1000A° तक होता है। कुछ कोशिकाओं में प्रत्येक केन्द्रक छिद्र गोलाकार संरचना के रूप में होता है जो गोलाकार वलियका (annulus) के द्वारा परिबंधित रहता है। यह वलयिका आठ कणिकाओं, एक एमोर्फस (Amorphous) वलयिका के द्वारा परिबंधित होती है। कुछ अन्य कोशिकाओं में केन्द्रक छिद्र एक पतली झिल्ली के बने एक मध्य पट से घिरे रहते हैं। इस प्रकार की संरचना प्रायः जन्तु कोशिका के केन्द्रक में पायी जाती है, जबकि वनस्पति कोशिकाओं के केन्द्रक में इन संरचनाओं का अभाव होता है। केन्द्रक झिल्ली एवं वलयिका के द्वारा बनी इस जटिल संरचना को पोर कॉम्पलेक्स (Pore Complex) कहा जाता है।

केन्द्रक छिद्र कोशिकाद्रव्यी और केन्द्रकद्रव्य के बीच केन्द्रकीय पदार्थों के आदान–प्रदान करने में सहायक होते हैं। ये छिद्र अनेक दिशाओं में खुल व बंद हो सकते हैं। इनका नियमन किस प्रकार होता है, यह अभी तक ज्ञात नही हो सका है।

केन्द्रकद्रव्य (Nucleoplasm)– केन्द्रक में एक विशेष प्रकार का द्रव्य भरा होता है। इसे न्युक्लियोप्लाज्म या केन्द्रकद्रव्य कहते हैं। यह झिल्ली तथा उपकेन्द्रक के बीच में पाया जाता है जो पारदर्शक, अर्द्धठोस एवं कणिकामय द्रव होता है। इसका रासायनिक संगठन काफी जटिल होता है। यह मुख्य रूप से न्युक्लियो प्रोटीन का बना होता है, लेकिन इसमें अन्य कार्बनिक व अकार्बनिक पदार्थ न्यूक्लिक अम्ल, खनिज लवण, प्रोटीन्स, लिपिड्स आदि पाये जाते हैं।

केन्द्रक जालक या क्रोमेटिन जालक (Nuclear Reticulum or Chromatin Network)– केन्द्रकद्रव्य या न्यूक्लियोप्लाज्म में अनेक धागे के समान कुण्डलित संरचनायें पायी जाती हैं, इन्हें क्रोमेटिन जालक कहते हैं। इनका व्यास 20–40 A° होता है। ये जालक केवल केन्द्रक की इन्टरफेस अवस्था में ही पाये जाते हैं। माइटोसिस एवं मियोसिस विभाजन के दौरान, ये मोटे व फीते के समान संरचनाओं में परिणित हो जाते हैं, जिन्हें गुणसूत्र या क्रोमोसोम्स (Chromosomes) कहते हैं। क्रोमेटिन पदार्थ वस्तुतः दो प्रकार का होता है–

(i) हिटरोक्रोमेटिन (Heterochromatin) (ii) यु–क्रोमेटिन (Euchromatin)

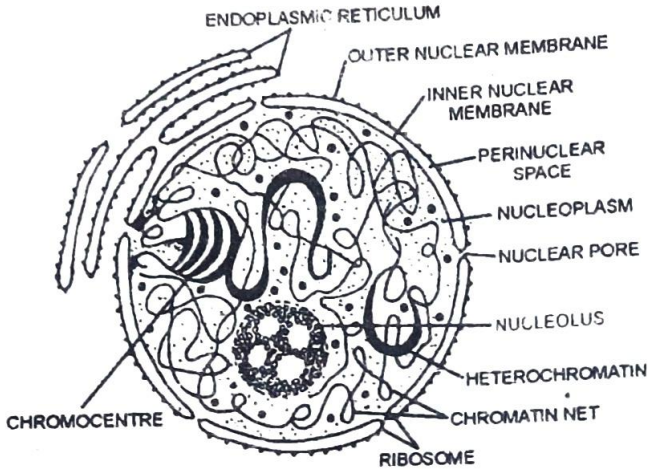
हिट्ज (Heitz) के अनुसार, हिटरोक्रोमेटिन वे क्षेत्र हैं जो इन्टरफेस एवं प्रोफेस के शुरू में संघनित रहते हैं और टेलोफेस में शेष क्रोमेटिन की भांति कुण्डलित न रहकर उनसे अलग रहते हैं। केन्द्रक के संघनित भाग को क्रोमोसेन्टर (Chromocentre) कहा जाता है। हिटरोक्रोमेटिन केन्द्रक के चारों ओर परिधि में पायी जाती है। इसमें DNA अल्प मात्रा में लेकिन RNA अधिक मात्रा में पाया जाता है।

यूक्रोमेटिन– यह क्रोमेटिन का हल्के रंग वाला विकसित भाग होता है। इसमें DNA की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक होती है।

केन्द्रक का रासायनिक संगठन– केन्द्रक में अनेक प्रकार के अकार्बनिक एवं कार्बनिक पदार्थ पाये जाते हैं, जिन्हें अध्ययन की सुविधानुसार निम्न उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है–

1. **प्रोटामिन्स तथा हिस्टोन्स (Protamines and Histones)**– ये सरल व कम अणुभार वाले प्रोटीन्स हैं, प्रोटामिन्स में आर्जिनाइन अमीनो अम्ल होता है, जबकि

हिस्टोन में मुख्य रूप से आर्जीनाइन और लाइसीन अमीनो अम्ल पाये जाते हैं, जबकि हिस्टोन्स अनेक कोशिकाओं में पाये जाते हैं। ये क्रोमोसोम के पोषण और जनन में सहायक होते हैं।



चित्र– केन्द्रक की अल्ट्रा संरचना

2. **हिस्टोन रहित प्रोटीन (Non-histone Proteins)**– इनको अम्लीय प्रोटीन कहते हैं। इनका अणुभार काफी अधिक होता है। इनमें ट्रिफ्टोफेन (Tryphtophan) और टायरोसिन (Tyrosine) होता है। ये क्रोमोसोम के अवशिष्ट प्रोटीन के समान होते हैं। ये केन्द्रक की विभिन्न उपापचय क्रियाओं में भाग लेती है।
3. **न्यूक्लिक अम्ल (Nucleic acid)**– न्यूक्लिक अम्ल 15–30% केन्द्रक के कुल शुष्क भार का निर्माण करते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं– राइबोन्यूक्लिक अम्ल अर्थात् RNA एवं डी–ऑक्सी–राइबोन्यूक्लिक अम्ल अर्थात् DNA होते हैं।
4. **लिपिड्स (Lipids)**– कुल न्यूक्लिक पदार्थ का 3–10% भाग लिपिड होता है जो मुख्य रूप से लाइपो प्रोटीन्स एवं फास्फोलिपिड्स होते हैं। ये फास्लोलिपिड्स एक–दूसरे से काफी भिन्न होते हैं।
5. **अकार्बनिक यौगिक (Inorganic compounds)**– न्यूक्लियोप्लाज्म में कम मात्रा में पाये जाने के बावजूद इनका काफी महत्व होता है। न्यूक्लिोप्लाज्म में फॉस्फोरस,पोटेशियम सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

केन्द्रक के कार्य–

1. यह कोशिका का सबसे महत्वपूर्ण भाग है जो कोशिका की क्रियाओं का नियमन करता है। इस गुण के कारण ही इसे कोशिका का नियंत्रण कक्ष (controll room) कहा जाता है।
2. कुछ आनुवंशिक लक्षणों को साइटोप्लाज्म ही वंशागत करता है।

3. केन्द्रक के क्रोमोसोम के DNA में ही आनुवंशिक लक्षणों की रूपरेखा संकेतों के रूप में निहित रहती है। इन्हीं संकेतों के आधार पर संदेशवाहक RNA का संश्लेषण होता है, जिससे प्रोटीन अणुओं का निर्माण होता है। यही प्रोटीन शरीर की संरचना एवं क्रियाशीलता में महत्वपूर्ण भाग लेते हैं।
4. गुणसूत्रों के रेप्लीकेशन से संतति गुणसूत्र बनते हैं जो कि संतति कोशिकाओं में पहुंच कर नये जीवों का निर्माण करते हैं।

प्रश्न–10. न्यूक्लिओसाइटोप्लाज्मिक इन्टरएक्शन से आप क्या समझते हैं? विस्तृत व्याख्या प्रायोगिक प्रमाणों के साथ कीजिये। [जीवाजी 2004]

अथवा

प्रोटीन के आवागमन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये। [सागर 2008,13]

अथवा

केन्द्रक–कोशिका द्रव्य अन्तः क्रिया पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2007 भोपाल 08]

अथवा

प्रोटीन तथा आर.एन.ए. के आवागमन पर एक नोट लिखिये। [भोपाल 2006,12]

उत्तर– **केन्द्रक–कोशिकाद्रव्यीय अन्तःक्रिया (Nucleo-Cytoplasmic Interaction)**– केन्द्रक एवं कोशिका द्रव्य के बीच होने वाली अन्तःक्रिया में केन्द्रीय झिल्ली में पाये जाने वाले न्यूक्लियर कॉम्प्लेक्स की मुख्य भूमिका होती है। प्रत्येक कॉम्प्लेक्स में लगभग 100 पॉलिपेप्टाइड्स पाये जाते हैं। इन पॉलिपेप्टाइड्स को केन्द्रक छिद्र प्रोटीन कहते हैं। प्रत्येक कॉम्प्लेक्स का भार 125 मेगा डाल्टन के बराबर होता है। इस कॉम्प्लेक्स में एक निष्क्रिय विसरण चैनल होता है जो कि 9mm व्यास वाली नलिका होती है। यह चैनल कुछ प्रोटीनों को छोड़कर सभी प्रोटीनों को अपने में से गुजरने देता है। इस क्रिया में कुछ वाहक अणु भाग लेते हैं तथा इस कार्य में ऊर्जा खर्च होती है। प्रोटीन एवं राइबो–न्यूक्लियो प्रोटीनों के आवागमन में चिन्हक क्रमों (Signal sequences) की आवश्यकता होती है। ऐसे कई चिन्हित क्रमों की पहचान की जा चुकी है।

RNA ट्रान्सपोर्ट (RNA Transport)– न्यूक्लियर पोर कॉम्प्लेक्स की भूमिका RNA के ट्रांसपोर्ट में बहुत महत्वपूर्ण है इसके द्वारा RNA का एक तरफा निर्यात् होता है। t – RNA, Sn – RNA एवं सक्रिय m– RNA का केवल एक तरफा निर्यात् होता है। केन्द्रक में राइबोसोम की छोटी इकाइयों (Sub-units) को जोड़ने में r–RNA सहायक होते हैं, बाद में इन इकाइयों को कोशिका द्रव्य में भेज दिया जाता है। आजकल अनेक कैप बंधक प्रोटीन (Cap binding Proteins) की पहचान की जा चुकी है, जोकि RNA को बाहर की तरफ भेजने में सहायता करते हैं। कुछ कोशिकीय RNA (Cellular RNA) का अन्दर की तरफ गमन होता है। इन RNA के साथ Sn–RNA भी होते हैं, जोकि मोनो एथिल कैप के साथ पहले कोशिका–द्रव्य में जाते हैं और वहाँ पर डाइमेथिल रूप (Diomethyl form) में बदलकर Sn–RNA के साथ जुड़ जाते हैं। यह Sn–RNA बाइपार्टाइट चिन्हक (Bipartite Signal) की सहायता से केन्द्रक में वापस आ जाते हैं।

प्रोटीन ट्रान्सपोर्ट (Transport of Protein)– प्रोटीन सामान्यतः कोशिका–द्रव्य में ही बनते हैं और न्यूक्लियर पोर कॉम्प्लेक्स के माध्यम से केन्द्रक में पहुँचते हैं। इस कार्य के लिये

इम्पोर्टिन–α, इम्पोर्टिन–β, GT Pase are Ran तथा pp 15 जैसी कारकों की आवश्यकता होती है। प्रोटीन के आवागमन को निम्नानुसार समझ सकते हैं–

(i) प्रत्येक प्रोटीन का एक चिन्हक क्रम (Signal Sequence) होता है, जो इसे इम्पोर्टिन –α, व β से जोड़कर कॉम्प्लेक्स बनाता है।

(ii) यह कॉम्प्लेक्स एक रेसेप्टर के रूप में कार्य करता है, जिसकी रेसेप्टर साइट (Receptor site) इम्पोर्टिन –α में होती है।

(iii) इम्पोर्टिन –β बाइण्डिंग डोमेन (Importin – β binding domain) जो कि इम्पोर्टिन –α में होती है, NPC के जरिये आवागमन में सहायता करती है। यह डोमेन एक सक्रिय अभिक्रिया (energy dependent reaction) के द्वारा प्रोटीन का आदान–प्रदान सुचारू बनाती है। इस प्रक्रिया में Ran तथा pp 15 का भी योगदान होता है। इस कार्य हेतु ऊर्जा GT P से प्राप्त होती है।

प्रश्न–11. आनुवंशिकता के भौतिक आधार पर निबंध लिखिये।

अथवा

आनुवंशिकता का भौतिक आधार क्या है? संक्षेप में वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– मेण्डल की खोजों का जब सन् 1900 में पुनः अध्ययन किया गया तब गुणसूत्रों की सही जानकारी के बारे में ज्ञात हुआ। इस समय तक यह ज्ञात हो चुका था कि प्रत्येक जाति में एक निश्चित संख्या में गुणसूत्र पाये जाते हैं। यह विश्वास किया जाता था कि जीन्स गुणसूत्रों पर पाये जाते हैं, परन्तु इसका कोई प्रामाणिक आधार नहीं था। सन् 1901 में **मॉन्टेगोमरी (Montegomery)** ने यह सुझाव दिया कि प्रत्येक दैहिक कोशिका में गुणसूत्र अलग–अलग आकार के जोड़ों में पाये जाते हैं तथा सन् 1902 में सटन (Sutton) ने इसको सिद्ध किया। सन् 1902–03 में गेयर (Guyer) ने यह सुझाया कि गुणसूत्रों पर पाये जाने वाले जीन्स का स्वतंत्र अपव्यूहन होता है और यह रैण्डमली (randamly) होता है।

पृथक्करण और स्वतन्त्र अपव्यूहन के गुणसूत्रीय आधार का विचार सर्वप्रथम सन् 1902 में **सटन (Sutton)** ने रखा था। इन्होंने अपना वाद देते समय यह कहा था कि मातृ तथा पैतृक लक्षणों के संयोजन एवं अर्द्ध सूत्री (Meiosis) विभाजन के समय उनका पृथक्करण होना ही मेण्डल के वंशागतिकी नियमों का भौतिक आधार है। जीन्स गुणसूत्र पर पाये जाते हैं इसके वाद को सटन बावेरी वाद (Sutton Bovery Hypothesis) कहा गया तथा सामान्यतः इसको आनुवंशिकता का गुणसूत्रीय वाद (Chromosomal theory of inheritance) कहते हैं इस वाद के समर्थन में अनेक साक्ष्य हैं, जो कि अग्रलिखित हैं–

1. **पृथक्करण एवं स्वतन्त्र अपव्यूहन के समय जीन्स व गुणसूत्र की स्थिति–** वैज्ञानिकों के शोध से स्पष्ट हो गया कि एक जीन दो रूपों में होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक दैहिक कोशिका में गुणसूत्र के दो रूप (homologous) होते हैं और दोनों ही आगे पहुँचती हैं। मेंडल वंशागतिकी नियमों का एक मूलभूत वाद यह है कि प्रत्येक युग्मक में जीन की केवल एक ही प्रति पहुँचती है। इस घटना को पृथक्करण (Segregation) कहते हैं। मेण्डल और उसके वाद के अध्ययनों से यह पता चलता है कि दो स्वतन्त्र लक्षणों की वंशागति स्वतन्त्र रूप से होती है।

2. **लिंग गुणसूत्र (Sex Chromosome)–** सन् 1902 में **मेक क्लंग (Mc Clung)** ने टिड्डे में X – क्रोमोसोम की खोज की और कहा कि यह गुणसूत्र लिंग निर्धारण (Sex determination) में सहायक होता है। इस तरह से यह पता चला कि लिंग गुणसूत्र पर पाये जाने वाले लक्षणों का भी नियंत्रण जीन्स द्वारा होता है।
3. **लिंग सहलग्नता (Sex–linkage)–** सर्वप्रथम **ब्रिजिस (Bridges)** ने ड्रोसोफिला के अण्डों में X X क्रोमोसोम तथा x– क्रोमोसोम अवस्था देखी जोकि x– क्रोमोसोम के विसंयोजन द्वारा उत्पन्न हुई थी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि विशेष गुणसूत्र होने या न होने से उस पर स्थित लक्षणों के जीन्स की वंशागति भी गुणसूत्र पर निर्भर करती है।
4. **सहलग्नता एवं क्रॉसिंग ओवर (Linkage and Crossing over)–** मॉर्गन (Morgan) ने ड्रोसोफिला की दो लिंग सहलग्न जीन्स के बीच लिंकेज (Linkage) एवं पुनर्संयोजन (Recombination) की घटना का वर्णन किया। कुछ और अध्ययन के पश्चात् उन्होंने सहलग्नता की दूरी के बीच, सम्बन्ध के बारे में बताया। अर्थात् जीन की पुनर्संयोजन क्रोमोसोम पर जीन्स के बीच की दूरी के ऊपर निर्भर करता है। सहलग्न जीन्स के बीच एवं क्रोमेटिन पदार्थ के बीच आदान–प्रदान से होने वाले पुनर्संयोजन के बारे में बतलाया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि जीन्स क्रोमोसोम पर होते हैं।
5. **संरचनात्मक गुणसूत्रीय परिवर्तन (Structural Chromosomal Changes)–** गुणसूत्र में पाये जाने वाले संरचनात्मक परिवर्तन से उस पर पाये जाने वाले जीन्स में भी परिवर्तन होता है। यह संरचनात्मक परिवर्तन विलोपन व द्विगुणन (Deficiency and Duplication) तथा स्थानान्तरण (Translocation) या प्रतिलोमन (Inversion) के रूप में हो सकते हैं। इन क्रियाओं से जीन्स की वंशागति प्रभावित होती है।
6. **संख्यात्मक गुणसूत्रीय परिवर्तन (Numerical Chromosomal Changes)–** संरचनात्मक परिवर्तनों की तरह संख्यात्मक परिवर्तनों के पाये जाने पर गुणसूत्रों में पाये जाने वाले जीन्स की आकृति परिवर्तित होती है तथा उसकी वंशागति प्रभावित होती है। इससे भी हमें 'आनुवंशिकता के गुणसूत्र वाद' का प्रमाण प्राप्त होता है। संख्यात्मक परिवर्तनों के अन्तर्गत मोनोसोमी (2n–1), ट्राइसोमी (2n + 1), नलीसोमी (2n – 2) जैसी विसंगतियाँ होती हैं।
7. **आनुवंशिक पदार्थ की DNA की स्थिति (Location of DNA the Genetic material)–** सभी जीवों में आनुवंशिक पदार्थ DNA तथा प्रोकैरियोट्स में RNA होता है। अतः जिस कोशिकीय अंग में DNA रहता है। उसमें जीन्स अवश्य होता है।
8. **जीन क्लोनिंग (Gene Cloning)–** क्रोमोसोम के DNA से अनेक जीनों को पृथक करके दूसरे जीवों के क्रोमोसोम में प्रविष्ट कराकर अनेक रोगों एवं बीमारियों से बचाव किया जाता है यह विधि रीकॉम्बिनेन्ट DNA तकनीक

कहलाती है। इस प्रकार तैयार होने वाले जीन्स ट्रान्सजीन (transgene) कहलाते हैं। ये ट्रान्सजीन्स दूसरे जन्तु में भी वही लक्षण प्रदर्शित करते हैं जिससे यह प्रमाणित होता है कि जीन्स क्रोमोसोम पर स्थित होते हैं।

अतः उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जीन्स क्रोमोसोम पर स्थित रहते हैं अतः क्रोमोसोम के भौतिक लक्षण से यह तथ्य प्रमाणित होता है कि वंशागति का भौतिक आधार क्रोमोसोम हैं।

प्रश्न–12. विभिन्नताओं पर निबंध लिखिये। [भोपाल 2001,12 इन्दौर 2004,13]

अथवा

सतत एवं असतत विभिन्नताओं पर एक टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2006]

उत्तर– विभिन्नतायें (Variations)– जैव–विकास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि परिवर्तनशील परिस्थितियों के अनुरूप बनने के लिये समस्त जन्तु एवं पेड़–पौधों में परिवर्तन होते रहते हैं। ये परिवर्तन इतने अधिक होते हैं कि एक ही माता–पिता के समस्त बच्चे भी समान नहीं होते। निकट सम्बन्धी जीवों में पाये जाने वाले ये अन्तर विभिन्नतायें कहलाती हैं।

सामान्यतः ऐसा देखा गया है कि एक ही जाति के कोई भी दो जीव एक समान नहीं होते हैं। यहाँ तक कि एक ही माता–पिता की दो सन्तानें भी पूर्णरूप से एक समान नहीं होतीं तथा उनमें कुछ अन्तर होते हैं। ये अन्तर विभिन्नतायें (Variations) कहलाते हैं। जातियों में विभिन्नताओं का एक कारण लैंगिक प्रजनन में क्रोमोसोम्स का पुनर्योजन है। दूसरा कारण वातावरणीय कारक, जैसे– तापक्रम, पानी, प्रकाश आदि हैं। उत्परिवर्तन के द्वारा भी विभिन्नतायें उत्पन्न होती हैं। विभिन्नतायें जैविक विकास का प्रमुख कारक है। विभिन्नताओं के बिना विकास सम्भव नहीं है।

विभिन्नताओं के प्रकार– विभिन्नतायें निम्न प्रकार की होती हैं–

1. दैहिक एवं जर्मिनल विभिन्नतायें

(1) दैहिक विभिन्नतायें (Somatic or Somatogenic Variations)– ये विभिन्नतायें वातावरण के सीधे प्रभाव द्वारा आती हैं। ये विभिन्नतायें किसी जीव के द्वारा अपने जीवनकाल में ही उपार्जित की जाती हैं। ये वंशागत नहीं होतीं अर्थात् माता–पिता से सन्तान में नहीं पहुँचती हैं और न ही ये पूर्वजों से प्राप्त की जाती हैं। ये विभिन्नतायें उस जीव की मृत्यु के साथ ही समाप्त हो जाती हैं। लेमार्क का विकासवाद का सिद्धान्त को उपार्जित लक्षणों की वंशागति (Inheritance of acquired characters) पर आधारित था किन्तु वीजमेन (Weismann) के प्रयोगों ने इस सिद्धान्त को असत्य सिद्ध कर दिया। इन विभिन्नताओं के उदाहरण हैं– (i) खिलाड़ियों की पेशियाँ अत्यधिक विकसित होना, (ii) लुहारों के हाथों की पेशियाँ अधिक विकसित होना, (iii) दुर्घटना के दौरान शरीर के किसी भाग का नष्ट हो जाना।

(2) जर्मिनल विभिन्नतायें (Germinal Variations)– इन्हें ब्लास्टोजीनिक (Blastogenic) विभिन्नतायें भी कहा जाता है। यह जर्मप्लाज्म में पायी जाती हैं। युग्मक जर्मप्लाज्म से बनते हैं जो संयुग्मन (Fusion) के पश्चात् युग्मनज (Zygote) बनाते हैं जो कि वृद्धि करके प्रौढ़ जन्तु बनाते हैं। अतः जर्मिनल विभिन्नतायें एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित हो सकती हैं। ये जीव के जन्म के समय अथवा उसके जीवन–काल में कभी भी

प्रदर्शित हो सकती हैं तथा वंशागत होती हैं। उदाहरण– मनुष्य में अतिरिक्त अंगुलियों का पाया जाना।

2. सतत् तथा असतत् विभिन्नतायें

(Continuous and Discontinuous Variations)

(1) सतत् विभिन्नतायें (Continuous Variations)– ये वे सूक्ष्म परिवर्तन हैं जो औसत अवस्था से घटते तथा बढ़ते रहते हैं तथा एक–दूसरे से अधिक भिन्न नहीं होते, क्योंकि ये विभिन्नतायें घटती–बढ़ती रहती हैं। इस कारण इन्हें धनात्मक एवं ऋणात्मक विभिन्नतायें भी कहते हैं। ये विभिन्नतायें दैहिक तथा जर्मिनल दोनों प्रकार की हो सकती हैं, जबकि डार्विन का विचार था कि सभी सतत् विभिन्नताओं की वंशानुगति होती है जो कि सत्य नहीं है। डार्विन के अनुसार ये विभिन्नतायें जैव विकास एवं जाति की उत्पत्ति के लिये बहुत महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उसके विचार में ये विभिन्नतायें पीढ़ी–दर–पीढ़ी संचित होती रहती हैं और अन्ततः एक नई जाति का निर्माण करती हैं। डार्विन ने इनको विचल विभिन्नतायें अर्थात् विचलन नाम दिया।

(2) असतत् विभिन्नतायें (Discontinuous Variations)– ये विभिन्नतायें प्राणियों में अचानक ही विकसित हो जाती हैं जो अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं एवं कम पाई जाती हैं। ये विभिन्नतायें सामान्य की अपेक्षा काफी विकसित होती हैं और नये रूप में दिखाई देती हैं इसलिये ऐसे परिवर्तन को उत्परिवर्तन (Mutation) भी कहा जाता है। इनका कोई काल–चक्र भी नहीं होता। ये जैव–विकास में प्रमुख रूप से भाग लेती हैं। उदाहरण– (i) मनुष्य तथा दूसरे जीवों में उंगलियों का निश्चित से कम या अधिक होना, (ii) बछड़े में सींग का न होना, (iii) जापानी मुर्गों में लम्बी पूंछ का न होना। ह्यूगो डी व्रीज के उत्परिवर्तन के सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार की विभिन्नतायें जाति के उद्भव एवं विकास के लिये उत्तरदायी हैं। डार्विन ने इन विभिन्नताओं को 'स्पोर्ट्स' (Sports) नाम दिया है तथा बेट्सन (Bateson) ने इनको 'साल्टेटरी वेरिएशन्स' (Saltatory Variations) अथवा 'डिस्कन्टिनुअस वेरिएशन्स' (Discontinuous Variations) कहा।

3. निर्धारी एवं अनिर्धारी विभिन्नतायें

(Determinate and Indeterminate Variations)

(1) निर्धारी विभिन्नतायें (Determinate Variations)– ये वे विभिन्नतायें जो किसी निश्चित दिशा, अनुकूलन की दिशा में होती हैं। निर्धारी या परिमित विभिन्नतायें कहलाती हैं। इन्हें ऑर्थोजीनिक (Orthogenic) विभिन्नतायें भी कहा जाता है। इस प्रकार की विभिन्नताओं को किन्हीं अज्ञात कारकों के द्वारा नियंत्रण होता है।

(2) अनिर्धारी विभिन्नतायें (Indeterminate Variations)– इस प्रकार की विभिन्नतायें किसी भी दिशा में विकसित हो सकती है और ये किसी समय द्वारा नियंत्रित नहीं होतीं। ये मात्र संयोगवश विकसित होती हैं। ये विभिन्नतायें जन्तुओं के लिये लगभग लाभदायक होती हैं तथा उन्हें जीवन–संघर्ष में सहायता देती हैं। उदाहरण– एक ही जाति के विभिन्न जन्तुओं के परिमाण या आकार में भिन्नता।

उपरोक्त प्रकार की विभिन्नताओं के अलावा मेरिस्टिक (meristic) तथा स्वतंत्र विभिन्नतायें (Substantive variations) भी पायी जाती हैं। प्राणियों में अंगों की संख्या की

पुनरावृत्ति से विकसित विभिन्नतायें मेरिस्टिक विभिन्नतायें कहलाती हैं। उदाहरण– (i) स्टार फिश में चार या छः भुजाओं का पाया जाना, (ii) मनुष्य में 13 पसलियों (Ribs) का पाया जाना आदि। प्राणियों या उनके शरीर के किसी भी अंग के आकार, परिमाण या रंग में होने वाले परिवर्तन स्वतंत्र विभिन्नताओं के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण– आंख या कान का आकार, आंखों का रंग, बालों का रंग, शरीर की लम्बाई आदि।

उपरोक्त तीनों विभिन्नताओं के अतिरिक्त निम्नलिखित विभिन्नतायें हैं–

(i) **मेरिस्टिक विभिन्नतायें (Meristic Variations)**– जीवधारियों में अंगों की संख्या में पुनरावृत्ति से उत्पन्न जैसे– मनुष्य के हाथ या पैर में पाँच के स्थान पर छः उंगलियाँ।

(ii) **स्वतंत्र विभिन्नतायें**– नेत्रों के रंग परिवर्तन, बालों के रंग, आँख, नाक, कान का आकार, शरीर की लम्बाई।

(iii) आकारिकीय विभिन्नतायें।

(iv) शरीर क्रियात्मक विभिन्नतायें।

(v) मनोवैज्ञानिक विभिन्नतायें।

(vi) पारिस्थितिक विभिन्नतायें।

विभिन्नताओं के कारण (Causes of Variations)– विभिन्नताओं के कुछ ज्ञात कारक निम्नलिखित हैं–

(1) **वातावरण (Environment)**– वातावरण का जीवधारियों के शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इसमें अन्तर आने पर तुरन्त ही जीवों की शारीरिक रचना प्रभावित हो जाती है। यही नहीं उनकी कार्य–प्रणाली में भी परिवर्तन आ जाता है।

(2) **अन्तर्निहित प्रवृत्ति (Inherent tendency)**– जीवधारियों में एक–दूसरे से भिन्न होने की प्रवृत्ति पायी जाती है। समस्त जीवधारियों की रचना का आधारभूत पदार्थ जीवद्रव्य है, जो रासायनिक दृष्टिकोण से विभिन्न प्रकार के कार्बनिक तथा अकार्बनिक यौगिक के अणुओं से बना होता है। इन अणुओं में सदैव ही रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं अतः किसी भी समान परिस्थितियों में दो जीवों का समान मिलना अति कठिन है। अतः रचना के आधार पर अगर वे समान हैं तो भी स्वभाव कार्यिकी या मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसमें कुछ अन्तर अवश्यम्भावी है।

(3) **द्वैत जनकता (Dual Parentage)**– **बीजवान का मत था कि दो जनकों अर्थात्** (माता–पिता) से उत्पन्न होने के कारण उनकी सन्तानें ठीक उनके समान न होकर कुछ भिन्न अवश्य होती हैं। उनका कथन था कि प्रत्येक जीव को अपने जर्मप्लाज्म का 1/2 भाग माता–पिता से, 1/4 भाग अपने दादा–दादी से, 1/8 भाग अपने परदादा–परदादी इत्यादि से प्राप्त होता है अर्थात् प्रत्येक जीव में अपने माता–पिता की ओर के दोनों वंशों का सम्मिश्रण होता है। अतः उनका एक समान होना असम्भव ही है।

(4) **अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands)**– अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों से उत्पन्न हॉर्मोन जीवों के वर्धन एवं भिन्नन को प्रभावित करते हैं, तथा इन क्रियाओं का

नियमन भी करते हैं। अतः इनकी मात्रा एवं कार्य में थोड़ा–सा अन्तर होने पर जीवधारियों के विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक गुणों में भिन्नतायें आ जाती हैं। अतः अन्तःस्त्रावी ग्रंथियों द्वारा कई प्रकार की दैहिक तथा जर्मिनल विभिन्नतायें उत्पन्न हो जाती हैं।

(5) **उत्परिवर्तन (Mutations)**– उत्परिवर्तन भी सन्तानों में विभिन्नता ला देती है। जब गुणसूत्र व जीन में उत्परिवर्तन होता है तो न्यूक्लियोटाइड का क्रम परिवर्तित हो जाता है, जिससे गुणसूत्र व जीन में परिवर्तन आने पर जीनोटाइप में परिवर्तन आता है तथा जीनोटाइप फिर फीनोटाइप में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार उत्परिवर्तन के कारण सन्तानों में विभिन्नतायें उत्पन्न हो जाती हैं।

प्रश्न–13. विभिन्नताओं का आनुवंशिक आधार का वर्णन कीजिये। [गोपाल 2012,18]

अथवा

विभिन्नताओं का आनुवंशिक आधार क्या है? संक्षेप में वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– विभिन्नताओं का आनुवंशिक आधार (**Genetic Basis of Variations**)–

(I) क्रोमोसोम्स विपथन (**Chromosomal aberration**)– गुणसूत्रों की संख्या, संरचना तथा विन्यास में होने वाले परिवर्तन नये गुणों वाले जीवों की उत्पत्ति करते हैं। ये परिवर्तन अधिकतर अर्द्धसूत्री विभाजन के समय होते हैं। ये निम्न प्रकार के हो सकते हैं–

(1) गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन (**Numerical Changes in Chromosomes**)–

(a) अगुणिता (**Haploidy**)– जब किसी जीव में गुणसूत्रों का एक समुच्चय (Sets) हो तो उसे अगुणित (Haploid) कहते हैं। तथा इस घटना को अगुणिता कहते हैं।

(b) बहुगुणिता (**Poly ploidy**)– जब किसी जीव में गुणसूत्रों के दो सामान्य समुच्चयों से अधिक समुचचय हों तो उसे बहुगुणित (Poly ploid) कहते हैं। तथा इस घटना को बहुगुणिता (Polyploidy) कहते हैं।

(B) गुणसूत्रों के एक सैट में गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन–

(a) मोनोसोमिक (**Monosomic**)– जब क्रोमोसोम्स के एक जोड़े में एक क्रोमोसोम्स की कमी हो जाती है तब मोनोसोमिक जीवों की उत्पत्ति होती है। इस संख्या को 2n-1 से निरूपित करते हैं।

(b) पॉलीसोमिक (**Polysomic**)– गुणसूत्रों के एक सैट में कोई विशेष गुणसूत्र दो के स्थान पर तीन या चार की संख्या में पाया जाता है। अतः इसमें गुणसूत्रों (2 n+1) की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन अर्द्ध–सूत्री कोशिका विभाजन में उस समय होता है। जब एक कोशिका के किसी एक जोड़े या एक से अधिक जोड़ों के गुणसूत्र विभाजन के समय अलग नहीं हो पाते हैं। वस्तुतः एक कोशिका में उस जोड़े के दोनों गुणसूत्र आ जाते हैं। जबकि दूसरी कोशिका में उस जोड़े का एक भी गुणसूत्र नहीं आता है। एक कोशिका में तो गुणसूत्र की संख्या n+1 हो जाती है जबकि दूसरी में संख्या n – 1 हो जाती है।

(2) गुणसूत्रों में संरचनात्मक परिवर्तन (Structural Changes in chromosome)–

(A) एक गुणसूत्र में कुछ जीन्स की कमी या अधिकता–

(a) न्यूनता (Deficiency)– गुणसूत्र का भाग (थोड़ा भाग) गिर जाने पर उस हिस्से के जीन्स का अभाव हो जाता है। इसका विकास में कोई योगदान नहीं है।

(b) डुप्लिकेशन (Duplication)– गुणसूत्रों (Chromosomes) के जोड़े में से एक गुणसुत्र का कुछ हिस्सा टूटकर दूसरे गुणसूत्र से चिपक जाता है। फलस्वरूप एक गुणसूत्र में तो जीन्स का अभाव हो जाता है जबकि दूसरे में इनकी पुनरावृत्ति हो जाती है। डुप्लिकेशन विकास के लिये बहुत महत्वपूर्ण है। ये म्यूटेशन के लिये अधिक जीनी पदार्थ उपलब्ध करते हैं तथा इनके द्वारा विभिन्नताओं तथा विभेदन के लिये अधिक अवसर मिलते हैं।

(B) जीन्स के विन्यास में परिवर्तन–

(a) स्थानान्तरण (Translocation)– किन्हीं असमजात गुणसूत्रों में कुछ भागों के आदान–प्रदान से नयी तरह के गुणसूत्र बन जाते हैं।

(b) इनवर्जन (Inversion)– किसी–किसी गुणसूत्र में उसका कुछ भाग 180° पर घूम जाता है। जिससे उसमें जीन्स के विन्यास का क्रम बदल जाता है और इस तरह से नये प्रकार के गुणसूत्र बन जाते हैं।

Translocation तथा Inversion दोनों ही जातियों तथा उपजातियों (Sub-Species) के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। इन दोनों गुणों को अकेले या साथ–साथ एकत्रित करने पर गुणसूत्र युग्मन करने में असमर्थ हो जाते है। जिसके कारण हाइब्रिड बंध्यता तथा नयी जातियों का विकास होता है।

(II) जीन म्यूटेशन (Gene Mutation)– जीन म्यूटेशन भी विभिन्नताओं के मुख्य कारण होते हैं। ये वास्तव में क्रोमोसोम्स में उपस्थित जीन्स में होने वाले परिवर्तन हैं जो सन्तति में पहुँच सकते हैं परन्तु यह तभी संभव है जब जीन म्यूटेशन जनन कोशिकाओं के क्रोमोसोम्स में होता है।

प्रश्न–14. विभिन्नताओं पर वातावरणीय प्रभाव की विवेचना कीजिये।

उत्तर– बातावरणीय प्रभाव– जीनोटाइप मूल रूप से फीनोटाइप को निर्धारित करता है। निषेचन के समय जन्तु के जीनोटाइप का निर्धारण होता है परन्तु जीव के विकास के समय का पर्यावरण जीव के जैनेटिक पोटेंशियल को प्रभावित करता है।

उदाहरण–

(1) मेण्डल द्वारा प्रयोग किये गये मटर के लम्बे प्रजाति के पौधे की लम्बाई 6 फीट थी। परन्तु ऐसा तभी हुआ जब उसे पर्याप्त प्रकाश, पानी व मृदा परिस्थितियाँ मिल सकीं। इनमें से किसी भी कमी के कारण लम्बाई का जीन प्रभावित हो सकता है।

(2) जोहान्सन के अनुसार जीनोटाइप तथा वातावरण की परस्पर क्रिया भी जीव के फीनोटाइप को प्रभावित करती है। बौने सेम के पौधे के बीज भार पर किये गये प्रयोगों के आधार पर उन्होंने स्व–परागण करने वाली प्रत्येक पीढ़ी से भारी तथा

सबसे हल्के बीजों को चुना। इन बीजों को नयी पीढ़ी के निर्माण के लिये प्रयोग किया गया। वर्षों तक किये गये प्रयोगों की पुनरावृत्ति के बाद उन्हें बीज की एक प्रजाति विशेष के भारी तथा हल्के बीजों के औसत में बहुत कम अन्तर दिखाई दिया। परन्तु अलग–अलग लाइनों के बीजों के औसत भार में ज्यादा अन्तर पाया गया। इससे पता चला कि आनुवंशिकी तथा पर्यावरण दोनों की फीनोटाइप को प्रभावित कर रहे थे।

उपरोक्त किये गये प्रयोगों के परिणामों में से यह पता कि चला किसी लक्षण की वंशागति किस हद तक होती है। यह मुख्यतः उसके जीनोटाइप द्वारा आधारित होता है। मनुष्य के अनेक गुणों जैसे व्यक्तित्व, बौद्धिक प्रखरता तथा मिजाज के विकास में आनुवंशिक कारक तथा पर्यावरणीय कारकों की परस्पर क्रियाओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न–15. न्युक्लिक अम्लों की DNA संरचना का वर्णन कीजिये एवं जैविकीय महत्व पर टिप्पणी लिखिये। [इन्दौर 2004,12 सागर 2008,13]

उत्तर– सभी जीवित कोशिकाओं में दो प्रकार के न्युक्लिक अम्ल पाये जाते हैं–

(1) डी–ऑक्सी राइबो–न्युक्लिक अम्ल (De- oxy ribo-nucleic acid)

(2) राइबो– न्युक्लिक अम्ल (Ribo-nucleic acid)

डी ऑक्सी राइबो–न्युक्लिक अम्ल या DNA (De-oxy ribo-nucleic acid or DNA)– यह जीवितों के शरीर में पाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण यौगिक है। यह एक दीर्घाकार अणु है, जिसमें समस्त जैविक क्रियाओं के संदेश समाहित होते हैं। इसे संदेशों का टेप कहा जाता है। DNA ही आनुवांशिक लक्षणों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित करते हैं।

उपस्थिति (Occurence)– समस्त जीवों में केवल पादप वायरस को छोड़कर DNA पाया जाता है। जन्तु वायरस व बैक्टिरियोफेज में DNA का एक कुण्डलित अणु पाया जाता है। यह प्रोटीन के आवरण के द्वारा घिरा होता है। बैक्टीरिया व यूकैरियोरिक कोशिकाओं में प्लास्टिड्स व माइटोकॉण्ड्रिया में वृत्ताकार DNA पाया जाता है। यह कोशिकाद्रव्य में अनावृत रूप में पाया जाता है। यूकेरियोटिक कोशिकाओं में केन्द्र लम्बा व सर्पिल रूप से कुण्डलित धागे के रूप में DNA पाया जाता है।

आणुविक भार (Molecular weight)– DNA उच्च आणुविक भार वाला दीर्घ अणु है। इसका आणुविक भार कई लाख तक होता है। इसका आणुविक भार 10^6–10^9 तक होता है। कुहन (kuhn,1957) के अनुसार, DNA का आणुविक भार 6×10^9 डाल्टन होता है।

रासायनिक संगठन (Chemical Composition)– DNA तीन प्रकार के यौगिकों का बना होता है–

(1) डी–ऑक्सी राइबोज (De-oxyribose)

(2) फॉस्फोरिक अम्ल (Phosphoric acid)

(3) नाइट्रोजनी क्षार (Nitrogenous base)

नाइट्रोजनी क्षार चार प्रकार के होते हैं–

(अ) एडिनीन (Adenine–A), (ब) थायमीन (Thymine–T), (स) साइटोसीन (Cytosine–C), (द) ग्वानीन (Guanine–G)

उपरोक्त चारों क्षारों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है–

(अ) (Purines)– ये दो रिंग वाले नाइट्रोजनी यौगिक हैं। DNA में एडिनीन व ग्वानीन दो प्यूरीन्स होते हैं।

(ब) पिरिमिडीन्स (Pyrimidines)– ये एक रिंग वाले नाइट्रोजनी यौगिक हैं। इनमें साइटोसीन और थायमीन होते हैं।

DNA की विशेषतायें

(1) इनमें प्यूरीन्स (Purines) एवं पिरिमिडीन्स (Pyrimidines) समान मात्रा में पाये जाते हैं।

(2) एडिनीन की मात्रा थायमीन के तथा साइटोसिन की मात्रा ग्वानीन के बराबर होती है।

(3) किसी विशेष जाति में DNA में A+T/C+G की मात्रा हमेशा निश्चित रहती है। लेकिन विभिन्न वर्गों के जीवों में A+T/C+G के क्षारों के अनुपात में विभिन्नता पायी जाती है। इस अनुपात को विसममिति अनुपात (Dissymmetry ratio) कहा जाता है। मनुष्य में यह अनुपात 1.53 तथा गेहूँ के भ्रूण में यह अनुपात 1.25 होता है।

DNA की आणुविक संरचना– वाटसन एवं क्रिक माडल– DNA का आणुविक अध्ययन X किरणों के डिफरेक्शन तकनीक के आधार पर किया गया है। वाटसन और क्रिक ने DNA के अणु का माडल बनाया है जो इसकी संरचना ही नहीं, अपितु उसके जैविक तथ्यों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराता है। DNA के अणु में न्यक्लियोटाइड्स महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं–

(1) न्युक्लियोटाइड्स (Nucleotides)– एक नाइट्रोजनी क्षार (फास्फेट मूलक रहित) डी–ऑक्सी राइबोज अणु सहित न्युक्लियोसाइड (Nucleoside) कहा जाता है, जबकि न्युक्लियोटाइड में डी–ऑक्सी राइबोज शर्करा के अलावा नाइट्रोजनी क्षार फास्फोरिक अम्ल का अणु पाया जाता है। DNA के एक अणु में चार प्रकार के न्युक्लियोसाइड्स होते हैं–

(अ) एडिनोसाइन (Adenosine) – एडिनीन+डिऑक्सी राइबोज।
(ब) ग्वानोसीन (Guanosine) – ग्वानीन+डिऑक्सी राइबोज।
(स) साइटिडीन (Cytidine) – साइटोसीन+डिऑक्सी राइबोज।
(द) थायमिडीन (Thymidine) – थायमिन+डिऑक्सी राइबोज।

प्रत्येक न्युक्लियोटाइड में एक अणु नाइट्रोजनी क्षार का, एक अणु डीऑक्सी राइबोज का और एक अणु फास्फोरिक अम्ल का पाया जाता है। नाइट्रोजनी क्षार भी चार प्रकार के होते हैं–

(अ) एडीनिलिक अम्ल (Adenylic acid)–
एडिनीन+डिऑक्सी राइबोज+फास्फोरिक अम्ल।

(ब) ग्वानिलिक अम्ल (Guanylic acid)–

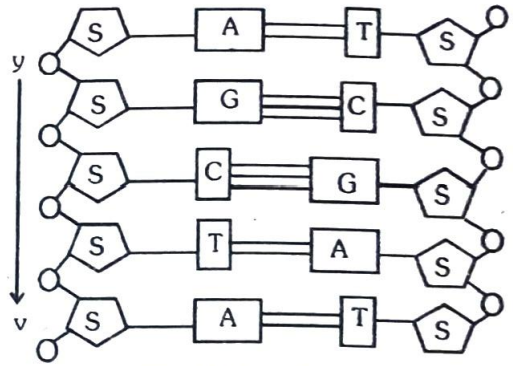
ग्वानीन+डिऑक्सी राइबोज+फास्फोरिक अम्ल।

(स) साइटिडिलिक अम्ल (Cytidylic acid)–
साइटोसिन+डिऑक्सी राइबोज अम्ल+फास्फोरिक अम्ल।

(द) थायमिडिलिक अम्ल (Thymidilic acid)–
थायमिन+डीऑक्सी राइबोज+फास्फोरिक अम्ल।

DNA अणुओं में एडिनिलिक अम्ल, ग्वानिलिक अम्ल, साइटोडिलिक अम्ल व थायमिडिलिक अम्ल हजारों की संख्या में एक निश्चित क्रम में पाये जाते हैं। इस प्रकार जो श्रृंखला का निर्माण होता है उसे पॉलीन्युक्लियोटाइड श्रृंखला कहा जाता है। DNA एक पॉलीमर है। इसके प्रत्येक न्युक्लियोटाइड को मोनोमियर (Monomere) कहा जाता है।

DNA के अणु में न्युक्लियोटाइड की लिंकेज (Nucleotide linkage in DNA molecule)– फास्फेट के अणु ईस्टर लिंकेज के द्वारा DNA अणु के 5वें कार्बन परमाणु के प्रत्येक न्युक्लियोटाइड से संयोजित रहते हैं।



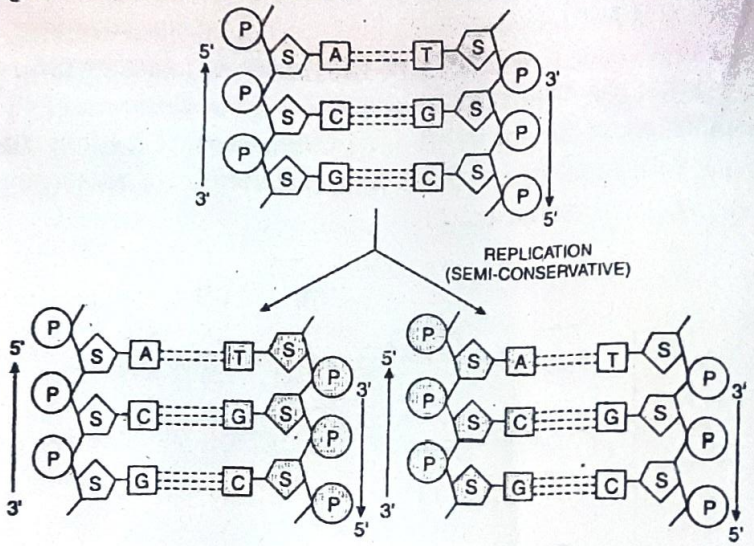
चित्र– DNA अणु की संरचना

संलग्न न्युक्लियोटाइड्स आपस में मिलकर शर्करा–फास्फेट श्रृंखला (Sugar phosphate chain) को बनाते हैं। एक न्युक्लियोटाइड का फास्फेट अणु अगले न्युक्लियोटाइड की डिऑक्सी राइबोज के तीसरे कार्बन परमाणु के साथ जुडा होता है। डी–ऑक्सी राइबोज के प्रथम कार्बन परमाणु से नाइट्रोजनी क्षार जुडा होता है।

ये पॉली न्युक्लियोटाइड श्रृंखला के समानान्तर पाये जाते हैं। पॉलीन्युक्लियोटाइड श्रृंखला के एक सिरे पर पाया जाने वाला शर्करा का C–3 परमाणु तथा दूसरे सिरे का C–5 परमाणु किसी दूसरे न्युक्लियोटाइड से संबंधित नहीं होता है। इन सिरों को क्रमशः 3' व 5' सिरा कहा जाता है। यह श्रृंखला (Chain) सर्पिलाकार होती है।

DNA अणु के पास–पास डी–ऑक्सी राइबो न्युक्लियोटाइड्स एक श्रृंखला में फोस्फो–डाइ एस्टर बोण्ड (Phospho-di ester bond) के द्वारा जुडे होते हैं जो मोनोन्युक्लियोटाइड यूनिट (Mono-nucleotide unit) के डिऑक्सी–राइबोज के 5' कार्बन सिरे को अगले मोनोन्युक्लियोटाइड यूनिट के 3' कार्बन को जोड़ते हैं। वाट्सन व क्रिक के अनुसार, DNA के अणु में दो ऐसी पॉलीन्युक्लियोटाइड श्रृंखलायें कुण्डलित रूप से एक–दूसरे से लिपटी होती हैं।

ये श्रृंखलायें एक–दूसरे के विपरीत होती हैं। इनमें शर्करा फास्फेट श्रृंखला बाहर की ओर पायी जाती है। प्यूरीन्स व पिरिमिडीन्स हेलिक्स के अन्दर की ओर पाये जाते हैं। प्यूरीन्स व पिरिमिडीन्स के बीच में दो पॉली न्युक्लियोटाइड्स हाइड्रोजन बंधों के द्वारा जुडे होते हैं। प्यूरीन्स और पिरिमिडीन्स के बीच में दो हाइड्रोजन बंध होते हैं। ग्वानीन और साइटोसीन के बीच में तीन हाइड्रोजन बंध पाये जाते हैं। एक श्रृंखला में प्रत्येक ग्वानीन के लिए दूसरी श्रृंखला में साइटोसीन होगा। इस प्रकार दोनों श्रृंखलायें एक–दूसरे की पूरक होती हैं।



चित्र– **DNA** की पुनरावृत्ति

दोनों श्रृंखलायें आपस में विपरीत दिशा में होती हैं। एक स्ट्रेण्ड में फास्फो–डाइ–एस्टर लिंकेज 3'–5' दिशा में होता है जबकि दूसरे में फास्फो–डाइ–एस्टर लिंकेज 5'–3' दिशा में होता है। दोनों पॉली न्युक्लियोटाइड स्ट्रेण्ड्स (श्रृंखलायें) एक–दूसरे से 20A° की दूरी पर रहते हैं। दोहरी श्रृंखला का कुण्डल दाँयी ओर घूमा रहता है और इसके प्रत्येक टर्न (मोड़) प्रति 34A° की दूरी पर होता है। एक पूरे टर्न पर 10 मोनो–न्युक्लियोटाइड्स पाये जाते हैं।

DNA की पुनरावृत्ति या प्रतिकृति (Replication of DNA)– वाट्सन और क्रिक के द्वारा प्रतिपादित माडल केवल DNA की संरचना को ही प्रकट नहीं करता है, अपितु यह पुनरावृत्ति के प्रक्रम को भी बताता है। DNA की दोहरी कुण्डलित संरचना के आधार पर वाट्सन और क्रिक ने DNA के अणु के रेप्लीकेशन (पुनरावृत्ति) की सरल विधि का उल्लेख किया है। रेप्लीकेशन (पुनरावृत्ति) के द्वारा DNA के न्युक्लियोटाइड्स के बीच पाये जाने वाले नाइट्रोजनी क्षारकों के बीच हाइड्रोजन बंध लुप्त हो जाता है। क्षार–युग्मन की इस विशेषता के परिणामस्वरूप एक–दूसरे से विलग हुए दोनों चेन या श्रृंखला के प्रत्येक न्युक्लियोटाइड अपने पूरक न्युक्लियोटाइड को कोशिकाद्रव्य से आकर्षित करता है और हाइड्रोजन बंध के द्वारा जुड़ जाता है। इस प्रकार एक नवीन पॉली–न्युक्लियोटाइड श्रृंखला का निर्माण होता है। DNA की द्विकुण्डलिनी की प्रत्येक कुण्डल अपनी पूरक कुण्डल का निर्माण करती है। इस विधि को

सेमी–कंजरवेटिव–विधि (Semi-conservative method) कहा जाता है। DNA अणु की दो पॉलीन्युक्लियोटाइड श्रृंखलाओं में से एक श्रृंखला (चेन) संश्लेषण के द्वारा बनती है तथा दूसरी चेन (श्रृंखला) मूल DNA अणु से आती है। DNA की पुनरावृत्ति या रेप्लीकेशन के दो मत प्रतिपादित हैं–

1. **डिसपर्सिव विधि (Dispersive method)–** इस विधि के अनुसार DNA अणु रेप्लीकेशन की क्रिया के दौरान विखण्डित हो जाते हैं तथा ये खण्ड अनियमित क्रम में सन्तति स्ट्रेण्ड में दिखाई पड़ते हैं।
2. **कंजरवेटिव विधि (Conservative method)–** इस विधि के अनुसार पुनरावृत्ति के बाद, दोनों सन्तति DNA अणु के दोनों स्ट्रेण्डस संश्लेषित होते हैं तथा मूल DNA के अणु के दोनों स्ट्रेण्ड्स साथ–साथ पाये जाते हैं। दोनों विधियों के प्रमाण उपलब्ध न होने के कारण वैज्ञानिकों ने इनको मान्यता प्रदान नहीं की है।
3. **अर्द्ध–संरक्षी विधि (Semi-conservative Method)– DNA की अर्द्ध–संरक्षी पुनरावृति एवं उसकी क्रियाविधि–** इस प्रकार के DNA प्रतिवलन के समय सर्वप्रथम DNA के दोनों स्ट्रेण्ड्स एक–दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इन्हें पैतृक DNA स्ट्रेण्ड (Parental DNA Strand) कहते हैं। ये दोनों स्ट्रेण्ड्स DNA टेम्पलेट (Tempelate) की भांति कार्य करते हैं तथा अपने सम्पूरक स्ट्रेण्ड (Complementary Strand) का निर्माण करते हैं। इसप्रकार नवनिर्मित DNA के दोनों स्ट्रेण्ड्स में से एक स्ट्रेण्ड नया एवं दूसरा स्ट्रेण्ड पैतृक स्ट्रैण्ड होता है। इस प्रकार DNA निर्माण की इस विधि में उसका 50% भाग नया होता है, इसी कारण इसे अर्द्ध–सरंक्षी DNA द्विगुणन कहते हैं।

DNA का जैविक महत्व (Biological Significance of DNA)

1. DNA का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है अनुवांशिकी लक्षणों को आगामी पीढ़ी में स्थानान्तरण करना। अतः DNA अनुवांशिक पदार्थ है।
2. प्रोटीन संश्लेषण के निर्माण में DNA निर्देशक (Director) का कार्य करता है और अपना संकेत मेसेन्जर RNA (m-RNA) द्वारा कोशिका द्रव्य में पहुँचाता है जिससे राइबोसोम पर प्रोटीन निर्माण होता है।
3. DNA अपने कुछ एन्जाइम की उपस्थिति में m-RNA का निर्माण करता है जो संदेश वाहक का कार्य करता है।
4. DNA में द्विगुणन की क्षमता होती है।
5. DNA पर्याप्त स्थायी रचना है अतः इसमें उत्परिवर्तन तथा अनुवांशिकी से सम्बंधित परिवर्तनों की सम्भावनाएं कम रहती हैं।
6. क्रोमोसोम के कुछ DNA से न्यूक्लियोलस का निर्माण होता है।

प्रश्न–16. ट्रान्सफर आर.एन.ए. का क्लावर लीफ मॉडल को समझाइये।

अथवा [जीवाजी 2004,06,13,16 सागर 2007,17]

आर.एन.ए. के विभिन्न प्रकार एवं कार्य पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिये।

[सागर 2004,12 भोपाल 2007,17]

अथवा

RNA की संरचना एवं उनके प्रकारों का वर्णन कीजिये।

अथवा

विभिन्न प्रकार के RNA की संरचना एवं कार्य समझाइये।

अथवा

निम्न पर टिप्पणी लिखिये–

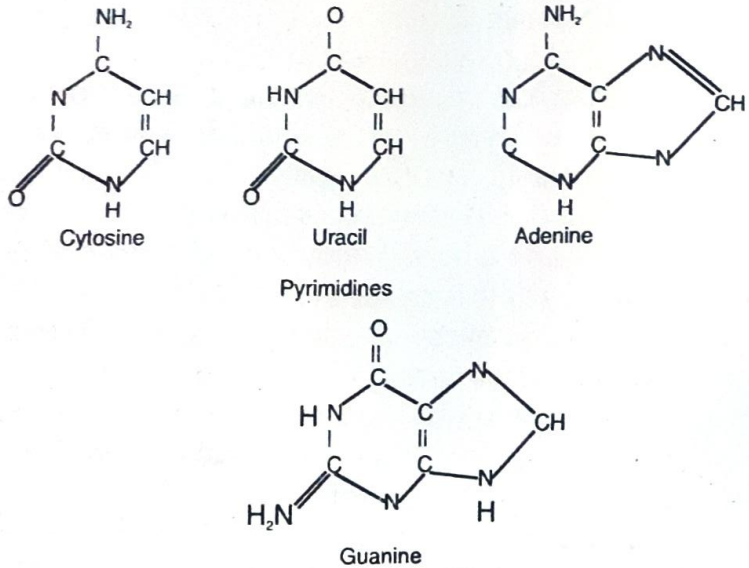
(i) संदेशवाहक RNA (m- RNA) (ii) t- RNA

(iii) t- RNA का क्लोवरलीफ मॉडल

उत्तर– राइबोन्युक्लिक अम्ल - RNA (Ribonuclæic acid – RNA)

उपस्थिति (Occurrence)– प्रकृति में यह एक लम्बे अशाखित धागे के रूप में पाया जाता है जो एकल श्रृंखला (Single strand) के रूप में पाया जाता है। यह सामान्यतः कोशिकाद्रव्य और केन्द्रिका में पाया जाता है। यह कोशिकाद्रव्य में और राइबोसोम्स के रूप में पाया जाता है।

संरचना (Structure)– DNA की तरह RNA चार मोनोमेरिक राइबोटिड्स (Monomeric ribotides) या राइबो–न्युक्लियोटाइडिस का पॉलीमेरिक न्युक्लिक अम्ल है। प्रत्येक राइबो–न्युक्लियोटाइड के अणु में एक पेन्टोज शर्करा डी–राइबोज, एक अणु फास्फेट समूह और एक नाइट्रोजनी क्षारक पाया जाता है। प्यूरीन समूह में एडिनीन व ग्वानीन और पिरिमिडीन समूह में साइटोसीन और यूरेसिल क्षारक होते हैं। RNA के चार क्षारों राइबो–न्युक्लियोसाइड्स एवं राइबो–न्युक्लियोटाइड्स के साथ टेबुलेट कर सकते हैं।



चित्र– RNA के नाइट्रोजनी क्षारकों के संरचना–सूत्र

चारों न्युक्लियोटाइड्स कोशिकाद्रव्य में स्वतंत्रतापूर्वक पाये जाते हैं लेकिन राइबो–न्युक्लियोसाइड्स के ट्राइफास्फेट्स के रूप में मौजूद होते हैं। जैसे– एडिनोसाइन ट्राइफास्फेट

(Adenosine triphosphate – ATP), ग्वेनोसाइन ट्राइफास्फेट (Guanosine triphosphate GTP), साइटीडीन ट्राइफास्फेट (Cytidine triphosphate CTP) और यूरिडीन ट्राइफास्फेट (Uridine triphosphate UTP)

RNA की आणुविक संरचना (Molecular Structure of RNA)– RNA का अणु एक स्ट्रेण्ड अथवा दो स्ट्रैण्ड का बना है किन्तु यह DNA की तरह हेलीकल नहीं होता है। एक स्ट्रेण्ड वाले आर एन ए अनुवांशिक पदार्थ के रूप में पादप विषाणु जैसे– तम्बाकू का मोजेइक वाइरस जन्तु वाइरस जैसे इन्फ्लूएन्जा वाइरस तथा फुट एवं माउथ वाइरस तथा बैक्टीरियोफेज में पाये जाते हैं। प्रोकेरियोट्स तथा यूकेरियोट्स में एक स्ट्रेण्ड के नॉनजेनेटिक आर एन ए एवं टी आर एन ए के रूप में पाये जाते हैं। कुछ पादपों में दो स्ट्रेण्ड वाले किन्तु बिना हेलीकल आर एन ए अनुवांशिक पदार्थों के रूप में पाये जाते हैं। आर एन ए का प्रत्येक स्ट्रेण्ड पोलीन्यूक्लिओटाइडिक होता है अर्थात् यह अनेक राइबोन्यूक्लियोटाइड्स का बना होता है आर एन ए के पोलिन्यूक्लियोटाइड्स स्ट्रेण्ड में राइबोसोम तथा न्यूक्लियोटाइड्स का फॉस्फोरिक अम्ल फॉस्फोडायएस्टर बंध द्वारा जुड़ा रहता है– जैसे जीवधारी जिनमें केवल आर एन ए पाया जाता है। वे अपनी अनुवांशिक प्रक्रिया आर एन ए को ही काम में लाते हैं और इस प्रकार के आर एन ए आनुवांशिक आर एन ए कहलाता है। अन्य जीवधारी जिनमें आर एन ए के साथ डी एन ए भी पाया जाता है। उनमें आर एन ए डी एन ए के सन्देशों को ले जाता है। किन्तु इसका कोई अनुवांशिक कार्य नहीं होता है। अतः इस प्रकार का RNA नानजैनेटिक RNA कहलाता है। यह विषमांगी होता है।

RNA के प्रकार (Types of RNA)– RNA लम्बी अशाखित श्रृंखला के रूप में पाये जाते हैं। ये विभिन्न प्रकार के होते हैं। RNA की श्रृंखला में चारों न्युक्लियोटाइड्स फास्फेट बंध के द्वारा जुडे होते हैं। RNA तीन प्रकार के होते हैं–

1. मेसेन्जर RNA (Messenger RNA or mRNA)– प्रसिद्ध जीव वैज्ञानिक जेकब एवं मोनाड (Jacob and Monad) ने इसका नामकरण किया। यह केन्द्रक में एक पूरक स्ट्रेण्ड के रूप में संश्लेषित होता है और प्रोटीन संश्लेषण के समय क्रोमोसोमल DNA से आनुवांशिक संदेशों को ले जाता है। कोशिका में उपस्थित कुल RNA का 10% भाग mRNA के रूप में होता है। इसे ट्रान्सफार्मेशनल (Transformational), कम्प्लीमेन्टरी (Complementary), ट्रान्सलेशन (Translation) तथा ट्रान्सक्रिप्ट (Transcript) RNA भी कहा जाता है।

RNA का रासायनिक संगठन DNA के सदृश होता है। इसमें थायमिन के स्थान पर यूरेसिल होता है। कोशिकाओं में mRNA की सान्द्रता काफी कम होती है। DNA के द्वारा mRNA का निर्माण होता है जो केन्द्रक से कोशिकाद्रव्य में आ जाता है और केन्द्रक से प्राप्त विभिन्न प्रकार के आदेशों को प्राप्त करके प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को पूर्ण करता है। यह कोशिका में पाये जाने वाले कुल RNA का 3–5% होता है। इसका अणुभार 50,000 होता है।

mRNA की विशेषतायें– mRNA. DNA के दोनों स्तम्भों में से किसी एक पूरक स्ट्रेण्ड्स के रूप में बनता है और इसके क्षारों का विन्यास DNA के समतुल्य होता है, लेकिन इसमें थायमिन के स्थान पर यूरेसिल होता है। इसका संश्लेषण केन्द्रक में होता है जो यहाँ से

विसरित होकर कोशिकाद्रव्य में आ जाता है जो बाद में राइबोसोम्स की सतह पर पहुँच जाता mRNA विभिन्न अमीनोअम्ल से संयोजन करके प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया को पूरा करता है।

2. राइबोसोमल RNA (Ribosomal RNA or rRNA)– यह RNA के कोशिका के अधिकांश भाग में पाया जाता है। कुछ जीवाणुओं में तो यह 80% तक होता है। यह RNA पर पाया जाता है तथा प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में सहायक होता है। राइबोसोम्स दो उपइकाइयों से RNA दो आकारों 23S एवं 16S में संलग्न रहता है, तीसरे प्रकार का RNA 5S होता है जो एश्चीरीविया कोलाई नामक जीवाणु एवं स्तनधारियों की कोशिकाओं में पाया जाता है। rRNA में ग्वानाइन, साइटोसिन, एडिनाइन और यूरेसिल की मात्रा असमान होती है। आधुनिक वैज्ञानिकों की अवधारणा के अनुसार यह प्रोटीन और राइबोसोम्स का संश्लेषण करता है। ऐसी मान्यता है फिर भी rRNA का निश्चित कार्य ज्ञात नहीं है।

rRNA संश्लेषण के प्रकार– यूकेरियोटिक कोशिकाओं में निम्नलिखित तीन प्रकार के rRNA के अणु पाये जाते हैं–

(i) 28S राइबोसोमल RNA– इसका सेडीमेन्टेशन कॉन्टेक्ट (sedimentation contact) 25S और 30S के बीच में होता है जो जीवों की प्रजातियों पर निर्भर रहता है।

(ii) 18S राइबोसोमल RNA.

(iii) 5S राइबोसोमल RNA.

इसी प्रकार प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में भी तीन प्रकार के rRNA पाये जाते हैं–

(i) 23S राइबोसोमल RNA (ii) 16S राइबोसोमल RNA (iii) 5S राइबोसोमल RNA.

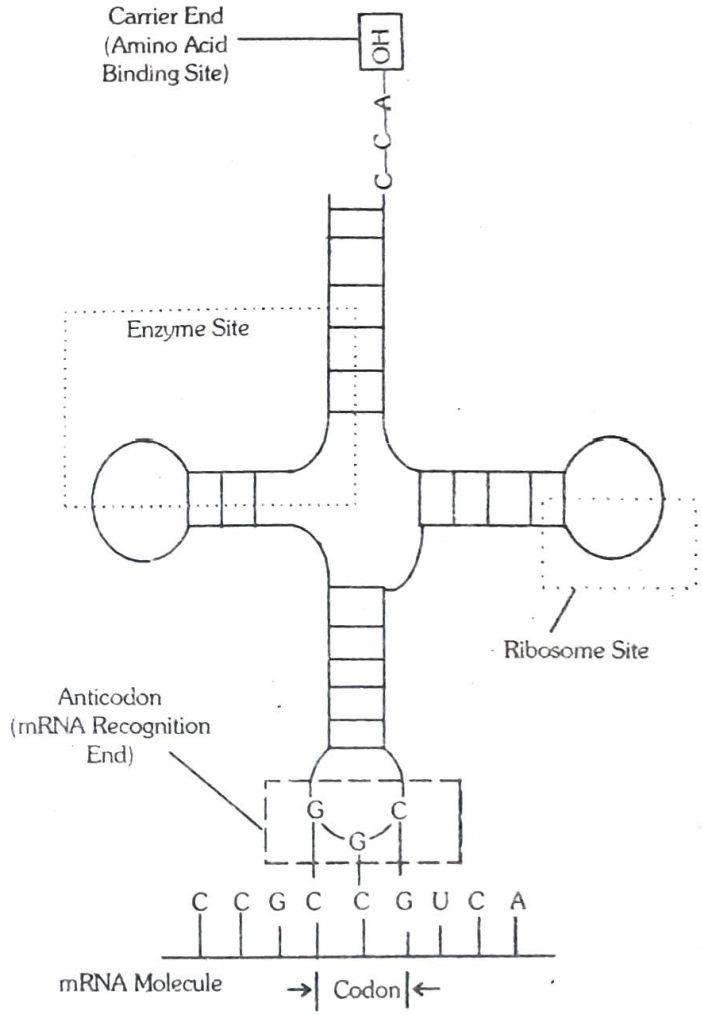
50S राइबोसोमल उप-इकाइयों में 23S राइबोसोमल RNA एवं 5S राइबोसोमल RNA पाये जाते हैं, लेकिन 30S राइबोसोमल इकाइयों में 16S राइबोसोमल RNA पाये जाते हैं। जन्तु और पादपों की यूकेरियोटिक कोशिकाओं में 18S एवं 28S राइबोसोमल RNA अणु क्रोमोसोम एवं केन्द्रिका के न्युक्लियोलर संगठक के राइबोसोमल RNA द्वारा ट्रान्सक्राइब हो जाते हैं तथा राइबोसोमल RNA के परिपक्व कार्यक्षेत्र या स्थल का निर्माण करते हैं। 5S राइबोसोमल RNA द्वारा ट्रान्सक्राइव किया जाता है जो न्युक्लियोलस संगठन के बाहर स्थित रहता है। rRNA के कार्यों के बारे में यद्यपि अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है, लेकिन वैज्ञानिकों को ऐसी मान्यता है कि यह प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में भाग लेता है।

3. सोल्युबल या ट्रान्सफर RNA (Soluble or transfer tRNA)– यह RNA कोशिका द्रव्य में पाया जाता है और कोशिका में पाये जाने वाले RNA का यह 10–20% होता है। tRNA पॉलीपेप्टाइड संश्लेषण में माध्यम का काम करता है तथा प्रत्येक RNA में 75–84 तक न्युक्लियोटाइड्स पाये जाते हैं।

tRNA में कुछ असामान्य बेस जैसे– आइनोसिन (Inosine), स्यूडोयूरीडीन (Pseudouridine) डाइहाइड्रोयूरीडीन (Dihydrouridine) आदि पाये जाते हैं। जी.आर. फिलिप ने RNA की संरचना का अध्ययन क्लोवर लीफ मॉडल की सहायता से किया है।

RNA के क्लोवर लीफ मॉडल का विवेचन नीचे दिया जा रहा है–

यीस्ट के RNA न्युक्लियोटाइड विश्लेषण के आधार पर आर. हॉली (R. Holly, 1963) ने क्लोवर लीफ मॉडल (Clover leaf model) को प्रस्तुत किया। इस मॉडल में चार भुजायें पायी जाती हैं। एक भुजा में एण्टी कोड पाये जाते हैं। क्लोवर लीफ में 87 न्युक्लियोटाइड्स पाये जाते हैं। इनमें से केवल आधे ही सामान्य क्षारक होते हैं। प्रत्येक t RNA के अणु पर चार विशेष स्थानों को आसानी से पहचान सकते हैं।



चित्र– यीस्ट एलेनीन **t- RNA** का क्लोवर लीफ मॉडल

(1) एमीनो अम्ल संलग्न स्थल (Amino acid attachment site),

(2) रिकॉग्नीशन स्थल (Recognition site),

(3) एण्टी-कोडोन या कोडोन रिकॉग्नीशन स्थल,

(4) राइबोसोम के रिकॉग्नीशन स्थल।

t RNA के प्रत्येक अणु में साइटोसीन, ग्वानीन एवं यूरेसिल के अलावा कुछ अपसामान्य क्षार भी पाये जाते हैं जैसे– न्यूडोरिडीन आइसोसीनिक अम्ल, मेथिल ग्वानीन, मेथिल एमीनोप्यूरीन। t RNA का अणु सक्रिय व अक्रिय दोनों ही दशाओं में पाया जाता है।

t RNA के अक्रिय अणुओं में पूर्ण रूप से श्रृंखला के 3 सिरे पर पूरी तरह से आंशिक रूप से नाइट्रोजनी क्षारों के C-CA अनुक्रम का अभाव होता है। जब न्युक्लियोटाइड का यह अनुक्रम जुड़ जाता है तब अक्रिय t RNA का अणु क्रियाशील या सक्रिय हो जाता है।

क्लोवर लीफ मॉडल दो डाइमेन्शन वाला होता है। अभी हाल में ही एस. एम. किम (S.M. Kim) तथा उनके सहयोगियों ने सन् 1973 में बताया कि एक तीन डाइमेंशन वाला L के आकार का कान्फ्यूगरेशन यीस्ट कोशिकाओं के t RNA में पाया जाता है। इस मॉडल के अनुसार t RNA के अणु मुख्य भाग को बनाता है जो कि बहुत कुछ एक–दूसरे के समकोण पर स्थित होते हैं। प्रत्येक भाग बॉण्डस के द्वारा दोहरा हो जाता है। कम्पलीमेण्टरी क्षार को यह साथ–साथ स्थिर (hold) किये हुए रहता है। यीस्ट के t RNA का क्लोवर लीफ मॉडल निम्नलिखित लक्षणों को दर्शाता है–

(1) 3' सिरा ACC एडिनोसिन 5' फास्फेट, साइटोडीन 5' फास्फेट एवं साइटोडीन 5' फास्फेट 5' का बना रहता है। टर्मिनल न्युक्लियोटाइड अथवा एडिनोसिन 5' फास्फेट अमीनो अम्ल का ग्राही होता है और इसका 5' सिरा ग्वानीडीन 5' फास्फेट में समाप्त होता है।

(2) क्लोवर लीफ का पहला लूप 5'–टी स्यूडो AUU-3, जो 3' सिरे से परे होते हैं के क्रम में सात अयुग्मित बेसेस का बना होता है।

(3) एक ओर एक–एक लम्प बाद के लूप के रूप में होता है जो मॉडल के बेक–बोन के सहारे होता है और यह तब सामने आता है जब 3' सिरे पर से हट जाता है।

(4) तीसरा लूप जिसे सेन्ट्रल लूप कहा जाता है वह सात अयुग्मित बेसेस का बना होता है इसके आधार की ओर एण्टीकोडोन होते हैं।

(5) चौथा लूप विशेष क्रियात्मक एन्जाइम का बंधन स्थान है। यह 8–12 अयुग्मित बेसेस का बना होता है।

tRNA का कार्य कोशिका–द्रव्य के एमीनोअम्लों को राइबोसोम तक पहुंचाना होता है। यह प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में मुख्य भाग लेता है।

प्रश्न–17. DNA एवं RNA में अन्तर बताइये। [इन्दौर 2004,12,17 उज्जैन 13,16]

अथवा

DNA एवं RNA में भिन्नतायें स्पष्ट कीजिये। [जबलपुर 2002 जीवाजी 2008]

अथवा

आर.एन.ए. तथा डी.एन.ए. में अन्तर स्पष्ट.कीजिये। [भोपाल 2006,13 जीवाजी 2007]

उत्तर– **DNA तथा RNA में अन्तर**

	DNA	RNA
1.	यह क्रोमोसोम में पाया जाता है तथा यह मुख्य आनुवांशिक पदार्थ है।	यह मुख्य रूप से कोशिका द्रव्य में पाया जाता है लेकिन इसकी कुछ मात्रा केन्द्रिका (nucleolus), न्युक्लियोप्लास्म व क्रोमोसोम में भी पायी जाती है। पादप वायरस में ये आनुवांशिक पदार्थ होते हैं।
2.	यह दो कुण्डलियों का बना होता है जो सर्पिल रूप में कुण्डलित होती हैं और जो एक दूसरे के विपरीत दिशाओं में होती हैं।	यह केवल एक कुण्डल का बना होता है। कभी–कभी एक स्ट्रेण्ड हाइड्रोजन–बन्ध द्वारा यह अपने ऊपर कुण्डलित होता है।
3.	इसमें प्यूरीन्स एवं पिरिमिडीन्स की मात्रा समान होती है।	इसमें इनका समान मात्रा में पाया जाना आवश्यक नहीं है।
4.	इसमें एडिनीन (adenine) एवं ग्वानीन (guanine), प्यूरीन्स एवं साइटोसिन (cytosine) व थायमिन (thymine), पिरिमिडीन्स नाइट्रोजन क्षार होते हैं।	इसमें थायमिन के स्थान पर यूरेसिल पाया जाता है।
5.	इसमें डि–ऑक्सीरिबोज शर्करा पायी जाती है।	इसमें रिबोज शर्करा पायी जाती है।
6.	इसमें क्षार संगठन A/T = G/C का अनुपात 1 होता है।	इसमें ऐसा अनुपात नहीं पाया जाता।
7.	यह आनुवांशिक पदार्थ जिसमें अनेक कोशिकीय व जैविक–क्रियाओं के संदेश निहित होते हैं।	यह केवल प्रोटीन संश्लेषण की क्रिया में भाग लेता है।
8.	DNA अणु की पूरी लम्बाई में बेस पेयर्स का युग्मन होता है।	बेस पेयरिंग केवल गोलाकार क्षेत्र में होती है।
9.	यह सामान्यतः एक प्रकार का होता है।	यह तीन प्रकार का होता है– (i) मेसेन्जर RNA या mRNA, (ii) राइबोसोमल RNA या r RNA, (iii) ट्रान्सफर RNA या t RNA.
10.	यह रेप्लीकेशन के पश्चात् DNA को बनाता है तथा ट्रान्सक्रिप्शन के बाद RNA को बनाता है।	सामान्यतः RNA ट्रान्सक्राइब नहीं करता, लेकिन कुछ वायरस में RNA एक RNA चेन को बना सकता है।

11. यह मुख्य रूप से क्रोमोसोम्स में पाया जाता है।	11. m-RNA क्रोमोसोम्स पर बनता है जो न्युक्लियोलस और कोशिका-द्रव्य में पाया जाता है जबकि, r RNA और t RNA क्रोमोसोम पर बनते हैं, लेकिन ये कोशिका-द्रव्य में पाये जाते हैं।
12. इसमें आनुवांशिक सूचना सन्निहित होती है।	12. DNA में सन्निहित सूचनायें RNA को हस्तान्तरित हो जाती है।
13. इसमें हजारों की संख्या में न्युक्लियोटाइड्स भाग लेते हैं।	13. इसमें अपेक्षाकृत कम न्युक्लियोटाइड्स भाग लेते हैं।
14. यदि गर्म किया जाय तो कुछ निश्चित स्थानों पर धीरे-धीरे ठण्डा होने पर रिनैचुरेशन होता है अर्थात् डिनेचुरेशन आंशिक तौर पर उत्क्रमणीय (reversible) होता है।	14. इसमें मेल्टिंग प्रोसेस की पूर्ण व तुरन्त उत्क्रमणीयता होती है।

प्रश्न–18. DNA के द्विगुणन की विधि का वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2005,09,12]

अथवा

DNA के द्विगुणन या पुनरावृत्ति या प्रतिवलन की क्रियाविधि का सचित्र वर्णन कीजिये।

[भोपाल 2004,06,09,13 सागर 05,10,16]

उत्तर– डी–ऑक्सी राइबोन्यूक्लिक अम्ल के द्विगुणन या पुनरावृत्ति या प्रतिवलन की क्रियाविधि (Mechanism of Replication of De-oxyribonucleic Acid DNA)– कोर्नबर्ग (Komberg, 1935) ने ई. कोलाई (E. Coli) में DNA द्विगुणन अथवा DNA निर्माण की अर्द्ध-संरक्षी क्रिया का अध्ययन किया और बताया कि इस क्रिया में तीन एन्जाइम भाग लेते हैं। इन्हें कोर्नबर्ग एन्जाइम (Komberg Enzyme) कहते हैं।

(i) न्यूक्लिएजेस (Nucleases)

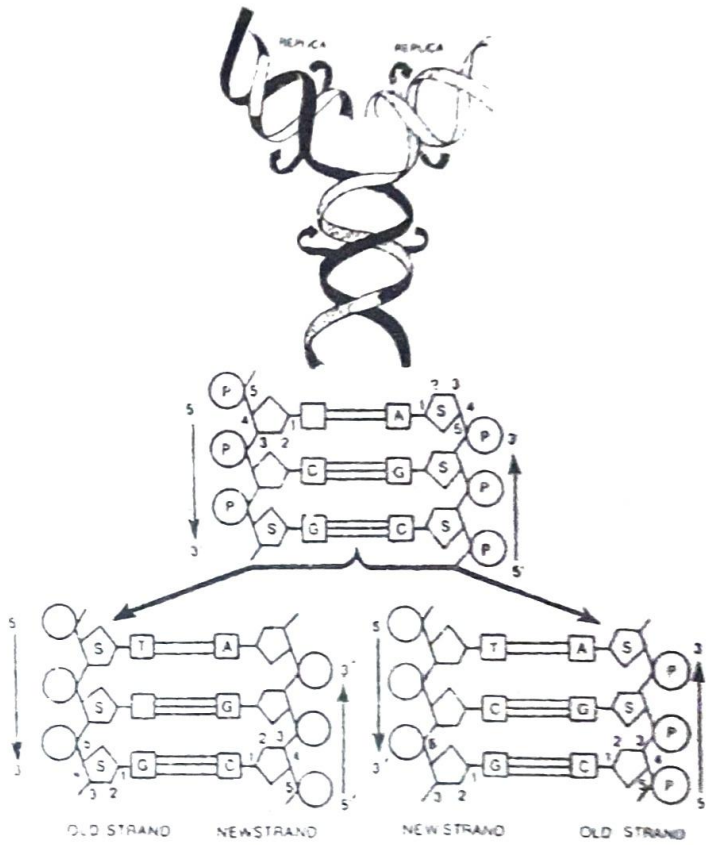
(ii) DNA पॉलीमेरेज (DNA Polymerase)

(iii) DNA लाइगेज (DNA Ligase)

बाद की खोजों से ज्ञात हुआ कि ई. कोलाई (E. Coli) में DNA का द्विगुणन बहुएन्जाइम जटिल (Multienzyme Complex) द्वारा होता है, जिसमें दो दर्जन से अधिक एन्जाइम भाग लेते हैं। इस बहुएन्जाइम जटिल को रिप्लिसोम (Replisome) कहते हैं।

DNA प्रतिवलन या द्विगुणन निम्न चरणों में पूर्ण होता है–

1. सर्वप्रथम DNA के दोनों स्ट्रेण्ड का अकुण्डलीकरण (Unwinding) एक अकुण्डलीकरण प्रोटीन या एन्जाइम DNA हेलिकेज (DNA- Helicase) के द्वारा होता है। यह एन्जाइम दो क्षारकों के मध्य उपस्थित हाइड्रोजन बंधों का जल अपघटन कर देता है, जिससे दोनों स्ट्रेण्ड्स अलग हो जाते हैं।



चित्र– DNA की पुनरावृत्ति

2. अब अकुण्डलित DNA स्ट्रेण्ड के 5′ सिरों पर RNA-प्राइमर (RNA Primer) संलग्न हो जाता है। RNA-प्राइमर के ठीक पीछे DNA- पॉलीमेरेज एन्जाइम संलग्न हो जाता है तथा यहीं से DNA निर्माण की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। DNA पॉलीमरेज-III एन्जाइम DNA की पुरानी श्रृंखला के क्षारकों के अनुरूप क्षारक युक्त DNA के नये खण्डों का निर्माण करता है। इन खण्डों को ओकाजॉकी खण्ड (Okazaki piece) कहते हैं। DNA खण्डों का निर्माण हमेशा 5′→3′ दिशा में होता है।
3. दोनों अकुण्डलित स्ट्रेण्ड में DNA खण्डों का निर्माण पूर्ण होते ही DNA-पॉलीमरेज-I एन्जाइम दो खण्डों के बीच रिक्त स्थान के मध्य आकर RNA प्राइमर को अलग कर देता है।
4. RNA-प्राइमर के अलग होते ही DNA लाइगेज (DNA Ligase) एन्जाइम दो DNA खण्डों के मध्य फॉस्फोडाएस्टर बन्ध का निर्माण करके उन्हें आपस में जोड़

देता है। इसप्रकार DNA के पुराने स्ट्रेण्ड की सहायता से उसके सम्पूरक स्ट्रेण्ड (Complementary Strand) का निर्माण पूर्ण हो जाता है।

DNA का यह द्विगुणन हमेशा द्विदिशि (Bidirectional) होता है।

DNA की अर्द्धसंरक्षी द्विगुणन विधि के प्रमाण (Evidences of Semi Conservative DNA Replication)

मेसेल्सन एवं स्टॉल्स का प्रयोग (Messelson and Stahls Experiments)– मेसेल्सन एव स्टाल्स ने सन् 1958 में DNA की अर्द्धसंरक्षी पुनरावृत्ति की विधि को सिद्ध करने के लिये एक प्रयोग किया

इन्होंने नाइट्रोजन के भारी समस्थानिक(N^{15}) का उपयोग अपने प्रयोग में किया था। इन्होंने ई. कोलाई को N^{15} युक्त संवर्धन माध्यम में कई पीढ़ियों तक संवर्धित किया, जिससे इस जीवाणु के DNA के दोनों स्ट्रेण्ड्स में N^{15} के समस्थानिकों का समावेश हो गया है। जब इन N^{15} युक्त जीवाणुओं को सामान्य नाइट्रोजन (N^{14})वाले संवर्धन माध्यम में संवर्धित किया गया, तब यह पाया गया कि नयी पीढ़ी के जीवाणु के DNA के एक स्ट्रेण्ड में N^{15} का समावेश मिलता है, जबकि दूसरा स्ट्रेण्ड सामान्य नाइट्रोजन (N^{14}) युक्त था। इससे स्पष्ट होता है कि (N^{15}) युक्त DNA का स्ट्रेण्ड पैतृक DNA का आधा भाग (एक स्ट्रेण्ड) होता है और यह टेम्प्लेट DNA (Template DNA) की तरह कार्य करता है और अपना सम्पूरक स्ट्रेण्ड (Complementary Strand) बनाता है, जिसमें सामान्य नाइट्रोजन (N^{14}) होती है। अगली पीढ़ियों में भी इसी प्रकार के परिणाम प्राप्त होते हैं। इससे सिद्ध होता है कि DNA का द्विगुणन अर्द्धसंरक्षी विधि के द्वारा ही होता है।

प्रश्न–19. न्यूक्लियोसोम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2004,07,10,12]

अथवा

न्यूक्लियोसोम के सोलीनॉयड मॉडल को संक्षेप में समझाइये। [भोपाल 2007,13 सागर 08]

उत्तर– न्यूक्लियोसोम की मूल संरचना– अनेक तकनीकों जैसे– इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोपी, एक्स–रे डिफ्रेक्शन, केमिकल क्रॉस लिंकिग तथा न्यूक्लिएज की सहायता से डी.एन.ए. के विखण्डनीकरण के आधार पर न्यूक्लियोसोम मॉडल को प्रस्तुत किया गया।

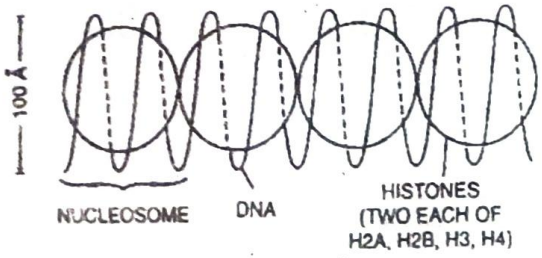


Fig. Original proposal for nucleosome repeating units, with DNA wound on a series of beads

न्यूक्लियोसोम का व्यास 11 nm तथा ऊँचाई 6 nm होती है तथा इस पर 67 nm लम्बाई का डी.एन.ए.लिपटा रहता है जिसमें लगभग 200 क्षारक युग्म होते हैं। ध्यान रखने

योग्य बात यह है कि डी.एन.ए. की लम्बाई विभिन्न जीवों में अलग–अलग होती है। जैसे– कवकों में 154 क्षारक युग्मों से बना डी.एन.ए. कोर कण को घेरे रहता है तथा कुछ जन्तुओं में यह 260 bp (क्षारक युग्म) लम्बा हो सकता है।

न्यूक्लियोसोम में पाँच प्रकार की हिस्टोन प्रोटीन H1,H2A, H2B, H3 तथा H4 होती हैं। इनमें से H1 प्रोटीन अन्य प्रोटीनों से अलग होती है। हिस्टोन प्रोटीन दो भागों में व्यवस्थित होती है। एक भाग में H2A, H2B, H3 व H4 के दो–दो अणु (कुल आठ अणु) तथा दूसरे में H1 होता है। हिस्टोन का कोर कण ऑक्टामर होता है। यह H2A, H2B, H3 व H4 के दो टेट्रामर अणुओं से मिलकर बना होता है।

सारणी– न्यूक्लियोसोम की विशिष्टतायें

संघटक भाग	न्यूक्लियोसोम		कोर कण	
	आकार	द्रव्यमान	आकार	द्रव्यमान
(1) डी.एन.ए.	200 क्षारक युग्म (लम्बाई 67 nm)	1,30,000	140 क्षारक युग्म (लम्बाई 65 nm)	90000
(2) हीस्टोन्स (H2A,H2B, H3, H4)	चारों हिस्टोन्स में से प्रत्येक के दो अणु (ऑक्टामर)	1,08,000	ऑक्टामर (प्रत्येक के 2–2 अणु)	109000
(3) हिस्टोन (H1)	1 अणु	24,000	अनुपस्थित	

सोलीनॉयड मॉडल (**Solenoid Model**)– न्यूक्लियोसोम के तन्तु 11mm चौड़े होते हैं जो अपने ही ऊपर कुण्डलित (coil)होकर 30nm चौड़े कुण्डलिनी (helix)बनाते हैं जिसमें प्रति हैलिक्स 5–6 न्यूक्लियोसोम होते हैं। हैलिक्स में न्यूक्लियोसोम इकाइयाँ समीप आ जाती हैं जिससे उनके केन्द्र से केन्द्र की दूरी लगभग 10nm हो जाती है। 30nm आकार की इस संरचना को सोलीनॉयड कहा गया। एक एनालोगस उदाहरण में अगर DNA को तार न्यूक्लियोसोम को माना जाये तो रील को मोड़ने से सोलीनॉयड का निर्माण होगा।

सोलीनॉयड शब्द का प्रयोग भौतिक विज्ञान में केन्द्रीय अक्ष पर लिपटे तार के लिये किया जाता हैं। 110A° चौड़े न्यूक्लियोसोम तन्तु के मुड़कर 300A° चौड़े सोलीनॉयड बनने में H_1 प्रोटीन महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह वर्णनीय है कि न्यूक्लियोसोस में H_1 हटा दिये जाने पर तन्तुओं का एक खास क्रम में व्यवस्थापन खत्म हो जाता है, अतः सोलीनॉयड जैसी रचना नहीं बन पाती। यह पाया गया है कि H_1 अणु क्रॉस लिंकिंग (Cross linking) द्वारा एकत्रित होकर पॉलीमर का निर्माण करते है।

स्पष्ट है कि यही क्रॉस लिंकिंग सोलीनॉयड बनाने में मदद करती होगी। यह भी बताया गया है कि क्रोमेटिन के संघनन के लिये सोलीनॉयड में और अधिक मोड़ों व कुण्डलनों की आवश्यकता होती हैं DNA का सोलीनॉयड संघनन 1:50 होता है, जो कि पैकिंग अनुपात देता है, लेकिन उच्च रूप में संघनित क्रोमोसोम में पैकिंग अनुपात वास्तव में 1:5000 होता है जोकि सोलीनॉयड मॉडल द्वारा दिये गये अनुपात से 100 गुना ज्यादा है।

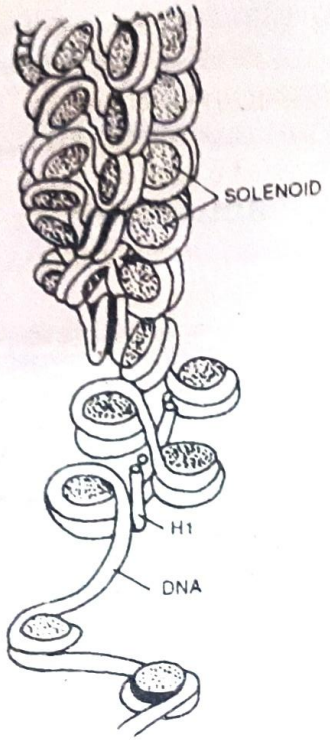


Fig. Solenoid model, with a helix having about six nucleosomes per turn where H1 molecules of adjacent nucleosomes are in contact

कोमेटिन में सोलीनॉइड का व्यवस्थापन

मेटाफेज तथा इण्टरपेज के समय क्रोमोसोम का विस्तृत अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ कि न्यूक्लियोसोम के रूप में डी.एन.ए. लूपों के रूप में व्यवस्थित रहता है। 10-30μm लम्बे प्रत्येक लूप में 85 kb डी.एन.ए. होता है। मेटाफेज क्रोमोसोम में यह लूप एक केन्द्रीय प्लेटफॉर्म से निकले दिखाई पड़ते हैं। क्रोमेटिन में कई मैट्रिक्स अटैचमेण्ट क्षेत्र होते है जो केन्द्रकीय कला के अन्दर की ओर पायी जाने वाली तन्तुवत संरचना न्यूक्लियर मैट्रिक्स से जुड़े होते हैं। एम.ए.आर. के अनेक क्रमों की पहचान की गयी है। डी.एन.ए. के जो क्रम इण्टरफेज़ केन्द्रक में एम.ए.आर.की भाँति कार्य करते हैं, न ही मेटाफेज केन्द्रक में एस.ए.आर. की तरह कार्य करते हैं। स्कैफोल्ड तथा मैट्रिक्स दोनों प्रोटीन से निर्मित होते हैं।

न्यूक्लियोसोम्स का प्रतिलिपिकरण (Replication of Nucleosome)– न्यूक्लियोसोम्स गतिज अवस्था दर्शाते हैं, जिसमें बड़ी संरचनायें कई प्रकार से अस्थायी रूप में वियोजित रहती हैं। वैज्ञानिकों के अनुसार, न्यूक्लियोसोम प्रतिलिपिकरण व अनुलेखन के लिये कई बदलावों की आवश्यकता होती है।

न्यूक्लियोसोम निर्माण के लिये हिस्टोन्स बंधन में जहाँ भी गैप पाये जाते हैं वहाँ पर एण्डोन्यूक्लिज द्वारा पाचन सरल हो जाता है। अन्य शब्दों में, इन खाली स्थानों को डी.एन.ए

एज संवेदी स्थान सरलता से उपलब्ध करा देते हैं। दूसरे चरण में प्रोटीनों को पृथक किया जाता है तथा तीसरे चरण में अलग हुये DNA खण्डों को इलेक्ट्रोफोरेसिस प्रक्रिया द्वारा पृथक किया जाता है। इन DNA खण्डों की प्रोटीनयुक्त DNA के पाचन से प्राप्त कंट्रोल से तुलना की जाती है। हिस्टोन प्रोटीन्स से रक्षित स्थानों को इस प्रकार पहचाना जाता है।

प्रश्न–20. न्यूक्लिओसाइटोप्लाज्मिक इन्टरएक्शन से आप क्या समझते हैं? विस्तृत व्याख्या प्रायोगिक प्रमाणों के साथ कीजिये। [जीवाजी 2004]

अथवा

प्रोटीन के आवागमन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये। [सागर 2008,13]

अथवा

केन्द्रक–कोशिका द्रव्य अन्तः क्रिया पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2007 भोपाल 08]

अथवा

प्रोटीन तथा आर.एन.ए. के आवागमन पर एक नोट लिखिये। [भोपाल 2006,12]

उत्तर– केन्द्रक–कोशिकाद्रव्यीय अन्तःक्रिया **(Nucleo-Cytoplasmic Interaction)**– केन्द्रक एवं कोशिका द्रव्य के बीच होने वाली अन्तःक्रिया में केन्द्रीय झिल्ली में पाये जाने वाले न्यूक्लियर कॉम्प्लेक्स की मुख्य भूमिका होती है। प्रत्येक कॉम्प्लेक्स में लगभग 100 पॉलिपेप्टाइड्स पाये जाते हैं। इन पॉलिपेप्टाइड्स को केन्द्रक छिद्र प्रोटीन कहते हैं। प्रत्येक कॉम्प्लेक्स का भार 125 मेगा डाल्टन के बराबर होता है। इस कॉम्प्लेक्स में एक निष्क्रिय विसरण चैनल होता है जो कि 9mm व्यास वाली नलिका होती है। यह चैनल कुछ प्रोटीनों को छोड़कर सभी प्रोटीनों को अपने में से गुजरने देता है। इस क्रिया में कुछ वाहक अणु भाग लेते हैं तथा इस कार्य में ऊर्जा खर्च होती है। प्रोटीन एवं राइबो–न्यूक्लियो प्रोटीनों के आवागमन में चिन्हक क्रमों (Signal sequences) की आवश्यकता होती है। ऐसे कई चिन्हित क्रमों की पहचान की जा चुकी है।

RNA ट्रान्सपोर्ट (RNA Transport)– न्यूक्लियर पोर कॉम्प्लेक्स की भूमिका RNA के ट्रांसपोर्ट में बहुत महत्वपूर्ण है इसके द्वारा RNA का एक तरफा निर्यात् होता है। t – RNA, Sn – RNA एवं सक्रिय m– RNA का केवल एक तरफा निर्यात् होता है। केन्द्रक में राइबोसोम की छोटी इकाइयों (Sub-units) को जोड़ने में r–RNA सहायक होते हैं, बाद में इन इकाइयों को कोशिका द्रव्य में भेज दिया जाता है। आजकल अनेक कैप बंधक प्रोटीन (Cap binding Proteins) की पहचान की जा चुकी है, जोकि RNA को बाहर की तरफ भेजने में सहायता करते हैं। कुछ कोशिकीय RNA (Cellular RNA) का अन्दर की तरफ गमन होता है। इन RNA के साथ Sn–RNA भी होते हैं, जोकि मोनो एथिल कैप के साथ पहले कोशिका- द्रव्य में जाते हैं और वहाँ पर डाइमेथिल रूप (Diomethyl form) में बदलकर Sn–RNA के साथ जुड़ जाते है। यह Sn–RNA बाइपार्टाइट चिन्हक (Bipartite Signal) की सहायता से केन्द्रक में वापस आ जाते हैं।

प्रोटीन ट्रान्सपोर्ट (Transport of Protein)– प्रोटीन सामान्यतः कोशिका–द्रव्य में ही बनते हैं और न्यूक्लियर पोर कॉम्प्लेक्स के माध्यम से केन्द्रक में पहुँचते हैं। इस कार्य के लिये इम्पोर्टिन–α, इम्पोर्टिन–β, GT Pase are Ran तथा pp 15 जैसी कारकों की आवश्यकता होती है। प्रोटीन के आवागमन को निम्नानुसार समझ सकते हैं–

(i) प्रत्येक प्रोटीन का एक चिन्हक क्रम (Signal Sequence) होता है, जो उसे इम्पोर्टिन –α, व β से जोड़कर कॉम्प्लेक्स बनाता है।

(ii) यह कॉम्प्लेक्स एक रेसेप्टर के रूप में कार्य करता है, जिसकी रेसेप्टर साइट (Receptor site) इम्पोर्टिन –α में होती है।

(iii) इम्पोर्टिन –β बाइण्डिंग डोमेन (Importin – β binding domain) जो कि इम्पोर्टिन –α में होती है, NPC के जरिये आवागमन में सहायता करती है। यह डोमेन एक सक्रिय अभिक्रिया (energy dependent reaction) के द्वारा प्रोटीन का आदान–प्रदान सुचारू बनाती है। इस प्रक्रिया में Ran तथा pp 15 का भी योगदान होता है। इस कार्य हेतु ऊर्जा GT P से प्राप्त होती है।

इकाई-2

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. जीन्स की विशेषतायें समझाइये।

उत्तर– 1. जीन्स गुणसूत्रों में स्थित होते हैं।
2. प्रत्येक जीन C, H, N, O तथा P से बना दीर्घ अणु होता है।
3. ये विशिष्ट लक्षणों वाली क्रियात्मक इकाई कहलाते हैं।
4. ये बहुत स्थायी संरचनायें होती हैं।
5. ये मेण्डल के आनुवंशिकी नियमों का पालन करते हैं।
6. इनमें अनुलिपिकरण करने की क्षमता होती है।
7. इनमें उत्परिवर्तन होता है।
8. ये जनकों से सन्ततियों में पीढ़ी दर पीढ़ी पहुँचते हैं।
9. मनुष्य के 23 जोड़ी गुणसूत्र पर लगभग 40,000 जीन्स पाये जाते हैं।
10. विशिष्ट गुणसूत्र पर जीन्स (genes) विशिष्ट स्थान पर स्थित होते हैं जो लोकाई कहलाते हैं।
11. प्रत्येक क्रोमोसोम में रेखीय (linear) क्रम में जीन्स माला (bead) के समान विन्यस्त होते हैं।
12. जीन्स द्वारा एन्जाइम (enzymes) या प्रोटीन्स का निर्माण होता है।

प्रश्न–2. जीन कहां पाये जाते हैं? जीन्स की आधुनिक संरचना का वर्णन कीजिये।

[भोपाल 2008,10 उज्जैन 2013,16]

अथवा

जीन की आधुनिक अवधारणा पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये। [रीवा 2002,12]

उत्तर– जीन्स आनुवांशिक इकाई होती है। ये क्रोमोसोम के क्रोमोनिमेटा पर एक रेखीय क्रम में पाये जाते हैं। मेण्डल ने जीन को कारक या निर्धारित नाम दिया। जॉन्सन ने सन् 1909 में इन मेण्डेलियन कारकों को जीन नाम दिया।

वाटसन एवं क्रिक एवं विल्किन्स 1962 के अनुसार जीन की परिभाषा निम्न प्रकार है–

जीन एक दीर्घ अणु है जो C, H, N, O एवं P का बना मूलक है जो एक अविभेदित प्रोटीन तन्तु क्रोमोनिमेटा से संलग्न रहता है और यह बिना किसी परिवर्तन के एक कोशिका से दूसरी कोशिका में और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में परिगमित होता रहता है।

जीन की आधुनिक अवधारणा– जीन की आधुनिक अवधारणा की मुख्य विशेषतायें नीचे लिखे अनुसार हैं–

(1) जीन शारीरिक तथा कार्यकीय (Physiological) से सम्बन्धित गुणों का निर्धारण करते हैं।
(2) ये जीन एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरित होते हैं।
(3) प्रत्येक गुणसूत्र (Chromosome) पर अनेक संख्या में जीन स्थित होते हैं।
(4) जीन गुणसूत्र पर रेखित क्रम में पाये जाते हैं।
(5) प्रत्येक जीन द्वारा एक विशिष्ट प्रोटीन का संश्लेषण होता है।
(6) जीन में उत्परिवर्तन होते हैं।
(7) जीन अनेक कार्यकारी रूपों (Functional states) में मिलता है। सामान्य से भिन्न जीन के इन रूपों को एलील्स (Alleles) कहा जाता है।
(8) जीन विशिष्ट लक्षणों वाली क्रियात्मक इकाई है।

जीन्स की रासायनिक संरचना (Chemical Nature of Genes)– आधुनिक खोजों के अनुसार जीन्स DNA अणुओं में सम्बन्धित है। कोशिका विभाजन का अध्ययन, बैक्टीरियल रूपान्तरण, विषाणु अनुसंधान एवं अन्तरावस्था में कोशिकाओं में DNA की मात्रा से जीन्स के पक्ष में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। DNA का अणु एक दीर्घ अणु है जिसका आण्विक भार कई लाख गुना होता है। यह दो लम्बे सूत्रों या स्ट्रैण्ड का बना होता है। यह सूत्र एक–दूसरे के चारों ओर सर्पिल (spiral) रूप में कुण्डलित रहते हैं। प्रत्येक सूत्र लगभग 33,000 सरल इकाइयों से मिलकर बना होता है जो परस्पर मिलकर एक लम्बा स्ट्रैण्ड बनाते हैं। प्रत्येक इकाई को न्यूक्लियोटाइड (Nucleotide) कहा जाता है। न्यूक्लियोटाइड में एक शर्करा का अणु, एक फॉस्फोरस का अणु तथा एक नाइट्रोजन क्षार होता है।

शर्करा (Sugar)– DNA में डिऑक्सीराइबोस शर्करा पायी जाती है जो 5 कार्बन परमाणु वाला यौगिक होती है।

नाइट्रोजिनस कार्बन क्षार (Nitrogenous Organic bases)– DNA में चार भिन्न नाइट्रोजनयुक्त क्षार पाये जाते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं–

(i) **द्विवलय वाले नाइट्रोजिनस क्षार या प्यूरीन्स (Double ring nitrogenous base or Purines)–** इनमें एडिनीन (Adenine) तथा ग्वानिन (Guanine) पाये जाते हैं।

(ii) **एक वलय वाले नाइट्रोजन युक्त क्षार या पिरिमिडीन्स (Single ring nitrogenous base or Pyrimidines)–** इनमें थाइमीन (Thymine) तथा साइटोसीन (Cytosine) आते हैं।

प्रत्येक न्यूक्लियोटाइड में फॉस्फेट मूलक से एक ओर डिऑक्सीराइबोज शर्करा का अणु और दूसरी ओर प्यूरीन (ऐडिनीन अथवा ग्वानीन) या पिरीमिडीन अणु (थायमीन या साइटोसीन) जुड़ा रहता है। DNA में निम्नलिखित प्रकार के न्यूक्लियोटाइड्स पाये जाते है-

(1) डी–ऑक्सी एडिनीलिक अम्ल (**Deoxyadenylic acid**)

(2) डी–ऑक्सी ग्वानिलिक अम्ल (**Deoxyguanylic acid**) प्यूरीन न्यूक्लियोटाइड्स

(3) डी–ऑक्सी थाइमीडिलिक अम्ल (**Deoxythymidylic acid**)

(4) डी–ऑक्सी साइटीडिलिक अम्ल (**Deoxycytidylic acid**) पिरीमिडीन न्यूक्लियोटाइड्स

न्यूक्लियोटाइड्स अपने फॉस्फेट मूलक द्वारा परस्पर जुड़कर एक श्रृंखला या सूत्र बनाते हैं। दोनों स्ट्रैण्ड के न्यूक्लियोटाइड्स हाइड्रोजन बन्ध द्वारा अपने नाइट्रोजन युक्त क्षारों से जुड़े रहते हैं। एक स्ट्रैण्ड के न्यूक्लियोटाइड्स का एडीनीन (प्यूरीन) थाइमीन (पिरीमिडीन) से तथा ग्वानीन (प्यूरीन) साइटोसीन (पिरीमिडीन) से जुड़ता है।

जीन की सूक्ष्म या आण्विक संरचना (Micro or Molecular Structure of Gene)– जीन रासायनिक रूप में DNA द्वारा बना होता है, परन्तु DNA के कौन–से भाग से जीन का निर्माण होता है, यह जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो सकी है। आधुनिक खोजों के अनुसार, जीन की रचना तथा कार्य के आधार पर अनेक प्रकार की इकाइयों (Units) में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके लिये निम्न शब्दों एवं परिभाषाओं का उपयोग किया जाता है–

(1) **रेकॉन (Recon)**– यह DNA की वह सूक्ष्मतम इकाई है जो जीन विनिमय तथा पुनः संयोजन करने में समर्थ होती है। रेकॉन DNA के एक अथवा दो न्यूक्लियोटाइड्स द्वारा निर्मित होता है।

(2) **म्यूटॉन (Muton)**– बेन्जर के अनुसार, DNA की वह सूक्ष्मतम इकाई जिसमें उत्परिवर्तन (Mutation) हो सकता है, म्यूटॉन कहलाती है।

(3) **सिस्ट्रॉन (Cistron)**– इसे वास्तविक जीन कहा जा सकता है, इसमें बहुत से न्यूक्लियोटाइड पाये जाते हैं। यह एन्जाइम की पोलीपेप्टाइड श्रृंखला का संश्लेषण करने में समर्थ होता है। वैज्ञानिकों ने जीन की कुछ अन्य इकाइयाँ भी सुनिश्चित की हैं जो निम्नलिखित हैं–

(1) **कॉम्प्लान (Complon)**– यह पूरकीकरण की इकाई है। इसका मुख्य कार्य सिस्ट्रॉन की प्रतिस्थापना करना होती है।

(2) **रेप्लीकॉन (Replicon)**– यह पुनरावृत्ति की इकाई है। अनेक रेप्लीकॉन मिलकर एक क्रोमोसोम की संरचना करते हैं।

(3) **ओपेरॉन (Operon)**– यह ऑपरेटर जीन संरचना (जीन्स के अनुक्रम) का संयोग है, जो एक साथ मिलकर एक यूनिट के समान कार्य करते हैं। इसका प्रभाव संकली तथा रदनक दोनों ही प्रकार से होता है।

प्रश्न–3. 'जेनेटिक कोड' पर एक निबन्ध लिखिये। [सागर 2007,12]

अथवा

जेनेटिक कोड से क्या आशय है? संक्षेप में वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2008,10,13]

उत्तर– आधुनिक ज्ञान के अनुसार किसी भी जीवधारी मे प्रोटीन संश्लेषण उन समस्त आनुवंशिक संकेतों के प्रतिबिम्ब को व्यक्त करता है जो DNA में अन्तर्निहित रहते हैं व डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइड क्रम विशिष्ट प्रोटीन की संरचना व संश्लेषण की जातियों का नियंत्रण करके अपना कार्य करते हैं।

जॉर्ज बीडल एवं एडवर्ड टेटम द्वारा प्रतिपादित 'एक जीन एक एन्जाइम सिद्धान्त' के अनुसार प्रत्येक एन्जाइम एक विशिष्ट जीन के नियंत्रण में रहता है तथा कुछ एन्जाइम एक से अधिक जीन के नियंत्रण में होते हैं। अतः सम्पूर्ण कोशिकीय उपापचय, एन्जाइमों के माध्यम द्वारा जीनों से नियंत्रित रहता है। प्रत्येक जीवित कोशिका में प्रोटीन अपने वास्तविक रूप में या एन्जाइमों के रूप में उन मौलिक यन्त्रों की तरह कार्य करते हैं, जिनकी सहायता से अपने पास मौजूद समस्त आनुवंशिक सामग्री का उपयोग किया जाता है।

जेनेटिक कोड के पूर्ण अध्ययन को सरलता के लिये दो भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) समाचार केन्द्र (Message Centre)– कोशिका का केन्द्रक ही आनुवंशिक समाचार केन्द्र का कार्य करता है यहाँ जीन निष्क्रिय संदेशवाहक का कार्य करते हैं। m- RNA जीन से संदेश प्राप्त करके, कोशिका के बाहर कोशिका द्रव्य में आते हैं और प्रोटीन संश्लेषण के पूरा होने के बाद नष्ट हो जाते हैं। केन्द्रक में डी. एन. ए. अणु द्वारा m- RNA का निर्माण लगातार होता रहता है।

(ii) डी. एन. ए. में वंशागत समाचारों का कूटबद्दीकरण (Coding of genetic information in DNA)– डी. एन. ए. में चार प्रकार की न्यूक्लियोटाइड होती है और प्रत्येक में डी–ऑक्सीराइबोज पेन्टोज शर्करा, फॉस्फेट समूह व एक प्यूरीन या पिरिमिडीन बेस होता है। इन बेस के क्रम में 4n परिवर्तन सम्भव है। इन परिवर्तनों के कारण विभिन्न प्रकार के विशिष्टतामय DNA अणुओं का निर्माण हो सकता है। न्यूक्लियोटाइड का परिवर्तनशील यह क्रम एक सांकेतिक भाषा या कोड है, जिसके द्वारा प्रत्येक जीव में वंशागत जानकारी एकत्रित की जाती है। एक DNA अणु में सामान्यतः न्यूक्लियोटाइड के 10,000 जोड़े होते है। इनको अनेक क्रमों में लगाया जा सकता है तथा प्रत्येक क्रम एक विशिष्ट आनुवंशिक संकेत को इस अणु में निश्चित कर देता है। यह आनुवंशिक संकेतों का ट्रान्सक्रिप्शन m- RNA के रूप में कई चरणों में पूरा होता है। यह m- RNA का अणु कोशिका द्रव्य में उपस्थित 20 अमीनों-अम्लों से चयन करके पेप्टाइड श्रृंखला का निर्माण करता है। केवल चार प्रकार के क्षारकों (दो प्यूरीन तथा दो पिरिमिडीन) द्वारा ही बीस प्रकार के अमीनों अम्लों का चयन व निर्देशन होता है। इसे स्पष्ट करने के लिये क्रिक (Crick) द्वारा प्रस्तुत 'ट्रिपलेट कोड सिद्धान्त' बहुत ही उपयुक्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार तीन क्षारकों (Bases) के ट्रिपलेट को संकेतक (Codon) कहते हैं। इन ट्रिपलेट का विशिष्ट क्रम ही राइबोसोम पर एकत्रित होने वाले अमीनों अम्लों की विशिष्ट श्रृंखला का निर्धारण करता है।

नीरेनबर्ग व मथाई द्वारा कृत्रिम m- RNA पर किये गये अध्ययनों ने भी ट्रिपलेट कोड सिस्टम की मान्यता को यथार्थ माना है।

ट्रिपलेट कोड सिस्टम (Triplet Code System)– इस सिस्टम के सिद्धान्त में यह मानकर चलते हैं कि बेस के रूप में चार अक्षरों A, U, G, C हैं जिनको विभिन्न क्रमों में

लगाकर तीन अक्षरों से अधिक से अधिक 64 संभावित संयोग (Combination) बनाये जा सकते हैं। इनमें से कुछ अनुपयोगी होते हैं, परन्तु अधिकांश उपयोगी होते हैं, जो कोशिका द्रव्य में उपस्थित 20 अमीनों अम्लों के लिये वंशागत संकेत को व्यक्त करते हैं।

नीरेनबर्ग व मथाई (1961) ने कृत्रिम m– RNA बनाया और इसके अणु में यूरेसिल व ऐडीनीन के 2:1 के अनुपात से ज्ञात हुआ कि इससे बनने वाले कृत्रिम प्रोटीन आइसोल्यूसिन के संकेत शब्द में दो 'U' के साथ 'A' होना चाहिये जैसे– UUA, UAU या AUU। यह देखा गया है कि दो के अलावा सभी अमीनों अम्ल कई क्षार संयोगों द्वारा बनाये जा सकते हैं। अतः 'जेनेटिक कोड DNA अणुओं में स्थित नाइट्रोजीनस क्षारों का वह अनुक्रम है जिसमें प्रोटीन संश्लेषण के लिये संदेश निहित होते हैं।'

जेनेटिक कोड की विशेषतायें (Essential features of Genetic code)– जेनेटिक कोड (Genetic Code) की निम्न विशेषतायें होती हैं–

1. **ट्रिपलेट कोड (Triplet Code)–** प्रत्येक आनुवंशिक कोड (Genetic Code) का कोडॉन m–RNA के तीन नाइट्रोजिनस क्षारक के एक विशिष्ट अनुक्रम का बना होता है।

2. **कोमाविहीन (Commaless)–** दो संलग्न कोड के बीच कोई कोमा नहीं होता है अर्थात् दो कोड के बीच कोई भी रिक्त स्थान नहीं होता है।

3. कोड का अनतिव्यापन **(Non-over lapping codons)–** पहले यह समझा जाता था कि कोड में अतिव्यापन (Overlapping) पाया जाता है, लेकिन आजकल कोड में अनतिव्यापन (non-overlapping) के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं–

Second letter

	U	C	A	G	
U	UUU, UUC – Pbe UUA, UUG – Leu	UCU, UCC, UCA, UCG – Ser	UAU, UAC – Try UAA, UAG	UGU, UGC UGA ** UGG Typ	UC A G
C	CUU, CUC, CUA, CUG – Leu	CCU, CCC, CCA, CCG – Pro	CAU, CAC – His CAA, CAG – CalyN	CGU, CGC, CGA, CGG – Arg	U C A G
A	AUU, AUC – Hen AUA, AUG – Met	ACU, ACC, ACA, AGC – Thr	AAU, AAC – AspN AAA, AAG – Lys	AGU, AGC – Ser AGA, AGG – Arg	U C A G
G	GUU, GUC, GUA, GUG – Val*	GCU, GCC, GCA, GCG – Ala	GAU, GAC – Asp GAA, GAG – Glu	GGU, GGC, GGA, GGG – Gry	U C A G

* Chain initiation Codons' + ** Chain Termination Codons.

Fig. Genetic Code dictionary

4. **कोड की सार्वत्रिकता (Universality of Code)–** जेनेटिक कोड वाइरस, बैक्टीरिया, प्रोकैरियोटस तथा सभी यूकैरियोट्स में सर्वत्र पाया जाता है।

5. **जेनेटिक कोड में संरेखता (Collinearity in genetic Code)–** जेनेटिक कोड में संरेखता भी पायी जाती है।

जेनेटिक कोड का अपह्रास (Degeneracy of the Code)– केवल दो अमीनो अम्लों को छोड़कर अधिकांश अमीनो अम्लों को एक से अधिक कोडॉन द्वारा इनके विशिष्ट स्थानों की ओर निर्देशित किया जाता है। कोडीकरण की इस गुणित प्रणाली को अपह्रासित प्रणाली (Degenerate System) कहते हैं। यह प्रणाली प्राणियों को हानिकारक म्यूटेशन से सुरक्षा प्रदान करती है तथा बेसों (Bases) के युग्मन में होने वाली त्रुटियों को कम करती है।

समारम्भ कोडॉन (Initiation Codon)– अधिकांश प्रोटीन श्रृंखलायें संश्लेषण के प्रारंभ में मीथियोनिन (Methionine) व N–फॉर्मिल–मीथियोनिन (N–Formyl methionine) होती हैं जिसका सम्भावित ट्रिपलेट कोडॉन UGA होता है। अतः अधिकांश श्रृंखलाओं में AUG समारम्भ कोड होता है।

समापन कोडॉन (Termination Codon)– सिस्ट्रॉन का अन्तिम कोड पॉलिपेप्टाइड श्रृंखला का समापन करता है। इसे समापन कोडॉन कहते हैं। ये तीन होते हैं– UAG (amber), UAA (ochre), UGA (opal or umber).

माइटोकॉण्ड्रिया में जेनेटिक कोड (Genetic Code on Mitochondria)– कुछ समय पूर्व यीस्ट एवं स्तनी के माइटोकॉण्ड्रिया में एक अलग प्रकार के जेनेटिक कोड का अध्ययन किया गया। इनमें यीस्ट माइटोकॉण्ड्रिया में UGA कोडॉन ट्रिप्टोफेन के लिये कोडिंग करता है, जबकि केन्द्रक जीन्स में UGA एक समापन कोड (Termination Code) होता है। यह सम्भव है कि माइटोकॉण्ड्रिया में एक नये प्रकार की जेनेटिक कोड पायी जाती है, लेकिन सभी प्राणियों के माइटोकॉण्ड्रिया में एक–सी कोड नहीं पाई जा सकती है।

प्रश्न–4. यूकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण के नियमन का वर्णन कीजिये। [सागर 2008]

अथवा

यूकैरियोट्स में प्रोटीन संश्लेषण किस प्रकार होता है? संक्षेप में वर्णन कीजिये।

[सागर 2010,12 इन्दौर 04,13,17]

उत्तर– यूकैरियोट्स एवं प्रोकैरियोट्स जीव की संरचना में भिन्नता तो होती ही है साथ में उनकी कार्यिकी एवं अन्य सभी तरह की क्रियायें भी भिन्न होती हैं। यूकैरियोट्स जीवों में किसी एक समय पर जीन अभिव्यक्ति 15% से 20% तक ही होती है। इन अभिव्यक्त होने वाली जीन को हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं–

(i) **एक प्रतिवाले जीन (Single copy gene)–** इस श्रेणी के अन्तर्गत ऐसे जीन आते हैं जोकि किसी विशिष्ट प्रोटीनों के लिये m– RNA का संश्लेषण करते हैं।

(ii) **बहु प्रतियों वाले जीन (Multiple Copy gene)–** इस श्रेणी में r – RNA जीन, S – RNA जीन तथा t – RNA जीन आते हैं।

तीन प्रकार के RNA के लिये तीन प्रकार के ही RNA पॉलिमरेज (RNA Polymerase) होते हैं, जो विशिष्ट प्रकार के DNA अनुक्रमों के अनुलेखन के लिये विशिष्ट होते हैं। और इन सबके नियमन के लिये एक निश्चित क्रियाविधि होती है। इस कार्य के लिये RNA पॉलिमरेज के साथ–साथ अनेक गुणसूत्रीय प्रोटीन की भी आवश्यकता होती है।

1. **गुणसूत्रीय प्रोटीन एवं जीन अभिव्यक्ति (Chromosomal proteins Gene expression)**– किसी क्रोमोसोम के क्रोमैटिन में तीन अवयव होते हैं– DNA, हिस्टोन और नॉन– हिस्टोन। हिस्टोन एवं नॉन–हिस्टोन दोनों ही गुणसूत्रीय प्रोटीन है। इसमें से हिस्टोन जीन की सक्रियता को कम करती है और विशिष्ट नियमन नॉन–हिस्टोन प्रोटीन द्वारा होता है। गूल्मूर एवं पाल (Gulmour and Paul) ने सन् 1973 में प्रयोगों से बताया कि जब पुनः निर्मित क्रोमेटिन से m- RNA का संश्लेषण किया जाता है तो यह m- RNA उस m- RNA के समान होता है जो सामान्यतः उस क्रोमेटिन पर संश्लेषित होता है जिससे नॉन–हिस्टोन प्रोटीन ली गई थी।

ग्लोबिन ओवल ब्युलिन और हिस्टोन तीन ऐसी विशेष प्रोटीन्स हैं, जिनके संश्लेषण का अध्ययन यूकैरियोट्स के सन्दर्भ में किया गया। इनमें से ग्लोबिन को रेटिकुलोसाइट से ओवल ब्युमिन को मुर्गी की अण्डावाहिनी से तथा हिस्टोन को कोशिका चक्र की 'S' प्रावस्था से प्राप्त की गई। इन तीनों उदाहरणों के समान परिणाम प्राप्त हुये हैं। इन परिणामों के आधार पर कहा जा सकता है कि यूकैरियोटस के प्रोटीन संश्लेषण में नॉन–हिस्टोनों का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इनका धनात्मक नियमन कार्य (Positive regulatory role) होता है।

उपर्युक्त अध्ययनों से एक बात स्पष्ट होती है कि हिस्टोनों के अभाव में नॉन हिस्टोन प्रोटीन RNA संश्लेषण में सहायक नहीं हो सकती हैं। यह भी स्पष्ट होता है कि प्रोटीन संश्लेषण का नियमन वास्तव में हिस्टोनों एवं नॉन–हिस्टोनों के बीच होने वाली एक पारस्परिक क्रिया का परिणाम होता है।

2. **स्टीरॉइड हॉर्मोन्स एवं जीन अभिव्यक्ति (Steroid Hormones & Gene expression)**– मनुष्य मे पाये जाने वाले स्टीरॉइड हॉर्मोन्स में से एस्ट्रोजन (Estrogen) एवं प्रोजेस्टेरॉन (Progesteron) दो प्रमुख हॉर्मोन है। ये दोनों ही हॉर्मोन्स अनेक परिस्थितियों में जीन सक्रियता का नियमन करते हैं। जैसे– मुर्गी के अण्डवाहिनी में ओवल ब्युमिन (oval bumin) के संश्लेषण के लिये एस्ट्रोजन की उपस्थिति अनिवार्य होती है।

इस प्रोटीन के संश्लेषण में निम्न सोपान सम्मिलित हैं–

(i) स्टीरॉइड हॉर्मोन (s) का अन्तर्ग्रहण (uptake) और कोशिका द्रव्य में उपस्थित ग्राही अणु (Receptor molecule) Rc के साथ बनना उसके बंधन द्वारा S- Rc सम्मिश्र का बनना।

(ii) S– Rc सम्मिश्र का केन्द्र में पहुँचना जहाँ अब इसे S– Rn कहा जाता है, जिससे कि केन्द्रक में इसकी उपस्थिति प्रकट हो सके, (Rn = Receptor in the nucleous)

(iii) जीनोम के विशिष्ट ग्राही स्थल (acceptor site) के साथ S – Rn सम्मिश्र का बंधन।

(iv) विशिष्ट m– RNA के संश्लेषण हेतु विशेष नॉन हिस्टोन प्रोटीनों की उपस्थिति में अनुलेखन उपकरण का सक्रिय होना (activation of transcription apparatus)।

(v) विशिष्ट m– RNA को कोशिका द्रव्य में पहुँचाना।

(vi) ओवल ब्युमिन जैसी प्रोटीन का संश्लेषण।

3. **जीन अभिव्यक्ति इकाई के मॉडल (Models for Unit of Gene Expression)**– यूकैरियोट्स में जीन अभिव्यक्ति के कई इकाई बतलायी गई हैं–

(i) ब्रिटन– डेविडसन मॉडल (Britten Davidson Model)– प्रोटीन संश्लेषण के नियमन को समझाने के लिये ब्रिटन एवं डेविडसन नामक वैज्ञानिकों ने सन् 1969 में सबसे उपयुक्त मॉडल प्रस्तुत किया। सन् 1973 में इन्हीं के द्वारा इस मॉडल को विस्तारित एवं संशोधित किया गया। इस मॉडल के अनुसार प्रोटीन संश्लेषण व नियमन से सम्बन्धित DNA अनुक्रमों को चार वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) **प्रोड्यूसर जीन (Producer gene)**– प्रोकैरियोटिक ओपेरॉन के संरचनात्मक जीन (Structural genes) के समान ही यूकैरियोट्स (Eukaryotes) में प्रोड्यूसर जीन होते हैं।

(ii) **रिसेप्टर स्थल (Receptor site)**– यह ओपेरॉन के ऑपरेटर जीन (Operator gene) के समान होता है और प्रत्येक प्रोड्यूसर जीन के पार्श्व (site) में इस प्रकार के रिसेप्टर स्थल का होना माना जाता है।

(iii) **इंटिग्रेटर जीन (Integrator gene)**– ये रेगुलेटर जीन (regulator gene) के समान होता है और एक एक्टिवेटर (activator) RNA के संश्लेषण के लिये उत्तरदायी होता है।

(iv) **सेन्सर स्थल (Sensor site)**– एक सेन्सर स्थल इंटिग्रेटर जीन की क्रिया का नियमन करता है। इंटिग्रेटर जीन, केवल उसी दशा में अनुलेखित होता है जब सेन्सर स्थल को सक्रिय किया जाता है। हॉर्मोन और प्रोटीन जैसे कारक सेन्सर स्थलों को पहचानते हैं और इस प्रकार जीन की अभिव्यक्ति में परिवर्तन कर देते हैं। उदाहरण के लिये– इंटिग्रेटर जीन का अनुलेखन करने के लिये हार्मोन–प्रोटीन सम्मिश्रण का सेन्सर स्थलों के साथ बंधन होता है।

प्रोटीन संश्लेषण के नियमन के बारे में DNA में पाये जाने वाले नियमनकारी न्यूक्लियोटाइड अनुक्रमों के बारे में जानकारी मिली है। अधिकतर जीनों में– 30 bp upstream पर एक ऐसा लघु अनुक्रम पाया जाता है, जो अनुलेखन के लिये अनिवार्य माना जाता है। इसको TATA बॉक्स या गोल्डबर्ड होग्नेस बॉक्स (Gold berg–hogness Box) कहते हैं।

प्रश्न–5. प्रोटीन निर्माण किसे कहते हैं? वर्णन कीजिये।
[भोपाल 2008,10 जीवाजी 2007]

अथवा

सेंट्रल डोग्मा पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2008,13 भोपाल 2006]

उत्तर– **प्रोटीन निर्माण (Protein Synthesis)**– प्रोटीन्स अमीनो–अम्लों के बहुलक हैं जोकि अमीनो–अम्लों के आपस में पेप्टाइड बन्ध से जुड़ने के कारण निर्मित होती हैं। प्रोटीन किसी जीव के जैविक लक्षणों के निर्धारण अथवा जैविक क्रियाओं के सम्पादन के लिये अति आवश्यक होती हैं। इसका निर्माण ट्रान्सक्रिप्शन (Transcription) एवं ट्रान्सलेशन (Translation) दो स्तरों पर होता है।

ट्रान्सक्रिप्शन (Transcription) एवं ट्रान्सलेशन प्रोटीन निर्माण क्रिया के दो भाग है। सामान्यतः DNA कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ होता है जो कि आनुवंशिक सूचनाओं का वाहक होने के साथ-साथ उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य करता है।

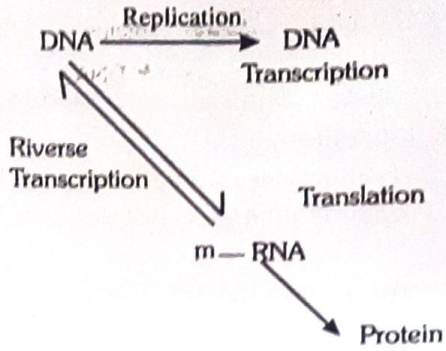


Fig. Central dogma of molecular genetics

आनुवांशिक सूचनाओं का प्रवाह (Flow of genetic informations)
अथवा
सेण्ट्रल डोग्मा (Central dogma)

सेण्ट्रल डोग्मा (Central dogma)– यह DNA, RNA का प्रोटीन संश्लेषण से सम्बन्ध दर्शाता है। इसके अनुसार DNA ट्रान्सक्रिप्शन (Transcription) की कार्यविधि द्वारा मेसेन्जर RNA (m- RNA) का अणु उत्पादित करता है। राबोसोम की मध्यस्थता (Mediation) से m- RNA में जो बेसेस का क्रम है वे अमीनो अम्ल के क्रम में अनुवादित (Translate) हो जाते हैं। तत्पश्चात फिर एक लाइन में विशिष्ट क्रम के रूप में विस्थापित होकर पॉलीपेप्टाइड (Polypeptide) श्रृंखला या प्रोटीन बनाते हैं।

वाटसन एवं क्रिक (1958) ने प्रस्तावित किया कि उपर्युक्त बताई गई सूचना का क्रम एक ही दिशा में (यानि न्यूक्लिक अम्ल से प्रोटीन की और) कार्य करता है विपरीत दिशा में नहीं, यही विचार सेण्ट्रल डोग्मा के रूप में सामने आया। इस प्रकार आण्विक जीवविज्ञान में आनुवंशिक सूचनाओं का DNA से DNA अथवा DNA से m-RNA व m- RNA से प्रोटीन में प्रवाह सेण्ट्रल डोग्मा कहलाता है। आनुवंशिक सूचनाओं का प्रवाह तीन प्रकार का होता है-

(1) एक दिशीय प्रवाह (One way flow)– क्रिक (Crick, 1958) के अनुसार आनुवंशिक सूचनाओं का प्रवाह हमेशा एक दिशीय होता है। इस प्रक्रिया में सर्वप्रथम DNA ट्रासक्रिप्शन प्रक्रिया के द्वारा आनुवंशिक सूचनाओं को m-RNA में स्थानान्तरित करता है तथा बाद में m- RNA इन आनुवंशिक सूचनाओं को प्रोटीन की भाषा में अनुवादित कर देता है। इसे ही सेण्ट्रल डोग्मा के रूप में जाता है।

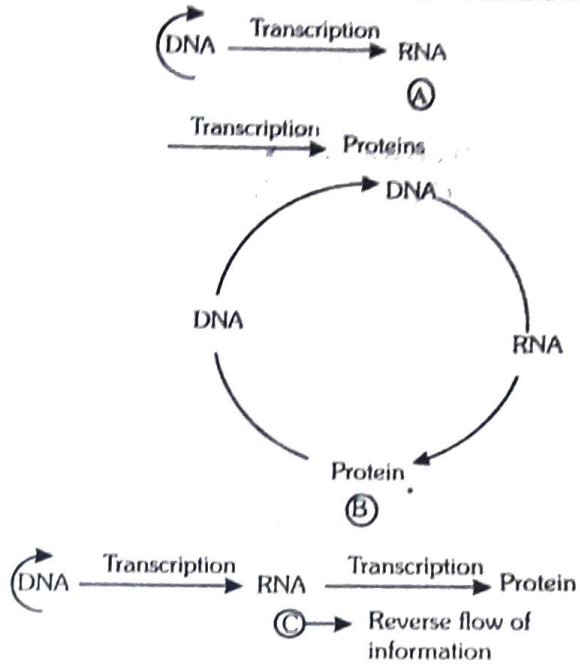


Fig. DNA, RNA तथा प्रोटीन सम्बन्धों को दिखाने हेतु रेखीय चित्र **(A)** एक दिशीय प्रवाह **(One way flow)** **(B)** चक्रीय प्रवाह **(Circular flow)** **(C)** विपरीत प्रवाह **(Inverse flow)**

(2) चक्रीय प्रवाह (Circular flow of genetic informations)– बेरी कॉम्नर (Berry Comner, 1968) के अनुसार DNA सर्वप्रथम m- RNA का ट्रान्सक्रिप्शन करता है तथा m-RNA ट्रांसलेशन के द्वारा प्रोटीन का निर्माण करता है। कभी-कभी यह प्रोटीन RNA का निर्माण करता है। यह RNA पुनः DNA का निर्माण करता है। इस प्रकार आनुवंशिक सूचनायें एक वृत्तीय या चक्रीय दिशा में प्रवाहित होती रहती हैं।

(3) विपरीत प्रवाह (Inverse Flow)– यह धारणा टेमिन ने 1971 में प्रस्तुत की और बताया कि RNA पर आधारित एक DNA पॉलीमरेज एन्जाइम होता है जो कि DNA के एक स्टैण्ड में DNA संश्लेषण को संचालित (Regulate) करता है। सन् 1970 में बाल्टीमोर ने ट्यूमर वाइरस विषाणु में इस एन्जाइम की उपस्थिति बताई और बताया कि कभी-कभी इन विषाणुओं में नॉनजेनेटिक RNA जो RNA के नियंत्रण में संश्लेषित हुआ हो, सूचनाओं के उल्टे प्रवाह से DNA के संश्लेषण को नियंत्रित करता है।

उपरोक्त व्याख्या DNA तथा RNA के प्रोटीन जैव संश्लेषण में भूमिका को स्पष्ट करती है। आनुवंशिक सूचनाओं के प्रवाह के समय दो प्रक्रियायें होती हैं जिनके द्वारा एक विशिष्ट प्रोटीन का निर्माण होता है।

(A) ट्रांसक्रिप्शन या अनुलेखन (Transcription)

(B) ट्रांसलेशन या अनुवादन (Translation)

उपरोक्त दोनों प्रक्रियाओं का अध्ययन ओ.एल. मिलर एवं बी. ए. हैमकालो ने किया था।

प्रश्न–6. ट्रांसक्रिप्शन से आप क्या समझते हैं? सचित्र वर्णन कीजिये। [भोपाल 2007]

अथवा

अनुलेखन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2008,10,13,16]

अथवा

आर.एन.ए. पोलिमिरेस के विभिन्न अवयवों तथा उनके कार्यों पर नोट लिखिये। [भोपाल 2006,12]

उत्तर– अनुलेखन (Transcription)– DNA में उपस्थित आनुवांशिका सूचनाओं का m- RNA में पहुँचाना अथवा DNA के द्वारा m- RNA का निर्माण अनुलेखन कहलाता है।

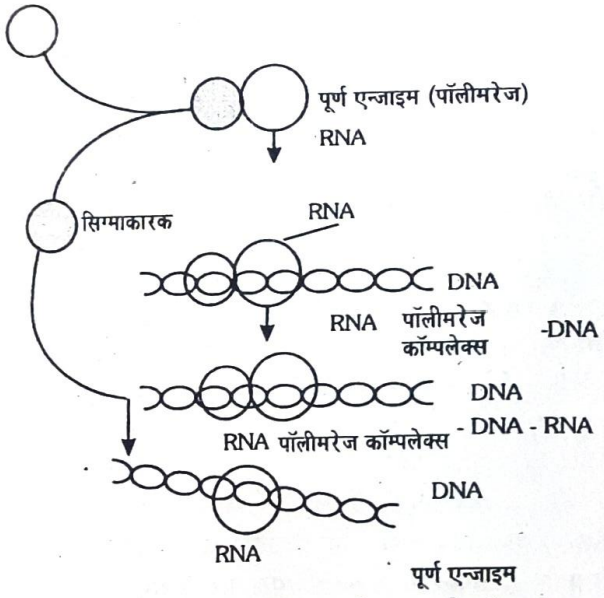


Fig. Role of core-enzyme and sigma factor during transcription

DNA से m-RNA का अनुलेखन RNA पॉलीमेरेज (RNA- Polymerase) एन्जाइम की उपस्थिति में होता है। RNA पॉलीमेरेज एन्जाइम कोर एन्जाइम (Core enzyme) एवं सिग्मा कारक (σ or Sigma factor) से मिलकर बना होता है। अनुलेखन की प्रक्रिया के समय यह RNA पॉलीमेरेज एन्जाइम DNA श्रृंखला से जुड़कर DNA का अकुण्डलीकरण कर देता है तथा DNA के एक स्ट्रेण्ड में m-RNA के सम्पूरक न्यूक्लियोटाइड्स (Complementary nuclotides) का निर्माण प्रारंभ करता है तथा DNA की पूरी लम्बाई में गति करके m-RNA की एक पूर्ण श्रृंखला बना देता है।

प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं जैसे ई. कोलाई (E. Coli) में केवल एक प्रकार का RNA पॉलीमेरेज सभी प्रकार के RNA का निर्माण करता है। जबकि यूकेरियोटिक कोशिकाओं में

तीन प्रकार के RNA पालीमेरेज विभिन्न प्रकार के RNA के निर्माण के लिये उत्तरदायी होते हैं–

(i) RNA पॉलीमेरेज I– यह r- RNA का निर्माण करता है।
(ii) RNA पॉलीमेरेज II– यह Hn- RNA का निर्माण करता है।
(iii) RNA पॉलीमेरेज III– यह 5-S- r RNA एवं t- RNA का निर्माण करता है।

ई. कोलाई (E. Coli) के RNA पॉलीमेरेज एन्जाइम का अध्ययन करने पर पाया गया है कि यह एन्जाइम कुल 5 प्रकार की पॉलीपेप्टाइड श्रृंखलाओं से मिलकर बना होता है–

(i) दो अल्फा श्रृंखला (α- Chain) कोर एन्जाइम
(ii) एक बीटा (β) श्रृंखला
(iii) एक बीटा वन (β_1) श्रृंखला
(iv) एक गामा (γ) श्रृंखला
(v) एक सिग्मा (σ) श्रृंखला।

इन पाँचों श्रृंखलाओं में से प्रथम चार श्रृंखला मिलकर कोर एन्जाइम (Core enzyme) का निर्माण करते हैं जबकि σ कारक इसके साथ ढीले रूप से जुड़ने के पश्चात् एक पूर्ण क्रियाशील एन्जाइम का निर्माण करता है। सिग्मा कारक का प्रमुख कार्य आनुवंशिक संकेतों को DNA अणु से परिचय (Recognition) करवाने के पश्चात् RNA पॉलीमरेज के कोर एन्जाइम को समारम्भन स्थल (Initiation site) के चयन के लिये निर्देशित करता है और अन्त में m-RNA के निर्माण का समारंभन करता है। m-RNA के समारंभन होते ही सिग्मा कारक DNA श्रृंखला से अलग हो जाता है तथा कोर एन्जाइम m- RNA की श्रृंखला की लम्बाई को बढ़ाने का कार्य करने लगता है।

प्रश्न–7. प्रोटीन संश्लेषण की क्रियाविधि का सचित्र वर्णन कीजिये।

अथवा

प्रोटीन संश्लेषण में DNA एवं विभिन्न प्रकार के RNA की भूमिका का वर्णन कीजिये।

अथवा

अनुवादन (Translation) पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2013]

उत्तर– प्रोटीन संश्लेषण (Protein Synthesis)– प्रोटीन्स अमीनो अम्लों के बहुलक है, जो कि अमीनो अम्लों के आपस में पेप्टाइड बन्ध से जुड़ने के कारण निर्मित होती हैं। प्रोटीन किसी जीव के जैविक लक्षणों के निर्धारण अथवा जैविक क्रियाओं के सम्पादन के लिये अति आवश्यक होती हैं। इसका निर्माण ट्रांसक्रिप्शन (Transcription) एवं ट्रांसलेशन (Translation) दो स्तरों पर होता है।

ट्रांसक्रिप्शन (Transcription) एवं ट्रांसलेशन प्रोटीन निर्माण क्रिया के दो भाग हैं। सामान्यतः DNA कोशिका का आनुवंशिक पदार्थ होता है, जो कि आनुवंशिक सूचनाओं का वाहक होने के साथ–साथ उसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाने का कार्य भी करता है।

प्रोटीन निर्माण की क्रियाविधि (Mechanism of Protein synthesis)– प्रोटीन निर्माण की क्रिया निम्न दो पदों में पूर्ण होती है–

अनुलेखन (Transcription)– (पिछले प्रश्न का अध्ययन करें)

अनुवादन (Translation)– m-RNA प्रोटीन का निर्माण अथवा DNA से प्राप्त आनुवंशिक सूचनाओं का m- RNA के द्वारा प्रोटीन की भाषा में अनुवाद करना ही अनुवादन कहलाता है। अनुवादन, प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में पूर्ण होती है–

(a) अमीनो–अम्लों का सक्रियण (Activation of Amino acids)– अमीनो–अम्ल कोशिका–द्रव्य में अक्रिय अवस्था में पाये जाते हैं। इन अमीनो–अम्लों का सक्रियण ATP के द्वारा अमीनो–एसिल t-RNA सिन्थेटेज एन्जाइम (E_1) की उपस्थिति में होता है और अमीनो–एसिल AMP एन्जाइम कॉम्प्लेक्स का निर्माण होता है।

$$AA_1 + ATP \xrightarrow{E1} AA_1 - AMP - E_1 + PP$$

यहां पर AA_1 = प्रथम अमीनो–अम्ल है।

(b) t- RNA के साथ सक्रिय अम्ल का जुड़ना (Attachment of (AA_1– AMP – activated amino acid with t-RNA)

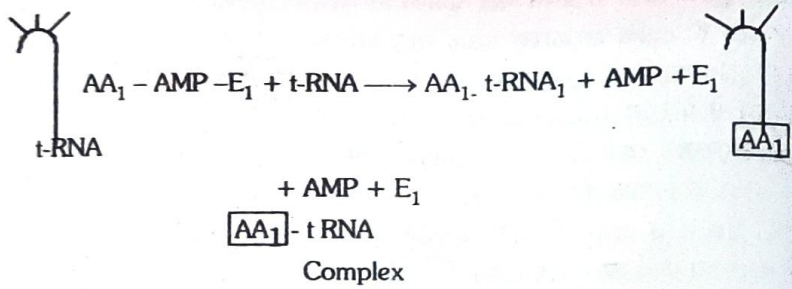


Fig. Attachment of activated amino acid with t-RNA

(c) पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का समारंभन (Initiation of Polypeptide chain)– पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का समारंभन मिथियोनिन नामक अमीनो–अम्ल से होता है। जिसका कोडॉन AUG होता है। प्रोकैरियोटिक कोशिकाओं में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का समारंभन निम्नलिखित चरणों में पूर्ण होता है–

(1) फार्मिल मिथियोनिल t- RNA का निर्माण (Formation of Formnlated metnionyl t-RAN)– प्रोकैरियोट्स में सर्वप्रथम मिथियोनिन का फार्मिलेशन होता है। फार्मिलीकरण की प्रक्रिया में सर्वप्रथम मिथियोनिन एक विशेष प्रकार के t-RNA के साथ जुड़ जाता है।

Methionine + t-RNA f met ⟶ met– t-RNA f- met

यह met- t-RNA_f met ट्रांसफॉर्मिलेज एन्जाइम की उपस्थिति में फार्मिल टेट्राहाइड्रोफोबिक अम्ल (फार्मेट) से क्रिया करके फार्मिलेटेड मिथियोनिल t-RNA (f met-t-RNA f met) का निर्माण करता है।

met- t-RNA f met + Formate ⟶ f met- t- RNA f met

(2) m-RNA एवं राइबोसोम की छोटी उप–इकाई (30S) में बंधन (Association of m-RNA with 30S unit of Ribosome)– प्रोटीन का निर्माण राइबोसोम में होता है। जैव प्रोटीन का निर्माण हो जाता है, तब राइबोसोम की दोनों उप–इकाइयां अलग–अलग

हो जाती हैं। प्रोटीन निर्माण के समय सर्वप्रथम 30S उप–इकाई m-RNA के प्रथम कोडॉन (AUG) के साथ जुड़कर 30S m-RNA कॉम्प्लेक्स बनाना है।

इस प्रक्रिया में तृतीय समारंभन कारक (IF_3) भाग लेता है तथा GTP ऊर्जा की आपूर्ति करता है।

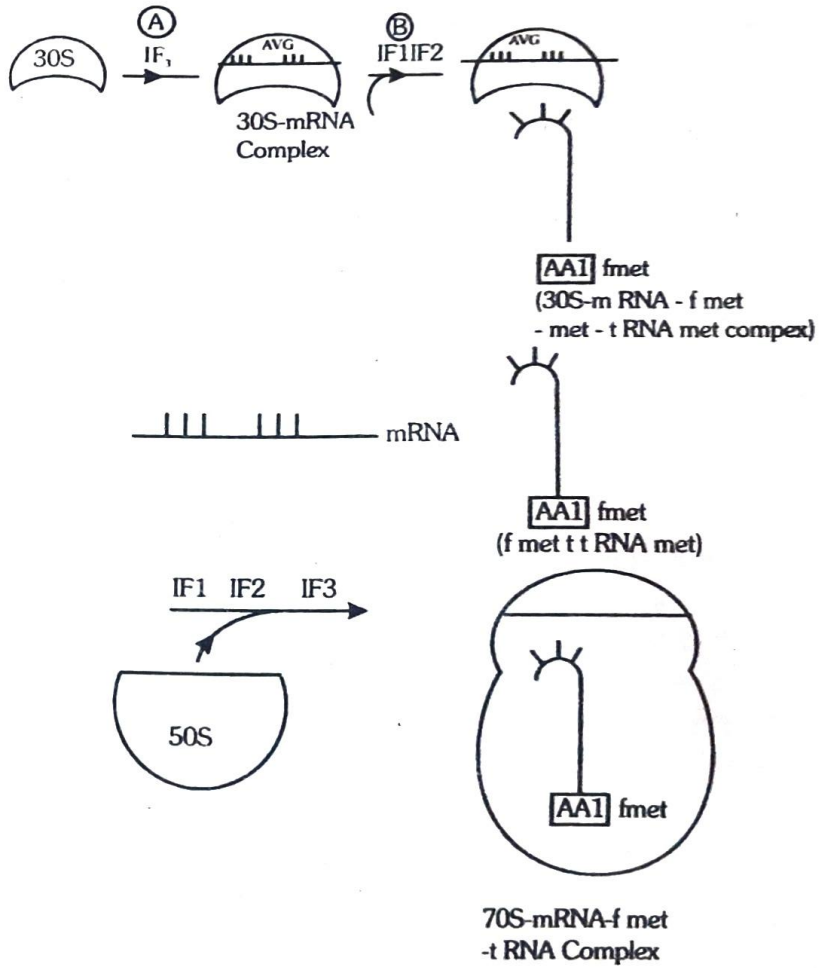


Fig- Initiation of Polypeptide Chain

(A) Binding of 30S with m RNA,
(B) Binding of f met t-RNA with 30S m-RNA
(c) Binding of 30S m-RNA f met t-RNA f met with 50S unit.

$$30S + \text{m-RNA} \xrightarrow[GTP\ GDP + iP]{IF_3} \text{30S- m-RNA-Complex}$$

(3) f met- t-RNA $_f$-met का 30S m-RNA कॉम्प्लेक्स से जुड़ना–

30S- m-RNA Complex + f met

$$t\text{-}RNA_f \xrightarrow[GTP\ GDP + iP]{IF_1\ IF_2} 30S\text{- m-RNA- f met t-RNA}_f \text{ met t RNA}_f \text{ met Complex}$$

(4) 30S m- RNA f met t-RNA f met का 50S उप–इकाई से जुड़ना– यह अभिक्रिया IF_1, IF_2, एवं IF_3 की उपस्थिति में GTP की सहायता से निम्न प्रकार से पूर्ण होती है–

$$30S\text{-m RNA f-met- t-RNA f met} + 50S \xrightarrow{IF_1\ IF_2\ IF_3} \underset{70S\text{- m- RNA- f met- t- RNA f met complex}}{} GTP\ GDD + ip$$

(d) पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला की लम्बाई में वृद्धि (Elongation of Polypeptide chain)– 70S m-RNA- f met- t RNA f met Complex के निर्माण के पश्चात् पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला की लम्बाई में वृद्धि अमीनो–अम्लों के नियमित जुड़ने के कारण होती है। यह प्रक्रिया निम्नलिखित चरणों में होती है –

(1) द्वितीय सक्रिय अमीनो–अम्ल का अपने t- RNA सहित (AA_2- t-RNA) राइबोसोम के A स्थल से जुड़ना–

$$70S\text{ m- RNA- f met t-RNA f met} + \boxed{AA_2}\text{-t RNA} \xrightarrow{EF} GTP\ GDP + ip$$

$$70S\text{ m-RNA- f met-t RNA f met- } AA_2 + \text{t- RNA- Complex}$$

(2) पेप्टाइड बंध का निर्माण– पेप्टाइड बंध का निर्माण एक अमीनो–अम्ल के कार्बोक्सिलिक समूह (–COOH) एवं द्वितीय अमीनो–अम्ल के अमीनो–समूह ($-NH_2$) के मध्य होता है। पेप्टाइड बंध के निर्माण के समय P स्थल पर उपस्थित fmet (AA_1) का –COOH समूह A स्थल पर उपस्थित $-NH_2$ समूह के साथ पेप्टाइड बंध बनता है। इस प्रकार AA_1 एवं AA_2 आपस में जुड़ जाते हैं।

(3) पेप्टीडिल t- RNA का A स्थल से P स्थल पर स्थानान्तरण– पेप्टाइड बंध का निर्माण पूर्ण होते ही राइबोसोम m-RNA की श्रृंखला में दाहिनी ओर गति करता है जिसके कारण A स्थल पर उपस्थित पेप्टीडिल t-RNA P स्थल पर आ जाता है और स्थल पर उपस्थित t-RNA राइबोसोम से बाहर आ जाता है।

(4) पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का समापन– पेप्टिडिल के pt स्थल पर आने के कारण A स्थल रिक्त हो जाता है। अतः अब तृतीय अमीनो–अम्ल अपने t-RNA (AA_3–t RNA) के साथ A स्थल से जुड़ जाता है। अब पुनः P स्थल पर उपस्थित अमीनो–अम्ल (AA_1, AA_2) A स्थल पर उपस्थित तृतीय अमीनो–अम्ल (AA_3) से पुनः पेप्टाइड बंध द्वारा जुड़ जाता है। इस प्रकार यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि A स्थल पर कोई श्रृंखला समापन कोडॉन UAA, UAG अथवा UGA नहीं आ जाता है। यह क्रिया RF_1 एवं RF_2 (वियोजन कारक) की उपस्थिति में होती है।

(5) राइबोसोम की उप–इकाइयों का विघटन– A स्थल पर श्रृंखला समापक कोडान्स के आते ही RF_1 एवं RF_2 सक्रिय हो जाते हैं जिसके कारण राइबोसोम का विघटन हो जाता है। परिणामस्वरूप 30S, 50S, m-RNA, t-RNA एवं पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला जीवद्रव्य में स्वतंत्र हो जाती है। जीवद्रव्य में पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला में कुछ रूपान्तरण होते हैं।

(6) स्वतंत्र पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला का रूपान्तरण– पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला के स्वतन्त्र होने के पश्चात् इसमें कई परिवर्तन होते हैं–

सर्वप्रथम मिथियोनिल का डिफार्मिलेशन डिफार्मिलेज एन्जाइम की सहायता से होता है–

$$\text{Formylated methionyl peptide} \xrightarrow{\text{डिफार्मिलेज}} \text{ethionyl peptide + Formic acid}$$

पॉलीपेप्टाइड राइबोसोम से पृथक होने के पश्चात् फॉल्डिंग प्रारम्भ कर देते हैं और कई पॉलीपेप्टाइड श्रृंखला आपस में जुड़कर त्रिआयामी संरचना बनाती है। इस प्रकार प्रोटीन का अणु त्रिआयामी संरचना ग्रहण करने के पश्चात् एक क्रियाशील प्रोटीन का निर्माण करता है।

प्रश्न–8. ओपेरॉन मॉडल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2006,12 सागर 07,13]

अथवा

जीन सक्रियता के नियमन के लिये ऑपेरॉन मॉडल का वर्णन कीजिये। [भोपाल 08,10,16]

उत्तर– **ओपेरॉन मॉडल (Operon Model)–** ओपेरॉन मॉडल (Operon model) सन् 1961 में एफ. **जैकॉब (F. Jacob)** एवं जे. **मोनाड (J. Monad)** के द्वारा दिया गया। यह मॉडल एन्जाइम संश्लेषण के प्रेरण अथवा दमन को प्रस्तुत करता है और ई. कोलाई (E. Coli) में β – गैलेक्टोसाइड्स एन्जाइम के संश्लेषण से सम्बन्धित प्रेरणीय तन्त्र पर किये गये एक अध्ययन पर आधारित है।

1. ओपेरॉन–ऑपरेटर जीन तथा संरचनात्मक जीन (The Operon–Operator Gene and Structural Gene)– ओपेरॉन मॉडल के अन्तर्गत अनुलेखन (Transcription) की इकाई एक ओपेरॉन है, जो इन अवयवों (Components) का बना होता है।

(i) ऑपरेटर जीन (Operator Gene)– ऑपरेटर जीन वो स्थल है जहाँ सक्रियक (activator) अथवा दमनकर (Repressor) अनुक्रिया करते हैं। इस अनुक्रिया के द्वारा ये निर्धारित होता है कि अनुलेखन क्रिया हो या न हो।

(ii) संरचनात्मक जीन (Structural Gene)– जीन का एक समुच्चय जिसमें जीनों की संख्या अनिश्चित होती है, परन्तु यह सभी एक ही ऑपरेटर जीन के नियंत्रण में रहते हैं। इन जीनों द्वारा संश्लेषित एन्जाइम, एक विशिष्ट जैव संश्लिष्ट मार्ग में एक समन्वित रूप से भाग लेते हैं।

2. रेगुलेटर जीन तथा दमनकर (Regulator Gene and the Repressor)– β – गैलेक्टोसाइडेस का संश्लेषण लेक्टोस की अनुपस्थिति में नहीं होता है जिसका तात्पर्य यह है कि प्रेरक की अनुपस्थिति में β– गैलेक्टोसाइडेज में जीन क्रियाशील नहीं होते हैं। यह किस प्रकार होता है उसके लिये ये ज्ञात है कि कोशिकाओं में कुछ ऐसे अणु भी पाये जाते हैं जो जीनों की क्रियाशीलता पर नियंत्रण रखते हैं। इन अणुओं को दमनकर (Repressor) कहते हैं। ये दमनकर कभी क्रियाशील होते हैं कभी निष्क्रिय। निम्न रूपरेखा के अनुसार एक प्रेरक से मिलाने पर क्रियाशील दमनकर निष्क्रिय हो जाता है और एक सह–दमनकर की उपस्थिति में एक निष्क्रिय दमनकर क्रियाशील हो जाता है–

(i) प्रेरणीय तन्त्र (Inducible System)– क्रियाशील दमनकर (active repressor) + प्रेरक (inducer) = निष्क्रिय दमनकर (inactive repressor) ।

(ii) दमनशील तन्त्र (Repressible System)– निष्क्रिय दमनकर (Inactive Repressor) + सहदमनकर (Co-repressor) = क्रियाशील दमनकर (repressor) एक ऑपेरॉन में दमनकर का संश्लेषण जीन (i) क्रिया से होता है। इस जीन को रेगुलेटर जीन (Regulator gene) कहा जाता है। यह दमनकर बनने के बाद ऑपरेटर जीन (Operator gene) से जुड़कर m– RNA के संश्लेषण को निष्क्रिय करता है।

जब लैक्टोस उपस्थित होता है तो दमनकर निष्क्रिय हो जाता है और ऑपरेटर जीन से जुड़ नहीं पाता है, जिससे कि m – RNA का संश्लेषण क्रियाशील हो जाता है।

3. **अहेतुक प्रभाव (Constitutive Strains)**– रेगुलेटर जीन (i) में उत्परिवर्तन हो जाने के फलस्वरूप भी कोशिका में दमनकर का अभाव हो जाता है और इस वजह से एन्जाइम का लगातार संश्लेषण होने लगता है। ऐसे प्रभाव, जिनमें आवश्यकता के बिना भी लगातार एन्जाइम का संश्लेषण होता है, अहेतुक प्रभाव (Constitutive Strains) या अहेतुक उत्परिवर्तन (Constitutive mutants) कहलाते हैं। ये अहेतुक प्रभाव ऑपरेटर जीन में उत्परिवर्तन के द्वारा भी प्राप्त किये जा सकते हैं। जब ऑपरेटर जीन में उत्परिवर्तन होता है तो दमनकर, ऑपरेटर से जुड़ नहीं पाता है। इस प्रकार अहेतुक प्रभाव भी दो प्रकार के होते हैं–

(i) रेगुलेटर अहेतुक (Regulator Constitutive)

(ii) ऑपरेटर अहेतुक (Operator Constitutive)

उपरोक्त दिये गये उत्परिवर्तनों का एक ही परिणाम होता है पर ये अपने वन्य प्ररूप के साथ प्रभावी–अप्रभावी (dominant – Recessive) सम्बन्धों में भिन्न होते हैं। इस सम्बन्ध के आंशिक द्विगुणित कोशिकाओं अर्थात् अंश युग्मकों (merozygotes) के प्रयोग द्वारा ज्ञात किया गया था। आंशिक द्विगुणित कोशिकायें ऐसी कोशिकायें होती हैं, जिनमें एक गुणसूत्र पूरा और दूसरा गुणसूत्र का केवल वह अंश होता है जो इच्छित अंश की पूर्ति करता है। अब रेगुलेटर अहेतुक के लिये विषमयुग्मकों को व्युत्पन्न किया गया तो एन्जाइम संश्लेषण नहीं हुआ।

इससे ज्ञात होता है कि वन्य (i) जीन i° के ऊपर प्रभावी है। दूसरी और ऑपरेटर स्थल पर उत्परिवर्तन के लिये आंशिक द्विगुणित एवं विषमयुग्मजी कोशिका में एन्जाइम का अहेतुक संश्लेषण प्रदर्शित होने से ज्ञात हुआ कि सामान्य प्रचालन जीन 'O' उत्परिवर्ती जीन अथवा 'O^{C}' के लिये अप्रभावी होता है।

इस प्रकार ऑपरेटर जीन, सिस प्रभावी (Cis–Dominant) या अर्थात् यह जीव जब किसी स्ट्रक्चरल जीन के बराबर में उसी गुणसूत्र पर स्थित हो तभी उस स्ट्रक्चरल जीन को प्रभावित करते हैं। पर इसके विपरीत रेगुलेटर जीन इन जीनों को भी प्रभावित करता है जो उसी कोशिका के किसी अन्य गुणसूत्र पर स्थित हो ऑपरेटर व रेगुलेटर जीनों के इस स्वभाव से यह निष्कर्ष निकाला गया कि रेगुलेटर जीन का प्रभाव ऐसे दमनकर (Repressor) के माध्यम से होना चाहिये, जो प्रसरित हो सके (diffusible) हो। इसके विपरीत ऑपरेटर जीन इस दमनकर की क्रिया (action) का एक स्थल मात्र ही है।

4. **प्रोमोटर जीन, प्रिन्नोबॉक्स तथा अन्य नियमनकारी DNA अनुक्रम (Promotor Gene Pribnone box and other regulatory DNA Sequences)**– प्रोटीन संश्लेषण के लिये अनुलेखन समारम्भ का वास्तविक स्थल प्रोमोटर जीन (Promoter gene) में पाया जाता है। यह प्रोमोटर जीन ऑपरेटर जीन के बायें ओर स्थित होता है। ऑपरेटर जीन, दमनकर प्रोटीन का क्रियास्थल होता है। RNA पॉलीमेरेज सम्भवतः प्रोमोटर स्थल पर आता है और यहीं से क्रियाशील होता है। ऑपरेटर से दमनकर संलग्न हो जाता है तो यह RNA पोलीमेरेज की गति को रोक देता है।

प्रश्न–9. जीन क्रिया के नियमन के लिये ओपेरॉन मॉडल की संरचना एवं कार्यों पर एक निबन्ध लिखिये।

अथवा

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(i) नियंत्रक जीन **(ii) संरचनात्मक जीन**

(iii) ऑपरेटर एवं प्रमोटर जीन **(iv) धनात्मक एवं ऋणात्मक नियंत्रण।**

उत्तर– **जीन क्रिया का नियमन (Regulation of gene expression)**– जीन्स जीवों की क्रियात्मक इकाई है जो कि गुणसूत्रों के ऊपर एक रैखिक क्रम में व्यवस्थित रहते हैं तथा जीनों के जैविक लक्षणों का निर्धारण करते हैं। जीवों की प्रत्येक कोशिका में हजारों जीन पाये जाते हैं लेकिन ये सभी जीन एक साथ क्रियाशील नहीं रहते बल्कि आवश्यकताओं के अनुसार एक विशिष्ट जीन एक विशिष्ट समय में ही क्रियाशील होता है और प्रोटीन का निर्माण करते हैं।

उदाहरण– अंकुरण के समय उपयोग होने वाले एन्जाइम व्यस्क अवस्था में काम नहीं आते हैं। इस प्रकार कोशिकाओं में कोई ऐसी व्यवस्था होती है जिसके द्वारा एक विशिष्ट जीन को एक विशिष्ट समय में क्रियाशील होने की अनुमति दी जाती है जबकि अन्य जीन्स की क्रियाशीलता नियंत्रित रहती है। इसे जीन क्रिया का नियमन कहते हैं।

जीन क्रिया का नियमन मुख्य रूप से निम्नलिखित स्तरों पर किया जाता है–

(i) अनुलेखन (Transcription) (ii) अनुवादन (Translation)

(iii) m-RNA का संवाहन (Transport) (iv) एन्जाइमिक क्रिया के समय।

सर्वप्रथम जैकब एवं मोनोड ने ईश्चीरीचिया कोलाई (E. Coli) नामक जीवाणु में जीन क्रियाविधि के नियमन की प्रक्रिया का अध्ययन करके एक मॉडल प्रस्तुत किया था जिसे ओपेरॉन मॉडल (Operon model) कहते हैं।

प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में जीन क्रिया का नियमन (Regulation of gene action in prokaryotic cells)– जैकब एवं मोनोड ने बताया कि प्रोकेरियोटिक कोशिकाओं में जीन क्रिया का नियमन क्रमशः प्रेरण (induction) एवं दमन (repression) प्रक्रियाओं के द्वारा होता है।

(A) प्रेरण (Induction)– प्रेरण प्रक्रिया में जीन या जीनों को एक विशिष्ट समय में आवश्यकताओं के अनुरूप एक विशिष्ट प्रोटीन या एन्जाइम को उत्पन्न करने के लिये प्रेरित किया जाता है। उदाहरण ई. कोलाई (E. Coli) में β– गैलेक्टोसाइडेज एन्जाम का निर्माण।

$$\text{लैक्टोज} \xrightarrow[\text{जल अपघटन}]{\beta\text{ –गैलेक्टोसाइडेज एन्जाइम}} \text{ग्लूकोज + गैलेक्टोज}$$

β– गैलेक्टोसाइडेज एन्जाइम लैक्टोज शर्करा के जल–अपघटन के लिये आवश्यक होता है। लैक्टोज शर्करा की उपस्थिति में ई. कोलाई की कोशिकायें तीन प्रकार के एन्जाइम बनाती हैं–

(i) β– गैलेक्टोसाइडेज

(ii) β– गैलेक्टोसाइड परमिएज

(iii) β– गैलेक्टोसाइड ट्रांसएसीटिलेज

लैक्टोज शर्करा की अनुपस्थिति में इन एन्जाइमों का निर्माण नहीं होता है लेकिन माध्यम में लैक्टोज शर्करा की आपूर्ति की जाती है तब उपरोक्त एन्जाइमों के निर्माण की दर में अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार– 'किसी अभिक्रिया में उसके सबस्ट्रेट पदार्थों को मिलाने से जिन एन्जाइमों के निर्माण की दर बढ़ जाती है, उन्हें प्रेरक एन्जाइम (Inducible enzyme) कहते हैं तथा ऐसा आनुवंशिक तंत्र प्रेरक तन्त्र (inducible system) कहलाता है तथा ऐसे जीन्स जिनकी अभिव्यक्ति उपरोक्त प्रक्रम के द्वारा नियंत्रित की जाती है, उन्हें प्रेरक जीन (Inducible genes) कहते हैं।'

इसी प्रकार प्रेरण प्रक्रिया के लिये उत्तरदायी पदार्थ प्रेरक पदार्थ (Inducer) कहलाते हैं। प्रेरण प्रक्रिया ट्रांसक्रिप्शन स्तर पर ही होती है।

दमन (Repression)– इस प्रकार प्रक्रिया के द्वारा जीन की क्रियाशीलता को रोका जाता है जिसके कारण किसी विशिष्ट प्रोटीन के निर्माण की दर कम हो जाती है, अथवा पूर्ण रूप से रुक जाती है।

उदाहरण– ई. कोलाई में अपनी वृद्धि के लिये आवश्यक सभी कार्बनिक पदार्थों जैसे– अमीनो–अम्ल, प्रोटीन, विटामिन आदि का निर्माण करने की क्षमता होती है। लेकिन यदि इन्हें किसी अमीनो–अम्ल जैसे– हिस्टीडीन (Histidine) की आपूर्ति बाहर से की जाती है, तब माध्यम में हिस्टीडीन का निर्माण करने वाले एन्जाइमों के निर्माण की दर कम हो जाती है।

'इस प्रकार ऐसा तेज जिसमें उस क्रिया का उत्पाद (end product) मिलाने पर क्रिया की दर कम हो जाती है, उसे दमनकारी तन्त्र (Repressible System) कहते हैं तथा अन्य उत्पाद मिलाने पर जिस एन्जाइम के निर्माण की दर कम हो जाती है, उसे दमनकारी एन्जाइम (Repressible enzyme) कहते हैं।'

ओपेरॉन सिद्धान्त (Operon Theory)– प्रेरण एवं दमन क्रिया को समझाने के लिये जैकब एवं मोनोड (Jacob and Monod) ने ई. कोलाई (E.Coli) के लैक्टोज ओपेरॉन (Lactose Operon) का अध्ययन करके जीन क्रिया के नियमन के लिये ओपेरॉन मॉडल (Operon model) प्रस्तुत किया था। इनके अनुसार–

''संरचनात्मक (Structural) एवं नियंत्रक जीन्स (Controller genes) का ऐसा समूह जो कि कोशिका में चयापचय (Catabolism) पर आनुवंशिक नियंत्रण (Genetic control) रखता है, उसे ही ओपेरॉन कहते हैं।''

ओपेरॉन की संरचना (Structure of operon)– जैकॉब एवं मोनॉड (Jacob and Monod-1961) के अनुसार लैक्टोज ओपेरॉन निम्नलिखित दो प्रकार के जीन्स से मिलकर बना होता है–

(A) नियंत्रक जीन्स (Controller genes) (B) संरचनात्मक जीन्स (Structural genes)

(A) नियंत्रक जीन्स (Controller genes)– ऐसे जीन्स जो कि प्रेरक एवं दमन प्रक्रिया के द्वारा संरचनात्मक जीन्स की क्रियाशीलता पर नियंत्रण रखते हैं, उन्हें नियंत्रक जीन्स कहते हैं। ये तीन प्रकार के होते हैं–

(i) रेगुलेटर जीन (Regulator gene) (ii) प्रमोटर जीन (Promotor gene)

(iii) ऑपरेटर जीन (Operator gene)

(i) रेगुलेटर जीन (Regulator gene)– यह एक प्रकार के एन्जाइम का स्त्रावण करता है जो रिप्रेसर के समान कार्य करता है। लेक ओपेरॉन के जीन में एक प्रोटीन का सन्देश कोडित होता है जिसके द्वारा ऑपरेटर जीन को बाँध के या रोक के उसकी सक्रियता का दमन होता है।

(ii) प्रमोटर जीन (Promotar gene)– यह जीन रेगुलेटर जीन एवं ऑपरेटर जीन के बीच पाया जाता है। यहाँ पर RNA पॉलीमेरेज एन्जाइम ओपेरॉन से जुड़ता है तथा संरचनात्मक जीन्स के अनुलेखन का समारम्भन (Initiation of transcription) करता है। इस प्रकार 'DNA' का वह भाग जो RNA का पॉलीमेरेज एन्जाइम की क्रियाशीलता पर नियंत्रण रखता है तथा m-RNA का अनुलेखन करता है, उसे ही प्रोमोटर जीन कहते हैं।

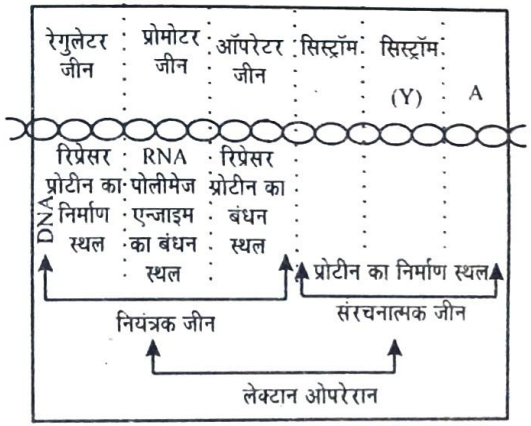


fig. Structure of operon.

(iii) ऑपरेटर जीन (Operator gene)– DNA का ऑपेरॉन का यह भाग संरचनात्मक जीनों की क्रियाशीलता पर नियंत्रण रखता है। दमनकारी प्रोटीन या एन्जाइम (Repressible Protein or enzyme) इसी स्थान पर DNA श्रृंखला से जुड़ता है।

संरचनात्मक जीन्स (Structural genes)– यह DNA के उन खण्डों का प्रतिनिधित्व करते हैं, जिन पर प्रोटीन संश्लेषण की सूचना कोडेड रहती है और यह जीन्स पालीपेप्टाइड चेन की प्राथमिक रचना के संश्लेषण के समय अमीनो–अम्ल की व्यवस्था को नियंत्रित करते हैं। संरचनात्मक जीन तीन प्रकार के होते हैं–

(i) सिस्ट्रॉन–Z (Cistron- Z) (ii) सिस्ट्रॉन– Y (Cistron- Y)

(iii) सिस्ट्रॉन– A (Cistron- A)

(i) सिस्ट्रॉन–Z (Cistron- Z)– यह ऑपरेटर जीन एवं सिस्ट्रॉन A के मध्य पाया जाता है। DNA के इस भाग में β– गैलेक्टोसाइडेज एन्जाइम के निर्माण से सम्बन्धित कोडॉन पाये जाते हैं।

(ii) सिस्ट्रॉन– Y (Cistron-Y)– DNA के इस भाग में β– गैलेक्टोसाइडेज परमिएज एन्जाम के निर्माण से सम्बन्धित कोडॉन पाये जाते हैं।

(iii) सिस्ट्रॉन– A (Cistron- A)– DNA के इस भाग में β– गैलेक्टोसाइड परमिएज एन्जाइम के निर्माण से सम्बन्धित कोडॉन पाये जाते हैं। यह ओपेरॉन का अंतिम जीन होता है।

ओपेरॉन की क्रियाविधि (Mechanism of Operon action)– बेकविथ (Beck-with- 1967), इपस्टीन (Epstein 1968) एवं मार्टिन (Martin 1969) ने ई. कोलाई के लैक ओपेरॉन में ऑपरॉन की क्रियाविधि का अध्ययन किया इनके अनुसार ओपेरॉन निम्नलिखित दो अवस्थाओं में जीन क्रिया का नियमन करता है–

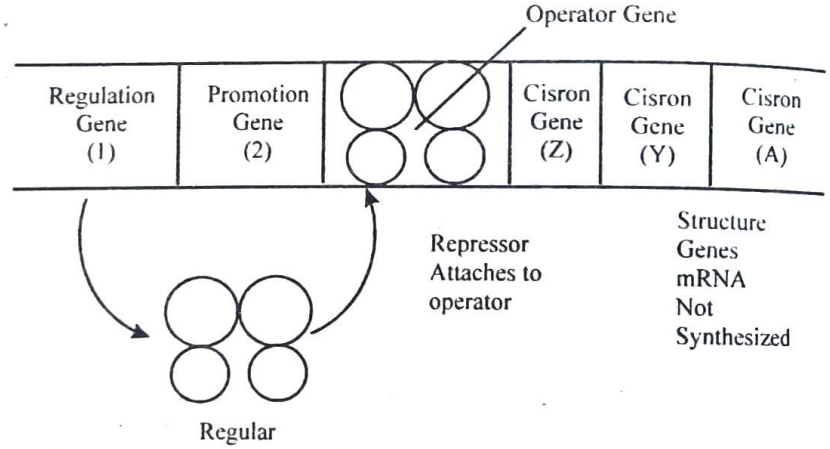


Fig. Mechanism of operon action in then absence of inducer molecules

(A) जब माध्यम में प्रेरक अनुपस्थित होता है (When inducer abrent)– प्रेरक पदार्थ की अनुपस्थिति में ओपेरॉन के रेगुलेटर जीन अनुलेखन एवं अनुवादन प्रक्रिया के द्वारा दमनकारी प्रोटीन (Repressible proteins) का निर्माण करते हैं। यह दमनकारी प्रोटीन ऑपरेटर स्थल (Operator site) से जुड़कर (m- RNA) के ट्रान्सक्रिप्शन रुक जाता है अतः संरचनात्मक जीन m- RNA का संश्लेषण नहीं कर पाते हैं। ऑपरेटर स्थल पर दमनकारी

प्रोटीन जुड़ने के कारण DNA पर RNA पॉलीमरेज एन्जाइम आगे नहीं बढ़ पाता है अतः m-RNA का अनुलेखन एवं संरचनात्मक जीन्स के द्वारा प्रोटीन्स का निर्माण नहीं हो पाता है।

(B) जब माध्यम में प्रेरक उपस्थित होता है (When inducer molecules present)– जब माध्यम में प्रेरक पदार्थ (लेक्टोज) उपस्थित होता है तब यह ई. कोलाई की कोशिकाओं में प्रवेश कर जाता है। यहाँ पर लैक्टोज के आण्विक विन्यास परिवर्तनों के कारण एलोलैक्टोज (Allolactose) का निर्माण होता है। यह एलोलैक्टोज ऑपरेटर स्थल पर उपस्थित दमनकारी प्रोटीन के साथ जुड़कर दमनकारी प्रोटीन को अक्रियाशील (Inactive) कर देता है, परिणामस्वरूप यह अक्रिय दमनकारी प्रोटीन ऑपरेटर स्थल से अलग हो जाती है।

DNA से अक्रियाशील दमनकारी प्रोटीन के अलग होते ही RNA पॉलीमरेज एन्जाइम प्रोमोटर जीन (P)के समारंभन स्थल (Initiation site) से जुड़कर m- RNA का अनुलेखन करता है। यह m- RNA बाद में विभिन्न एन्जाइमों (प्रोटीन) का निर्माण संरचनात्मक जीन्स की सहायता से करता है।

सिस्ट्रॉन Z में पहुंचने के पश्चात् m- RNA की श्रृंखला से राइबोसोम जुड़ जाते हैं और वहाँ पर β– गैलेक्टोसाइडेज एन्जाइम का अनुलेखन होता है। सिस्ट्रॉन γ में पहुंचने पर राइबोसोम β– गैलेक्टासाइडेज पर मिश्रण एन्जाइम का निर्माण करता है। जबकि सिस्ट्रॉन A में इनके द्वारा β– गैलेक्टोसाइड ट्रांसएसीटिलेज एन्जाइम का निर्माण होता है। इस प्रकार लैक्टोज के जल–अपघटन के लिये आवश्यक सभी एन्जाइम का निर्माण पूर्ण होते ही प्रक्रिया रुक जाती है। बाद में दूसरे प्रकार की प्रोटीन की आवश्यकता होने पर ऑपेरॉन पुनः सक्रिय हो जाता है।

(1) धनात्मक एवं ऋणात्मक नियंत्रण (Positive and Negative Control)– जीन क्रिया के नियमन के समय कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो ओपेरॉन की क्रियाशीलता पर सकारात्मक (Positive) प्रभाव डालते हैं। ऐसे पदार्थों को ऑपेरॉन के साथ मिश्रित करने पर ये रेगुलेटर जीन (i) को दमनकारी प्रोटीन के निर्माण के लिये प्रेरित करता है तथा ऑपरेटर जीन्स (o) को सक्रिय करते हैं।

साइक्लिक AMP एवं कैटाबोलिक, जीन एक्टिवेटर (Cga) लेक ओपेरॉन पर सकारात्मक या धनात्मक प्रभाव डालते हैं। यहाँ पर C- AMP, Cga प्रोटीन को सक्रिय करता है जिसके कारण Cga प्रोटीन RNA पॉलीमरेज एन्जाइम को प्रोमोटर जीन (p) से बंधित होने के लिये सक्षम बनाती है।

Cga	ibs	Op	Z

Cga = Site of protein bondage
ibs = Primary bondage site for RNA polymerase
Op = Operator gene
Z = Structural gene of β- gelactosidease enzyme

Fig. Structure of promotor gene of lac operon

इस प्रकार दमनकारी प्रोटीन, प्रोटीन निर्माण पर ऋणात्मक नियंत्रण रखता है जबकि Cga एवं c- AMP लेक ऑपेरॉन की क्रियाशीलता पर धनात्मक नियंत्रण रखता है।

प्रश्न–10. प्रोकैरियोट्स तथा यूकैरियोट्स में अनुवाद के प्रारम्भन में अन्तर स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– प्रोकैरियोट्स तथा यूकैरियोट्स में अनुवाद के प्रारम्भन में अन्तर निम्नलिखित है–

प्रोकैरियोट्स	यूकैरियोट्स
(1) इनमें प्रथम अमीनो अम्ल (मिथियोनिन) का फोर्माइलेशन जरूरी होता है। इसलिये मिथियोनिन के लिये दो प्रकार के t-RNA पाये जाते हैं। $t\text{-}RNA_i^{met}$ तथा $t\text{-}RNA_m^{met}$	(1) यूकैरियोट्स में प्रथम अमीनो अम्ल फोर्माइलेटेड नहीं होता है। इसलिये मिथियोनिन के लिये सिर्फ एक प्रकार का t-RNA पाया जाता है– $t\text{-}RNA_m^{met}$
(2) इन जीवों में राइबोसोम्स तथा m-RNA के बीच प्रारम्भिक सम्पर्क के लिये केवल तीन प्रारम्भन कारक अथवा सह–कारक की जरूरत होती है।	(2) इनमें राइबोसोम व m- RNA में सम्पर्क बनाने हेतु ATP व अनेक प्रोटीन कारक जरूरी होते है।
(3) प्रोकैरियोट्स में राइबोसोम, m-RNA के AUG कोडोन अथवा पास के एक स्थल शाइन डेलगानों पर प्रवेश करता है।	(3) इन जीवों में राइबोसोम m-RNA के टोपीदार 5 सिरे पर प्रवेश कर धीरे–धीरे रेखीय स्केनिंग द्वारा AUG कोडॉन पर पहुँचता है।
(4) इनमें प्रारम्भिक $met\text{-}tRNA_i^{met}$ के जुड़ने से पहले राइबोसोम की छोटी उपइकाई 30S, mRNA से सम्पर्क बना लेती है।	(4) यूकैरियोट्स प्रारम्भिक met RNA के जुड़ने के बाद ही राइबोसोम की छोटी इकाई 40S, मजबूती से m-RNA से जुड़ती है।

प्रश्न–11. रेगुलेशन ऑफ जीन एक्शन के सम्बन्ध में ऑपेरॉन मॉडल के बारे में समझाइये।

उत्तर– रेगुलेटर जीन सम्बन्धित संरचनात्मक जीन्स के समूह की ओर स्थित होता है तथा यह समूह रेगुलेटर जीन से जुड़कर एक यूनिट का निर्माण करता है, जो ओपेरॉन कहलाती है।

सम्पूर्ण संरचनात्मक जीन्स के समूह से सम्बन्धित समस्त जीन्स के लिये ऑपरेटर जीन्स एक स्विच के समान कार्य करता है। नियामक जीन से उत्पन्न रिप्रेसर का एक प्रोटीन अणु होता है। यह ऑपरेटर जीन से जुड़कर उसको क्रियाहीन कर देता है। इससे ऑपेरॉन से

सम्बन्धित सभी संरचनात्मक जीन्स के ट्रान्सक्रिप्शन ब्लॉक तथा उनकी समस्त संश्लेषण करने वाली एन्जाइमी क्रियायें रुक जाती हैं। अतः यह रासायनिक पदार्थ प्रेरक या प्रभावी कहलाता है। यह पदार्थ रिप्रेसर अणु को जोड़ता है और नियामक जीन के अवरोधी प्रभाव को रोक देता है। इस प्रकार प्रेरक की उपस्थिति में आपरेटर व रिप्रेशर स्वतंत्र या मुक्त हो जाता है और संरचनात्मक जीन्स नियन्त्रित होकर विशेष प्रकार (mRNA) के संश्लेषण में सहायक होते हैं जोकि एन्जाइम प्रोटीन का संश्लेषण करते हैं।

रिप्रेसर अणु में एक प्रोटीन होता है जो कोशिका में अधिक मात्रा में संचित हो जाने पर घातक होता है। नियामक जीन के द्वारा इस प्रकार के एन्जाइम्स के संश्लेषण पर नियन्त्रण होता है जो घातक प्रोटीन के संश्लेषण में उत्प्रेरक का काम करता है। प्रेरक संरचनात्मक जीन

के एन्जाइम का प्राकृतिक पदार्थ होता है, इस पदार्थ की अनुपस्थिति में निर्मित एन्जाइम का कोई विशेष महत्व नहीं होता है। प्रेरण क्रियाविधि के दौरान, जब पदार्थ के एन्जाइम पाये जाते हैं तब संरचनात्मक जीन्स सक्रिय हो जाते हैं। इससे एन्जाइम का संश्लेषण होता है और ये एन्जाइम सब्सट्रेट पर क्रिया करते हैं।

अतः उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि नियामक जीन्स संरचनात्मक जीन्स से अलग प्रकार के होते हैं। कोई नियामक जीन किसी क्रोमोसोम पर पाया जाता है लेकिन यह ऐसे स्थान पर नहीं पाया जाता है जहां पर ऑपरान उत्पन्न होता है। संरचनात्मक जीन्स द्वारा उत्पन्न एन्जाइम्स को भी नियामक जीन बदलते या इनके द्वारा ऐसी अवस्थायें उत्पन्न हो जाती हैं जिनमें संरचनात्मक जीन्स अपने एन्जाइम्स को उत्पादित कर सकते हैं।

नियामक जीन्स संरचनात्मक जीन्स के कार्यकलापों में सहायक होते हैं। कोशिका में आवश्यकतानुसार एन्जाइम्स का निर्माण होता है तथा आवश्यकता के न होने पर उनमें एन्जाइम्स का निर्माण रुक जाता है।

प्रश्न–12. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(i) खण्डित जीन (Split gene) [सागर 2007,10]

(ii) अतिव्यापन जीन (Overlapping gene) [भोपाल 2006,07 सागर 2008]

(iii) छद्म जीन (Pseudo gene) [भोपाल 2006,07,10 जीवाजी 2008]

उत्तर– **(i) खण्डित जीन (Split gene)–** खण्डित जीन (Split gene) को असतत रूप में पाये जाने के कारण जीन (Split gene) इन्टरप्टेड जीन (interrupted gene) भी कहा जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में, विशेष रूप से सन् 1977 से, खण्डित जीन की खोज के पश्चात् आनुवंशिकी में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुये। सन् 1977 में, कुछ स्तनधारी वाइरसों व कुछ अन्य यूकैरियोट्स में देखा गया कि जीन कुछ खण्डों में या टुकड़ों में टूट जाती हैं। प्रारंभ में ये विश्वास किया जाता था कि जीन जो कि विशिष्ट प्रकार के पॉलिपेप्टाइड का संश्लेषण करती हैं उसमें न्यूक्लियोटाइड एक सतत् (continuous) क्रम में होते हैं। एडीनोवाइरस में 'हेक्सोन' जीन व 'चूजों' (Chickens) में ओवाएल्ब्यूमिन जीन में सर्वप्रथम यह देखा गया कि DNA क्रम जोकि एक पॉलिपेप्टाइड को कोड करता है, सतत् (Continous) नहीं होता है।

खण्डित जीन की खोज **फिलिप शार्प (Philip sharp)** तथा **रिचार्ड रॉबर्ट्स (Richard Roberts)** द्वारा की गई। इस कार्य के लिये उन्हें सन् 1993 में चिकित्सा का नोबल पुरस्कार दिया गया। इन वैज्ञानिकों ने ऐडीनोवाइरस 2 के m–RNA व इसी वाइरस के जीनोम के DNA के संकर (hybrid) का विश्लेषण किया।

(a) हेक्सोन जीन (Hexone gene)– ऐडीनों–वाइरस का DNA दो श्रृंखलाओं का बना होता है तथा 20 प्रकार के प्रोटीन्स का कोडिंग करता है। इनमें से 8 जीन्स, उत्तरार्ध जीन (Late genes) कहलाते हैं, क्योंकि ये वाइरस के उत्तरार्द्ध जीवन (Late life) में m– RNA का ट्रान्सक्रिप्शन करते हैं। ये 8 उत्तरार्द्ध जीन (late genes) केवल एक RNA का ट्रान्सक्रिप्शन करते हैं, जो बाद में 8 m– RNA में विभक्त हो जाता है। हालाँकि 8 m–RNA की कुल लम्बाई, वास्तविक अनुलेखित RNA से कम होती है।

जब इन 8 में से एक (हेक्सोन जीन) m–RNA से युग्मित (Paired) होती है तो DNA तीन लूप बनाता है, जो अयुग्मित भाग (Unpaired region) प्रदर्शित करता है। ये इंगित करता है कि हेक्सोन m–RNA का अनुलेखन चार विभिन्न भागों से हुआ है, तथा बाकी चार खण्ड उसके साथ जुड़ गये हैं।

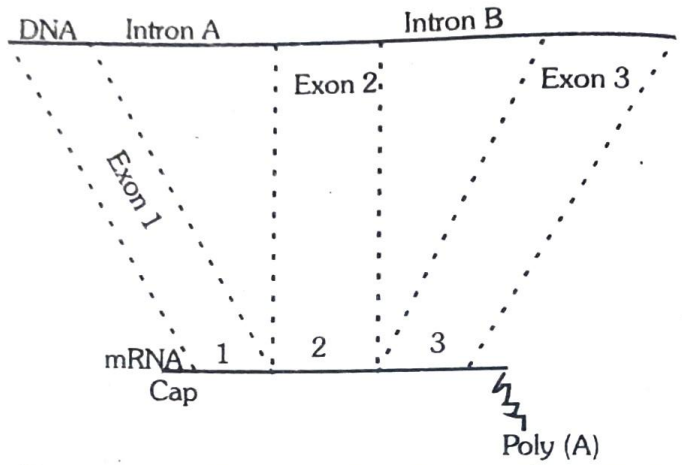


Fig : Diagrammatic Representation of a hypothetical split gene having three exons.

(b) ओवाएल्ब्यूमिन जीन (Ovalbumin gene)– पी. चेम्बरसन समूह (फ्रांस) तथा बी. डब्ल्यू, मालिज समूह (अमेरिका) ने प्रदर्शित किया कि 'ओवा एल्ब्यूमिन' जीन जोकि चूजों में पाई जाती है वह सतत् नहीं होती बल्कि टुकड़ों में विभक्त होती है। ये टुकड़े गुणसूत्रों में छितरे (Scattered) रहते हैं। इन्हें खण्डित जीन (Split gene) कहा जाता है।

खण्डित जीन के अन्य उदाहरण हैं– चूहे (माइस) व खरगोश β– ग्लोबिन जीन, यीस्ट की t – RNA जीन, ड्रोसोफिला की राइबोसोमल जीन।

खण्डित जीन सामान्यतः उच्च वर्ग के सभी जीवधारियों में पायी जाती है। खण्डित जीन को निम्न तरह से समझ सकते हैं। माना कोई जीन 3DNA खण्डों (ऐक्सॉन 1, ऐक्सॉन 2 व ऐक्सॉन 3) से बनी है। यह तीनों खण्ड दो मध्यस्थ खण्डों A व B से पृथक रहते हैं। उपर्युक्त चित्र से स्पष्ट है कि DNA के अनुलेखन के बाद बने m– RNA में DNA के ऐक्सॉन वाले क्षेत्र ही प्रतिनिधित्व पाते हैं तथा इन्ट्रॉन (Intron) क्षेत्रों का इनमें पूर्णतः अभाव होता है। प्राथमिक अनुलेखन (primary transcription) में ऐक्सॉन व इन्ट्रॉन दोनों ही उपस्थित होते हैं तथा बाद में इसमें हुये परिवर्तनों से ही अंतिम m– RNA का निर्माण होता है। खण्डित जीन इन्ट्रॉन के रूप में सभी वर्ग के जीनों में पाये जाते हैं। कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(i) r – RNA को कोडित करने वाले केन्द्रकीय (nuclear) जीन।

(ii) प्रोटीन्स को कोडित करने वाली केन्द्रकीय (nuclear) जीन।

(iii) बैक्टीरिया E. Coli के बैक्टीरियोफेज की जीन।

(ii) अतिव्यापन जीन (Overlapping gene)– DNA में न्यूक्लियोटाइड का क्रम प्रोटीन में अमीनो अम्लों के क्रम का निर्धारण करता है। अर्थात् यदि हमें DNA की लम्बाई मालूम है तो इससे संश्लेषित हो सकने वाली प्रोटीन की लम्बाई आसानी से मालूम की जा सकती है। उदाहरण के लिये यदि किसी DNA खण्ड में 1500 क्षारक युग्म हैं तो इससे अधिक से अधिक 500 अमीनो–अम्ल वाली प्रोटीन का निर्माण हो सकता है। इसी प्रकार अगर प्रोटीन में अमीनो -अम्लों की संख्या व प्रकार ज्ञात हैं तब इसको कोड करने वाले DNA खण्ड (जीन) में क्षारक युग्मों की संख्या ज्ञात की जा सकती है। अगर दोनों ही (अर्थात् डी.एन.ए. में क्षारक युग्म (Base pairs) तथा प्रोटीन में एमीनो–अम्ल) ज्ञात हो तो यह माना जा सकता है कि DNA में क्षारकों की संख्या प्रोटीन में अमीनो अम्लों की संख्या की तीन गुना होगी व अगर जीन में ऐसे भी DNA कोड नहीं करते, तब तो DNA में क्षारकों की संख्या, प्रोटीन में अमीनो–अम्लों की संख्या के तीन गुना से भी ज्यादा होगी। जीवाणुभोजी (Bacteriophage) $\phi \times 174$ में एकल स्ट्रैण्ड DNA की लम्बाई 5400 b P होती हैं। इस जीवाणुभोजी के जीनोम में 9 सिस्ट्रॉन (Cistron) होते हैं। इस जीनोम द्वारा कोडित मुख्य प्रोटीन्स के अमीनो–अम्ल क्रम (Sequence of amino acids) व प्रोटीन्स के आण्विक भार (molecular weights) के अध्ययन से इनको बनाने के लिये आवश्यक न्यूक्लियोटाइड की संख्या का भी अनुमान लगाया गया। यह अनुमान 6000 से भी ज्यादा हो गया जो इसमें उपस्थित न्यूक्लियोटाइड्स की वास्तविक संख्या 5400 से भी अधिक है। यहां पर स्पष्ट करना कठिन है कि सिर्फ 5400 न्यूक्लियोटाइड वाला DNA इतनी प्रोटीन कैसे बना सकता था जिनमें उपस्थित अमीनो–अम्ल को कोड करने के लिये 6000 से भी ज्यादा न्यूक्लियोटाइड की आवश्यकता होती है? इसके अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि एक ही खण्ड के क्षारक क्रमों (Sequences) का उपयोग दो विभिन्न प्रोटीन को कोड करने वाले 2 भिन्न–भिन्न सिस्ट्रॉन द्वारा किया जा सकता है। सिस्ट्रॉन की इस प्रकार की ओवरलेपिंग सिद्धान्ततः सम्भव है यदि

(i) अगर अलग–अलग समय पर सिस्ट्रॉन दो भिन्न–भिन्न कार्य प्रदर्शित करे।

(ii) उनके न्यूक्लियोटाइड्स का दो भिन्न रीडिंग फ्रेमों में अनुवाद हो जाये।

बीडल एवं टॉटम (1940) द्वारा प्रतिपादित 'एक जीन एक प्रोटीन' परिकल्पना के अनुसार एक जीन एक प्रोटीन के संकेतीकरण अथवा कोडिंग के लिये उत्तरदायी है।

बैरेल व उसके सहयोगियों (1976) ने सर्वप्रथम बैक्टीरियल वाइरस $\phi \times 174$ में जीन्स की अतिव्यापन (Ovelapping) की संभावनाओं को व्यक्त किया।

जेनेटिक मेपिंग तकनीक से ये पता चलता है कि बैक्टीरियोफेज में 9 जीन्स होती हैं (A – B – C – D – E –J – F – G – H) जो 9 प्रकार के प्रोटीन को कोड करती हैं।

इनमें से E सिस्ट्रॉन D व J के बीच में स्थित होता है तथा सिस्ट्रॉन E, सिस्ट्रॉन D को ओवरलैप करता है। जीन D, E व J के न्यूक्लियोटाइडों की पहचान से पता चलता है। यह बताया गया कि सिस्ट्रॉन E के एम्बर उत्परिवर्तन सिस्ट्रॉन D में स्थित होते हैं। यह एम्बर उत्परिवर्तन सिस्ट्रॉन D से होने वाले प्रोटीन अनुवाद को प्रभावित नहीं करते हैं। इसी प्रकार सिस्ट्रॉन D के कुछ नॉनसेंस उत्परिवर्तन सिस्ट्रॉन E में स्थित होते हैं। यह सिद्ध करता है कि

DNA अभिक्रम में सिस्ट्रॉन D व E ओवरलैप करते हैं तथा सिस्ट्रॉन D व E दो भिन्न-भिन्न रीडिंग फ्रेम के रूप में अनुवादित (Translated) हो जाते हैं।

$\phi \times 174$ के सिस्ट्रॉन्स के कुछ अन्य कार्य निम्नलिखित हैं–

(a) सिस्ट्रॉन D एक सरल प्रोटीन को कोड करता है।

(b) सिस्ट्रॉन E लाइसिस से संबंधित एक प्रोटीन को कोड करता है।

(c) सिस्ट्रॉन J कण के एक घटक (Particle component) को कोड करता है।

अतः एक सिस्ट्रॉन के m– RNA का एम्बर कोडॉन दूसरे सिस्ट्रॉन के m– RNA के अनुवाद समय टर्मिनेशन कोडॉन (termination codon) के समान कार्य नहीं करता। सिस्ट्रॉन जीन्स के निम्न कार्य हैं–

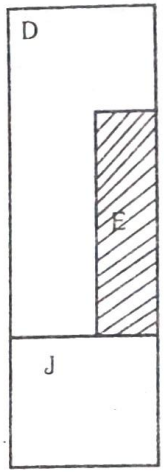
(i) जीन A – डी. एन. ए. का रेप्लीकेशन

(ii) जीन B व D – फेज कणों का समूहन

(iii) जीन C – अज्ञात कार्य

(iv) जीन E, F, G एवं H, J कैप्सिड प्रोटीन की संरचना।

साधारणतः प्राणियों में DNA अणु की कुल लम्बाई जोकि प्रोटीन के लिये उपलब्ध होती है, प्रोटीन उत्पाद की कुल लम्बाई से अधिक होती है, लेकिन बैक्टीरियोफेज (जीवाणु भोजी) $\phi \times 174$ में प्रोटीन उत्पाद की लम्बाई कोडिंग करने वाले DNA के अणु से ज्यादा होती है।



चित्र– जीवाणु भोजी $\phi \times$ **174** में जीन **E** व **D** का अतिव्यापन

बैक्टीरिया E. Coli के ट्रिप्टोफेन m– RNA में भी ओवरलैपिंग जीन की खोज की गई है। वैज्ञानिक का अनुमान है कि अन्य जीवों में भी ओवर लैपिंग जीन पाये जाते होंगे। इसका अर्थ यह है कि एक डी. एन. ए. खण्ड भिन्न रीडिंग फ्रेम के अन्तर्गत उस DNA खण्ड द्वारा कोडित अमीनो अम्ल की अनुमानित संख्या से अधिक अमीनों अम्लों को कोड कर सकता है।

(iii) छदम जीन (Pseudo genes)– बहुकोशिकीय जीवधारियों में विविध प्रकार के ऐसे DNA खण्ड पाये जाते हैं जो किसी भी कार्य से सम्बन्धित नहीं होते अर्थात् यह बिना किसी उपयोग वाले होते हैं। इनमें से कुछ क्रम कार्यशील (functional) जीनों में हुये विकारों

(defects) से बनते हैं अर्थात् वह कार्यशील जीन के ही त्रुटिपूर्ण (defective) रूप होते हैं। इन्हीं को कूट जीन स्यूडोजीन (Pseudogenes) कहा जाता है। ड्रोसोफिला चूहों व मनुष्य में स्यूडोजीन की उपस्थित दर्ज की गई है। स्यूडोजीन्स (Pseudogenes) के कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं–

(i) मानव α ग्लोबिन β ग्लोबिन स्यूडोजीन (Human α-globin and β- globin Pseudogenes ψ) यह प्रत्येक ग्लोबिन जीन कलस्टर में पायी जाती हैं। α ग्लोबिन स्यूडोजीन के सम्पूर्ण न्यूक्लियोटाइड क्रम की पहचान कर ली गई है और यह प्रदर्शित किया जा चुका है कि इन जीनों का अनुवाद नहीं होता। ऐसा माना जाता है कि इनके प्रारंभिक कोडोन में उत्परिवर्तन के साथ-साथ इनकी सम्पूर्ण लम्बाई में फ्रेम शिफ्ट उत्परिवर्तन हो जाते हैं।

(ii) चूहों में भी दो α ग्लोबिन स्यूडोजीन (ψ) पायी जाती हैं। इनमें से एक जिसे $\psi \alpha_3$ कहा जाता है। इंट्रॉन की अनुपस्थिति के कारण दूसरी स्यूडोजीन से भिन्न होती हैं। अतः वर्णनीय है कि दूसरी α ग्लोबिन स्यूडोजीन के साथ-साथ क्रियाशील α ग्लोबिन जीन में इंट्रान्स उपस्थित होते हैं। ऐसा माना गया है कि $\psi \alpha_3$ रिवर्स ट्रान्सक्रिप्टेज एन्जाइम की सहायता से m RNA से बना प्रतिलोम अनुलेख (Reverse Transcript) है।

(iii) मानव में स्यूडोजीन की U sn RNA श्रृंखला पायी जाती है। इसमें U_1, U_2 व U_3 Sn RNA सम्मिलित हैं। इनके क्रियाशील रूप U_1, U_2 व U_3 Sn RNA जीन न्यूक्लिक अम्ल की स्लाइसिंग से सम्बन्धित हो सकते हैं।

(iv) ड्रोसोफिला में हिस्टोन स्यूडोजीन्स की पहचान की गयी है।

(v) मनुष्य में एक और प्रकार की स्यूडोजीन श्रृंखला जिसे Alu (Alu family) कहा जाता है, भी प्रदर्शित की गयी है। ये बिखरे हुये पुनरावृत्त क्रम है। एक हैप्लॉयड मानव जीनों में इनकी संख्या 3,00,000 होती है। इनमें से प्रत्येक क्रम में 300bp लम्बा होता है। तथा RNA पॉलीमेरज III द्वारा अनुलेखन हो सकता है। उल्लेखनीय है कि m-RNA का अनुलेखन RNA पॉलीमरेज II से होता है, जबकि RNA पॉलीमरेज III 5s RNA व t-RNA के अनुलेखन में काम आता है।

स्यूडोजीन के विशिष्ट गुण उनके सम्भावित उद्गम के बारे में महत्वपूर्ण सुराग प्रदान करते हैं। इनके प्रमुख गुण निम्नलिखित हैं–

(i) स्यूडोजीन्स की संख्या उनकी क्रियाशील जीन से अधिक होती है, अतः वह पुनरावृत्त क्रम (Repetitive sequence) हैं।

(ii) अधिकांश स्यूडोजीन्स में 6–21 क्षारक क्रमों से बने छोटे, सीधे पुनरावृत्त क्रम से बने किनारे होते हैं। इन किनारों का पाया जाना इन 'रिपीट्स' का अन्तर्वेशन प्रदर्शित करता है।

इकाई-3

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. सहलग्नता क्या है? इसकी क्रियाविधि का वर्णन कीजिये। [सागर 07,10,16]

अथवा

सहलग्नता से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट कीजिये। [रीवा 2002,10,13 जीवाजी 08,17]

उत्तर– जीन आनुवंशिक पदार्थ होते हैं, जो लक्षणों को निर्धारित करते हैं तथा ये जीन गुणसूत्रों के ऊपर लगे रहते हैं। किसी जाति में गुणसूत्र की संख्या कम होती है, जबकि जीन की संख्या बहुत अधिक होती है, जिसके कारण एक गुणसूत्र पर एक से अधिक जीन उपस्थित होते हैं। इस प्रकार एक ही लक्षण को निर्धारित करने वाले जीन एक ही गुणसूत्र पर भी स्थित हो सकते हैं या अलग–अलग गुणसूत्र पर भी स्थित हो सकते हैं। यदि दोनों जीन एक ही गुणसूत्र पर स्थित होते हैं, तो अगली पीढ़ी में एक साथ आने की कोशिश करते हैं, इस क्रिया को सहलग्नता कहते हैं। सहलग्नता में अनुपात 9 : 3 : 3 : 1 के बदले 7 : 1 : 1 : 7 या 1 : 7 : 7 : 1 आता है।

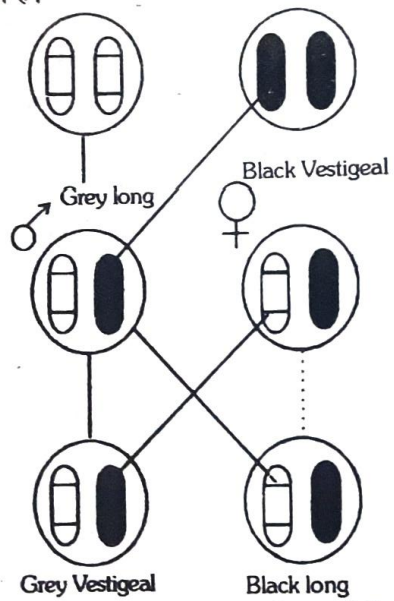


Fig. Complete linkage in Drosophila.

बेटसन तथा पुनेट ने पैतृक संयोगों की अधिकता को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि एक ही पैतृक पौधे से आने वाले समस्त गुणों के युग्मविकल्पियों (alleles) में एक साथ ही युग्मक में आने की प्रवृत्ति होती है तथा ये नयी पीढ़ियों में एक साथ वंशागत होते हैं। इसी प्रकार दो भिन्न–भिन्न पैतृक पौधों से आने वाले गुणों के युग्मविकल्पियों की प्रवृत्ति अलग–अलग युग्मकों में पहुँचने की होती है। अतः ये नयी पीढ़ियों में स्वतंत्रतापूर्वक अलग–अलग वंशागत होते हैं।

युग्मविकल्पियों की प्रथम विशेषता को संलग्नता (Coupling) तथा दूसरी विशेषता को विलग्नता (Repulsion) कहा गया है। मॉरगन (Morgan) के अनुसार, संलग्नता तथा विलग्नता एक क्रिया के दो पहलू हैं तथा यह सहलग्नता (Linkage) कहलाती है।

द्विसंकर में पैतृक संयोगों की अधिकता का विवेचन करने के लिये अनेक प्रयत्न किये गये हैं। बेटसन (Bateson, 1980) ने यह माना कि पैतृक एवं अपैतृक संयोगों की संख्या में भिन्नता युग्मकों की गुणन दर में भिन्नता के कारण है। पैतृक संयोगों वाले युग्मकों में तेजी से गुणन होता है, जबकि अपैतृक संयोगों वाले युग्मकों का गुणन अपेक्षाकृत धीमी गति से होता है। लेकिन बेटसन का यह सिद्धान्त उचित नहीं है, क्योंकि युग्मकों में कोई गुणन क्रिया नहीं होती। मॉरगन ने कहा है कि पैतृक संयोग जीन्स के एक ही गुणसूत्र पर स्थित होने के कारण होते हैं तथा जीन्स के अपैतृक या नये संयोग गुणसूत्रों के टूटने एवं टूटे हुये टुकड़ों के पुनः मिलने के कारण होते हैं। सहलग्नता की यथार्थता (Strength of linkage) के आधार पर सहलग्नता दो प्रकार की होती है–

(1) **पूर्ण सहलग्नता (Complete linkage)–** यह केवल उन्हीं परिस्थितियों में होती है जब सहलग्न जीन्स बहुत समीप स्थित होते हैं। समीप स्थित होने के कारण इनके अलग होने की सम्भावनायें कम हो जाती हैं। सहलग्नता के कुछ उदाहरण इसप्रकार हैं–

(1) **ड्रोसोफिला (Drosophila)–** सिलेटी रंग के शरीर तथा अल्पविकसित पंख वाला जंगली ड्रोसोफिला का मैथुन जब काले शरीर तथा लम्बे पंखों वाली ड्रोसोफिला के साथ किया गया तो F_1 पीढ़ी के समस्त जन्तुओं का शरीर सलेटी रंग का तथा उनके पंख लम्बे एवं पूर्ण विकसित थे। जब यह F_1 पीढ़ी का नर संकर ड्रोसोफिला अप्रभावी मादा के साथ संकर करता है तो दो प्रकार के जन्तु बराबर संख्या में बनते हैं। इस संकरण में केवल पैतृक संयोग बनते हैं और जीन्स अलग नहीं होते अतः यह पूर्ण सहलग्नता कहलाती है।

(2) **अपूर्ण सहलग्नता (Incomplete Linkage)–** अपूर्ण सहलग्नता उन्हीं स्थितियों में संभव होती हैं जब सहलग्न जीन्स युग्मक बनते समय गुणसूत्रों के कारण अलग हो जाते हैं और इन टुकड़ों के विनिमय (Exchange) के फलस्वरूप नये संयोग बनकर युग्मकों में पहुँचते हैं किन्तु इस विनिमय की सम्भावनायें कम होती हैं। इसी कारण पैतृक संयोगों की संख्या अपैतृक संयोगों की अपेक्षा अधिक होती है।

(2) **मक्का (Maize)–** जब रंगीन तथा पूरी तरह भरे हुये बीजों वाले मक्का के पौधों एवं रंगहीन तथा संकुचित बीजों वाले पौधों में संकरण किया जाता है तो F_1 पीढ़ी में केवल रंगीन तथा भरे हुये बीज वाले पौधें बनते हैं। इस पीढ़ी के मादा संकर पौधों को जब रंगहीन तथा संकुचित बीज वाले पौधों के पराग कणों से निषेचित किया जाता है तो चार प्रकार के बीजों वाले पौधे बनते हैं। जो इस प्रकार हैं–

(1) रंगीन तथा भरे हुये (Coloured and full) बीजों वाले पौधे।
(2) रंगीन तथा संकुचित (Colourless and Shrunken) बीजों वाले पौध } 96.4%
(3) रंगीन तथा संकुचित (Coloured and Shrunken)
(4) रंगहीन तथा भरे हुये (Colourless and full) } 3.6%

प्रयोगों से यह ज्ञात होता है कि पैतृक संयोग 96.4% बने तथा अपैतृक संयोग केवल 3.6% ही थे। ये नये अपैतृक संयोग इसलिये सम्भव हुये क्योंकि कुछ युग्मकों में इन गुणों के जीन्स एक-दूसरे से अलग हो गये, अतः ये अपूर्ण सहलग्नता प्रदर्शित करते हैं।

सहलग्नता का समसूत्री सिद्धान्त– इस सिद्धान्त के अनुसार–

(1) सहलग्न गुणों (Linkage Characters) के जीन्स एक ही जोड़ों के गुणसूत्रों पर स्थित होते हैं।

(2) जीन्स की सहलग्नता रेखिक (Linear) होती है।

(3) गुणसूत्रों पर आस-पास जीन्स में सहलग्नता अधिक होती है तथा जैसे-जैसे उनकी दूरी बढ़ती जाती है उनकी सहलग्नता कम हो जाती है।

प्रश्न–2. सहलग्नता की क्रिया का वर्णन कीजिये तथा इसके महत्व को समझाइये। [सागर 2008,17]

अथवा

सहलग्नता क्या है? यह क्रोसिंग ओवर तथा मेण्डल के वियोजन नियम द्वारा कैसे सम्बन्धित है? [भोपाल 2001, इन्दौर 2004,16]

उत्तर– प्रत्येक जीव में क्रोमोसोम की निश्चित संख्या होती है। इन क्रोमोसोम में असंख्य जीन्स पायी जाती हैं। यहाँ जीन्स जीव के लक्षणों को सुरक्षित रखती हैं। अलग-अलग लक्षणों के जीन्स या तो एक ही क्रोमोसोम में या अलग-अलग क्रोमोसोम में उपस्थित हो सकते हैं। एक ही गुणसूत्र पर स्थित समस्त जीन्स का एक-साथ समूह में वंशागत होने की प्रवृत्ति होती है अतः जीन्स द्वारा एक साथ वंशागत होने तथा संतति में अपने संयोग को बनाये रखने का प्रक्रम ही सहलग्नता कहलाता है। एक ही गुणसूत्र पर स्थित उन जीन्स को जो एक साथ वंशागत होते हैं। सहलग्न जीन तथा इनके द्वारा नियंत्रित लक्षण सहलग्न लक्षण कहलाते हैं। अलग-अलग क्रोमोसोम पर स्थित जीन्स मेण्डल के 'स्वतन्त्र अपव्यूहन नियम' (Law of Independent assortment) का पालन करती हैं।

बेट्सन एवं **पुनेट** ने सर्वप्रथम सन् 1860 में लिंकेज के बारे में बताया। उन्होंने मटर के पौधे पर कुछ प्रयोग किये। उन्होंने नीले पुष्प तथा लम्बे परागकण वाले मटर के पौधे का लाल पुष्प तथा गोल परागकण वाले मटर के पौधे के साथ संकरण (Cross) कराने पर पाया कि द्वितीय पीढ़ी में मेण्डल के 'स्वतन्त्र अपव्यूहन नियम' के अनुसार 9 : 3 : 3 : 1 के अनुपात में संतति पौधे नहीं बनते बल्कि इनमें अनुपात 11 : 1 : 1 : 3 होता है। इनमें पैतृक संयोग संतति के संयोगों से सात गुना अधिक था। इस प्रयोग के आधार पर बेटसन ने बताया कि इस प्रकार के संकरण में स्वतन्त्र अपव्यूहन (Independent assortment) का नियम लागू नहीं होता है। अतः उसे उन्होंने कपलिंग एवं रिपल्सन परिकल्पना कहा, जो सहलग्नता को प्रदर्शित करते हैं। **मार्गन (Morgan)** ने सन् 1910 में ड्रोसोफिला के प्रयोग के समय पाया कि युग्मन अथवा प्रतिकर्षण पूर्ण नहीं था। जब सलेटी रंग के शरीर तथा अविकसित पंखों वाली ड्रोसोफिला का क्रॉस (Cross) जब काले शरीर एवं लम्बे पंखों वाली ड्रोसोफिला से कराया गया तो F_1 में प्राप्त मक्खियों का रंग सलेटी तथा पंख लम्बे थे। जब F_1 के नर का क्रॉस अप्रभावी मादा मक्खी के साथ कराया गया तो केवल पैतृक संयोग बनते हैं तथा जीन्स अलग नहीं होते। यह क्रिया पूर्ण सहलग्नता कहलाती है। मॉर्गन ने बताया कि जीन्स एक ही क्रोमोसोम पर स्थित होते हैं, उन्हीं के कारण सहलग्नता होती है। इसकी दृढ़ता

क्रोमोसोम पर जीन्स के बीच की दूरी पर निर्भर होती है, अर्थात् जीन्स क्रोमोसोम पर एक ही रेखा में स्थित होते हैं। अतः मॉर्गन के अनुसार, सहलग्नता की परिभाषा निम्न प्रकार है–

'वंशागत संचरण के समय दो जीन्स के एक ही क्रोमोसोम में बने रहने की प्रवृत्ति सहलग्नता कहलाती है।'

सहलग्नता के सिद्धान्त (Theories of Linkage)– सहलग्नता के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्त विभिन्न वैज्ञानिकों द्वारा प्रस्तुत किये गये–

1. सटन परिकल्पना (Suttons hypothesis)– सटन ने सन् 1903 में बताया कि प्रत्येक गुणसूत्र पर एक से अधिक जीन्स होते हैं तथा एक गुणसूत्र के समस्त जीन एक साथ वंशागत होते हैं, किन्तु प्रमाण के अभाव में यह परिकल्पना अमान्य हो गई।

2. युग्मन एवं प्रतिकर्षण परिकल्पना (Coupling and repulsion hypothesis)– सहलग्नता पर सर्वप्रथम प्रयोग बेटसन एवं पुनेट (Bateson and Punnet) ने मटर के नीले रंग के पुष्प तथा लम्बे परागकण एवं लाल पुष्प एवं गोल परागकण के बीच क्रॉस कराकर किया था इन पौधों के द्विसंकरण से F_2 पीढ़ी में 9 : 3 : 3 : 1 के अनुपात के बदले 11 : 1 : 1 : 3 का अनुपात मिला जिसमें नीले, लम्बे व लाल, गोल की संख्या बहुत अधिक थी, जबकि नीले, गोल व लाल, लम्बे बहुत कम थे। इसी प्रकार जब F_1 पीढ़ी के नीले लम्बे का संकरण अप्रभावी लाल, गोल (होमोजायगस) पौधों से किया गया तो इस टेस्ट क्रॉस के F_2 पीढ़ी में अपेक्षित 1 : 1 : 1 : 1 अनुपात के स्थान पर 7 : 1 : 1 : 7 अनुपात मिला।

इस प्रकार से नये संयोग की संख्या बहुत अधिक प्राप्त हुई। इसकी व्याख्या करते हुये बेटसन एवं पुनेट ने युग्मक व प्रतिकर्षण शब्दों का प्रयोग किया उनके अनुसार एक ही जनक के ऐलील्स के युग्मक में इकट्ठे रहते हुये एक ही साथ वंशागत होने की प्रवृत्ति होती है। यह क्रिया युग्मन (Coupling) कहलाती है। इसी प्रकार अलग-अलग जनकों से आये जीन्स के संतति में अलग-अलग स्वतन्त्र रूप से वंशागत होने की प्रवृत्ति होती है यह क्रिया प्रतिकर्षण (repulsion) कहलाती है।

3. मॉर्गन की परिकल्पना (Morgan's hypothesis)– मॉर्गन (Morgan) के अनुसार युग्मन एवं प्रतिकर्षण एक ही घटना के दो पहलू हैं, जिनको उसने सहलग्नता कहा। उनके अनुसार, एक क्रोमोसोम पर स्थित जीन्स द्वारा युग्मक में अपने वास्तविक संयोग के रूप में एक साथ रहने की प्रवृत्ति को सहलग्नता कहते हैं।

4. सहलग्नता का गुणसूत्र सिद्धान्त (Chromosomal theory of linkage)– इस सिद्धान्त को मॉर्गन एवं कैस्टल (Morgan and Castle) ने सन् 1911 में प्रतिपादित किया इनके अनुसार–

(i) सहलग्न जीन एक ही क्रोमोसोम के जोड़ों पर स्थित रहते हैं।

(ii) सहलग्न जीन गुणसूत्र पर रैखिक क्रम में विन्यसित होते हैं।

(iii) सहलग्न जीन के बीच की दूरी कम होने पर सहलग्नता अधिक होती है जबकि जीन्स के बीच की दूरी बढ़ते जाने से सहलग्नता कम होती जाती है।

सहलग्नता का महत्व (Importance of Linkage)– सहलग्नता का निम्न महत्व होता है–

1. सहलग्नता धनात्मक या ऋणात्मक हो सकती है। इसकी सहायता से री कॉम्बिनेशन एवं हाइब्रिडाइजेशन की प्रकृति का पता लगाया जा सकता है।
2. संकरों (hybrids) में आने वाले पैतृक लक्षणों का अध्ययन सहलग्नता द्वारा किया जा सकता है।
3. सहलग्नता की सहायता से संकरण को छाँटने व प्रवृति में ज्ञात करने में सहायता मिलती है।

प्रश्न–3. पुनर्संयोजन एवं विनिमय से आप क्या समझते हैं?

उत्तर– पुनर्संयोजन एवं विनिमय (Recombination and Crossing over)– सहलग्न जीन्स भी सदैव वंशागति के दौरान एक साथ नहीं रह पाते। कभी–कभी अर्धसूत्री विभाजन के समय सहलग्न जीन्स समजात गुणसूत्रों के दो क्रोमेटिड्स के बीच खण्डों का विनिमय या अदल–बदली या ऐलील्स का विनिमय करके एक–दूसरे से पृथक हो जाते हैं। इस विनिमय के परिणामस्वरूप नये या अजनकीय (Non- parental) संयोजनों का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पुराने जीन्स से बने नये संयोजनों का निर्माण हो जाता है। इस प्रकार पुराने जीन्स से बने नये संयोजनों के निर्माण की परिघटना को जीन्स का पुनर्संयोजन (Recomobination of genes) कहते हैं और इससे परिणामित सन्तानों जो नये प्रकार के लक्षणों के संयोजन को प्रदर्शित करती हैं, उन्हें पुनर्संयोजित प्रकार (Recombinant type) कहते हैं। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा जीन्स एक गुणसूत्र से अपने दूसरे समजात गुणसूत्र पर उपस्थित संगत अथवा तदनुरूपी जीन्स के साथ अदला–बदली करते हैं, जीन विनिमय (Gene crossing over) कहलाती है। यह विनिमय दर्शाता है कि पुनर्संयोजन कुछ सीमित मात्रा में अर्धसूत्री विभाजन I के दौरान तब हो पाता है जब गुणसूत्रीय लम्बाई के बीच आदान–प्रदान होता है। कपलिंग स्थिति में जीन्स गुणसूत्र पर क्रॉस–ओवर कर सकते हैं और अपने विपरीत समजात गुणसूत्र के युगल के सदस्य पर स्थानान्तरित हो सकते हैं। इस अनुवांशिक पदार्थ के विनिमय के सन्दर्भ में मोर्गन तथा कैसल ने सर्वप्रथम क्रॉसिंग ओवर शब्द–सूचक (Term) का उपयोग किया था। इस प्रकार क्रॉसिंग ओवर से जो गुणसूत्र बनते हैं उनमें जीन–क्रम (Gene sequence) नये और परिवर्तित रूप में होता है। अतः क्रोसिंग ओवर (Crossing over) को इसप्रकार परिभाषित कर सकते हैं– 'वह भौतिक क्रिया जिसमें दो समजात गुणसूत्रों के क्रोमेटिड्स के बीच उनके कुछ भाग का सहलग्न जीनों के साथ आदान–प्रदान हो जाता है जीन या गुणसूत्रीय विनिमय कहलाती है।'

प्रश्न–4. आनुवंशिक पुनः संयोजन विधि पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2004,07]

अथवा

आनुवंशिक पुनः संयोजन विधि से क्या तात्पर्य है? संक्षेप में वर्णन कीजिये। [भोपाल 08,13]

उत्तर– प्रो. एफ. ए. जेनसेन्स (Prof. F.A. Jenssens) ने क्याज्मा निर्माण के लिये क्याज्मा टाइप थ्योरी का सुझाव दिया।

जै. बैलिंग एवं डार्लिंगटन ने भी इस मत को माना। उन्होंने बताया कि क्रोसिंग ओवर के फलस्वरूप ही क्याज्मा का निर्माण होता है। कॉसिंग ओवर के कारण एक क्रोमोटिड खण्ड

(Chromatid Segment) टूटकर पुनः नॉन–सिस्टर क्रोमेटिड खण्ड (non-sister chromatid segment) से जुड़ जाता है।

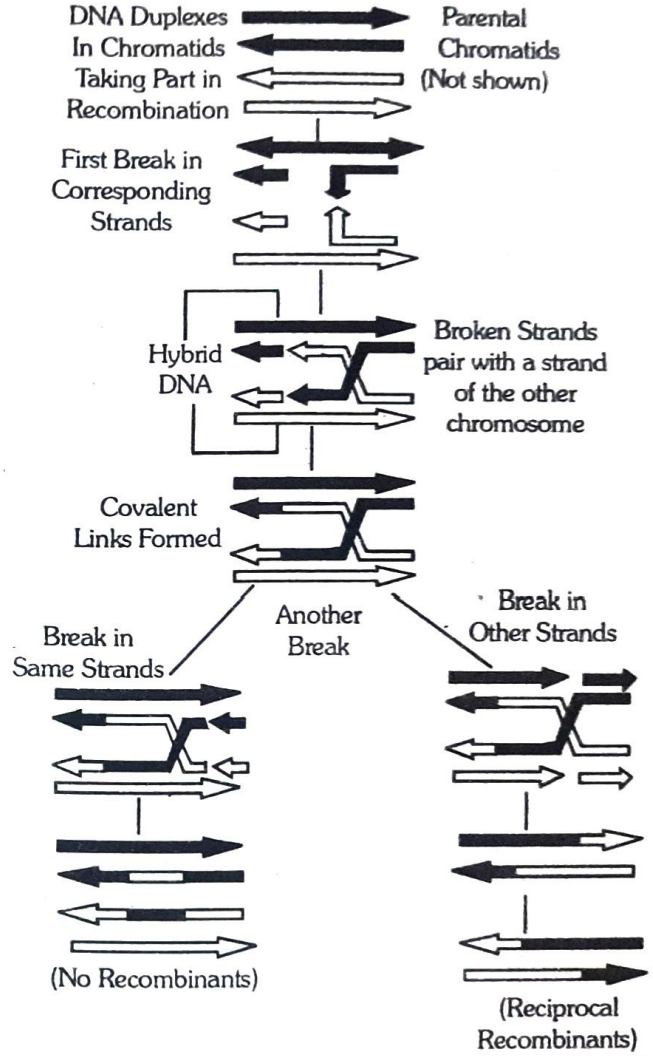


Fig. Mechanism of recombination as explained on the basis of hybrid DNA model of R. Holliday (1964)

क्रोसिंग–ओवर में खण्डों की अदला–बदली या जीनों के नये संयोजन किस प्रकार बनते हैं ? इन्हें समझाने के लिये कई सिद्धान्त दिये गये जैसे कॉपी च्वाइस व हाइब्रिड DNA मॉडल। हाइब्रिड DNA मॉडल सबसे नया और सर्वाधिक उपयुक्त सिद्धान्त है।

हाइब्रिड DNA मॉडल (Hybrid DNA Model)– 1964 में आर, हालीडे ने यह मॉडल दिया था। यह मॉडल बहुत प्रसिद्ध हुआ क्योंकि इसी मॉडल में उपयुक्त तरीके से

आनुवंशिक पुनः संयोजन की प्रक्रिया का वर्णन किया था। इसके अनुसार दोनों DNA हैलिक्स के एक-एक क्रोमेटिड ब्रेक (non sister chromatid break) उत्पन्न होता है। बाद में इन दोनों क्रोमैटिडस के अलग हुये टुकडे आपस में बदलकर जुड़ जाते हैं तथा बिना टूटे स्ट्रेण्ड से समूहन (Pairing) करते हैं। इस प्रकार एक हाइब्रिड DNA खण्डों की उत्पत्ति होती है। हालीडे के मॉडल के अनुसार पुनः संयोजन में प्रयुक्त स्ट्रैडों की पोलेरिटी (Polarity) समान होती है। एक-दूसरे हाइब्रिड DNA मॉडल के अनुसार इन दोनों स्ट्रैडों की पोलेरिटी विपरीत होती है।

प्रश्न–5. लिंग गुणसूत्र पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– लिंग गुणसूत्र (Sex-chromosome)– हेनकिंग (Henking 1891) ने देखा कि हेमप्टेरिस कीटों में स्पर्मेटोजेनेसिस के समय जनन कोशिकाओं में एक विशेष प्रकार की नाभिकीय संरचनायें देखीं। उन्होंने गहरी अभिरंजित (dark stained) संरचनाओं का X-काय (X-body) नाम दिया। सन् 1902 में मैक क्लंग (Mc clung) ने भी टिड्डों में X-काय प्राप्त किया। उन्होंने बताया कि ये X- काय लिंग निर्धारण से सम्बन्धित होते हैं। उन्होंने इसे सहायक गुणसूत्र (Accessary Chromosome) या लिंग गुणसूत्र (Sex chromosome) नाम दिया। मैक क्लंग के अनुसार ये X- गुणसूत्र केवल नर जीव में ही पाये जाते हैं, लेकिन बाद में विल्सन एवं स्टीवेन्स (wilson and sevens, 1905) ने बताया कि ये लिंग गुणसूत्र (x) नर एवं मादा दोनों में ही पाये जाते हैं। इन्होंने बाद में एक अन्य प्रकार के लिंग गुणसूत्र (y) की भी खोज की थी। विल्सन (wilson) के अनुसार नर ड्रोसोफिला में X एवं Y गुणसूत्र एक साथ पाये जाते हैं, जबकि मादा में केवल XX गुणसूत्र ही पाये जाते हैं, उन्होंने इन्हें लिंग गुणसूत्र नाम दिया। इस प्रकार लिंग गुणसूत्र ऐसे गुणसूत्र हैं, जो किसी जीव के लिंग निर्धारण के लिये उत्तरदायी होते हैं। उदाहरण- X एवं Y गुणसूत्र।

लिंग गुणसूत्रों के प्रकार (Types of Sex chromosomes)– लिंग गुणसूत्र निम्न दो प्रकार के होते हैं–

(i) अविभाजित प्रकार (Undifferentiated type)– प्रारम्भिक प्रकार के जीवों (Primitive organisms) या निम्न कोटि के जीवों में X एवं Y गुणसूत्र नहीं पाये जाते हैं। इनमें लिंग निर्धारक जीन्स, ऑटोसोम्स पर ही पाये जाते हैं।

(ii) XX एवं XY प्रकार (XX and XY type)– ये निम्नलिखित प्रकार के होते हैं-

1. XXO एवं XYO प्रकार– इसमें मादा समयुग्मकी (Homogametic XX) होती है। अतः इनसे केवल एक प्रकार का अण्डा (egg) बनता है जबकि नर विषमयुग्मकी (Heterogametic) होते हैं अतः इनसे दो प्रकार के स्पर्म (50% X एवं 50% Y) बनते हैं।

उदाहरण- ड्रोसोफिला एवं मनुष्य।

पुरुष में एक जोड़ी XY एवं स्त्रियों में XX गुणसूत्र पाये जाते हैं।

2. XYO एवं XXO प्रकार– इसमें मादा विषमयुग्मकी (XY) होती है, जबकि नर समयुग्मकी (XX) होते हैं।

3. XXO एवं XOO प्रकार– इसमें मादा समयुग्मकी (XX) होती है, जबकि नर में केवल एक लिंग गुणसूत्र X होता है। उदाहरण– टिड्डों में।

लिंग गुणसूत्रों की संरचना (Structure of Sex Chromosomes)– मनुष्य में लिंग गुणसूत्र छड़ाकार (Rod shaped) होते हैं तथा X गुणसूत्र Y गुणसूत्र की अपेक्षा बड़ा होता है। ड्रोसोफिला में X गुणसूत्र छड़ाकार होता है, जबकि Y गुणसूत्र हुक (P) के आकार के होते हैं। X गुणसूत्र, Y गुणसूत्र की अपेक्षा आकार में बड़ा होता है।

लिंग गुणसूत्रों के कार्य (Functions of Sex chromosomes)– लिंग गुणसूत्र ही लिंग निर्धारण की इकाई होती है। अतः X एवं Y गुणसूत्र लिंग निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि लिंग निर्धारक कारक केवल लिंग गुणसूत्र (X एवं Y) पर ही पाये जाते हैं।

प्रश्न–6. लैंगिक सहलग्नता क्या होती है? उचित उदाहरणों के द्वारा समझाइये। [जीवाजी 2004,07,10,17]

अथवा

लिंग सहलग्न वंशागति का वर्णन कीजिये। [सागर 2008,12]

अथवा

मानव में पाये जाने वाले लिंग सहलग्न आनुवंशिक लक्षण पर निबंध लिखिये। [भोपाल 2006]

उत्तर– **लिंग सहलग्न वंशागति (Sex-Linked Inheritance)–** मानव के लैंगिक लक्षणों के अलावा गैर लैंगिक या दैहिक (Somatic) लक्षणों के निर्धारण के लिये जीन्स लिंग गुणसूत्रों (Sex chromosomes) पर पाये जाते हैं। इन जीन्स को सेक्स लिंक्ड जीन्स तथा इनके लक्षणों को सेक्स लिंक्ड लक्षण कहते हैं। यद्यपि X और Y सेक्स क्रोमोसोम की रचना भिन्न होती है, पर गेमैटोजिनेसिस के दौरान मियोटिक विभाजन में इनमें युग्मन या सिनैप्सिस अन्य समजात (homologous) जोड़ियों के गुणसूत्रों की तरह ही होता है। लिंग गुणसूत्रों की रचना में एक समजात खण्ड तथा असमजात खण्ड होता है अतः हम लिंग सहलग्न लक्षणों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं–

(I) X लिंक्ड– वे लिंग सहलग्न लक्षण जिनके जीन्स X- गुणसूत्र के असमजात खंड पर होते हैं। ये पुत्रियों को माता और पिता दोनों से मिल सकते हैं परन्तु पुत्रों को केवल माता से मिलते हैं।

(II) Y– लिंक्ड– वे जिनके जीन्स Y- क्रोमोसोम के नॉन होमोलॉगस खण्ड पर मिलते हैं अतः इनके ऐलेली X-क्रोमोसोम पर नहीं होते ये पीढ़ी दर पीढ़ी से पुत्रों में ही जाते हैं, अतः इन्हें होलोएण्ड्रिक जीन्स कहते हैं।

(III) XY– लिंक्ड– वे जिनके जीन X व Y क्रोमोसोम के होमोलोगस खण्डों पर ऐलेलीस के रूप में होते हैं, अतः इनकी वंशागति सामान्य आटोसोमल लक्षणों की तरह होती है।

लिंग सहलग्न लक्षणों की वंशागति को लिंग सहलग्न वंशागति कहते हैं। मानव के कुछ आनुवंशिक रोग के जीन मुख्य रूप से X- क्रोमोसोम में होते हैं। इनमें से अधिकांश रोगों के जीन रिसेसिव (अप्रभावी) होते हैं अर्थात् इन जीन्स के प्रभावी (dominant) ऐलिली सामान्य रोगहीन दशा स्थापित करते हैं, क्योंकि पुरुष में X क्रोमोसोम केवल एक जबकि स्त्रियों में दो होते हैं अतः इन लक्षणों की वंशागति विशेष प्रकार की होती है। इन जीन्स के रिसेसिव होने के कारण ये रोग हेटरोजायगस स्त्रियों में नहीं होते, ये केवल होमोजायगस स्त्रियों में होते हैं, जिनमें दोनों X- क्रोमोसोमों में रोग के जीन्स होते हैं। लेकिन पुरुषों में केवल एक X गुणसूत्र होने के कारण रोग के लक्षण का केवल एक ही जीन उपस्थित हो सकता है।

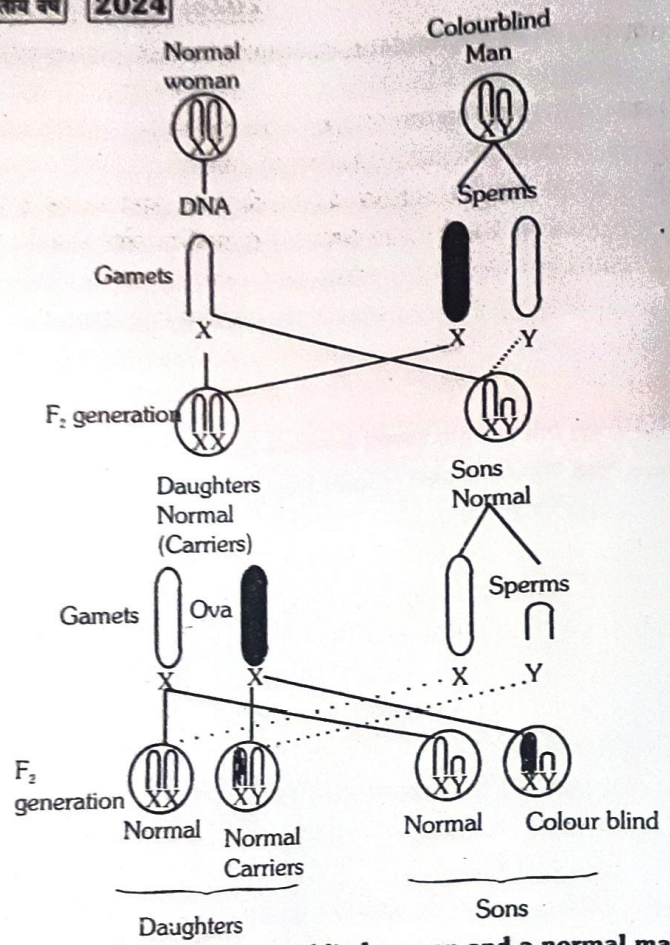


Fig. Cross between a colourblind woman and a normal man showing the inheritance of Colour blindness.

अतः एक ही रिसेसिव जीन से रोग पैदा हो जाता है। इसीलिये आनुवंशिक रोगों के लक्षण प्रायः पुरुषों में अधिक पाये जाते हैं। दूसरी ओर इन लक्षणों की वंशागति से यह स्पष्ट हो जाता है कि पुत्रों को इन लक्षणों के जीन पिता से कभी नहीं मिलते क्योंकि पुरुष का अकेला 'X' क्रोमोसोम हमेशा पुत्रियों में जाता है। इन पुत्रियों से फिर यह जीन दूसरी पीढ़ी के पुत्रों (F_2) में जाता है। अतः स्त्रियों की भूमिका प्रायः वाहक (Carrier) की होती है।

मनुष्य में X- लिंक्ड सुस्त लक्षणों में वर्णान्धता (Colour blindness) तथा हीमोफीलिया (Haemophilia) के रोग बहुत प्रसिद्ध हैं, जिनकी वंशागति निम्न प्रकार से होती है-

(A) मनुष्य में वर्णान्धता की वंशागति (Inheritance of Colour blindness in man)- इस रोग से ग्रसित व्यक्ति लाल एवं हरे रंग में भेद नहीं कर पाता। इस रोग का सबसे पहले वर्णन होरनर (1876) ने किया था। इसका जीन X- क्रोमोसोम पर स्थित

होता है तथा रिसेसिव होता है। वर्णान्धता की वंशागति निम्न दो उदाहरणों से समझी जा सकती है-

(1) **वर्णान्ध पुरुष व सामान्य स्त्री का विवाह-** यदि एक सामान्य वर्णबोध वाली स्त्री का विवाह वर्णान्ध पुरुष के साथ होता है तो उसकी सभी संताने सामान्य वर्णबोध वाली होती हैं। यद्यपि पुत्रियों में दृष्टि सामान्य होगी पर वे रोग की वाहक होंगी क्योंकि इन्हें एक X- क्रोमोसाम पिता से प्राप्त होता है जिसमें वर्णान्धता से सम्बंधित जीन होता है। दूसरा X- क्रोमोसोम माता से प्राप्त होता है। इनके पुत्रों में सामान्य वर्णबोध होगा।

अगर ऐसी वाहक (Carrier) पुत्री का विवाह किसी सामान्य वर्णबोध वाले पुरुष के साथ हो तो उसकी सभी पुत्रियों में सामान्य वर्णबोध होगा किन्तु उनमें से 50% पुत्रियाँ वाहक होंगी क्योंकि उनमें एक जीन वर्णान्धता के लिये दूसरा सामान्य वर्णबोध के लिये होगा तथा इनके पुत्रों में 50% पुत्र वर्णान्ध होंगे।

(2) **वर्णान्ध स्त्री व सामान्य पुरुष का विवाह-** यदि किसी वर्णान्ध स्त्री का विवाह एक सामान्य वर्णबोध वाले पुरुष के साथ होता है तो उसके सभी पुत्र वर्णान्ध होंगे क्योंकि उन्हें X- क्रोमोसोम माता से प्राप्त होगा जिसमें इस रोग के जीन उपस्थित हैं। इसके विपरीत सभी पुत्रियाँ सामान्य वर्णबोध वाली होंगी यद्यपि वे इस रोग की वाहक होगीं क्योंकि उनका एक X- क्रोमोसोम माता से तथा एक X- क्रोमोसोम पिता से प्राप्त होगा।

पिता से प्राप्त होने वाले गुणसूत्र में सामान्य वर्णबोध के लिये जीन होगा जो कि वर्णान्धता के जीन के प्रति प्रभावी होता है। यदि ऐसी पुत्री (वाहक) का विवाह किसी वर्णान्ध पुरुष के साथ हो तो उसकी पुत्रियों में से 50% वर्णान्ध तथा 50% सामान्य किन्तु कैरियर होंगी। पुत्रों में भी 50% सामान्य तथा 50% वर्णान्ध होंगे इस उदाहरण से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों में वर्णान्धता केवल तभी परिलक्षित होती है जब एक वाहक स्त्री का विवाह वर्णान्ध पुरुष के साथ हो।

(B) हीमोफीलिया की वंशागति- इस रोग को थॉम्बोप्लास्टिन की कमी के कारण चोट लगने पर मनुष्य में रूधिर का ठीक से थक्का नहीं बनता जिससे रक्त का बहना जारी रहता है। इसलिये इसे ब्लीडर्स रोग (Bleeders disease) भी कहते हैं। इस रोग में रोगी के रूधिर में एण्टीहीमोफीलिक-ग्लोबिन प्रोटीन की अनुपस्थिति के कारण थ्रॉम्बोप्लास्टिन का निर्माण नहीं हो पाता। इस प्रोटीन का निर्माण X- क्रोमोसोम पर स्थित जीन द्वारा नियंत्रित रहता है। इस रोग के बारे में सबसे पहले जॉन कोटो ने सन् 1803 में बताया। हीमोफीलिया रोग यूरोप के शाही खानदान में बहुत सामान्य था इसकी शुरूआत महारानी विक्टोरिया से हुई।

यह रोग मुख्यमः पुरुषों में पाया जाता है क्योंकि इनमें केवल एक X- क्रोमोसोम होता है इसलिये रिसेसिव (अप्रभावी) होने पर भी यह अभिव्यक्त हो जाता है। स्त्रियों में यह रोग बहुत कम होता है। क्योंकि इनमें इस रोग के होने के लिये दोनों क्रोमोसोम्स पर रिसेसिव लक्षण के जीन होना आवश्यक हैं। हीमोफीलिक स्त्रियों की प्रायः वयस्क होने से पूर्व ही मृत्यु हो जाती है।

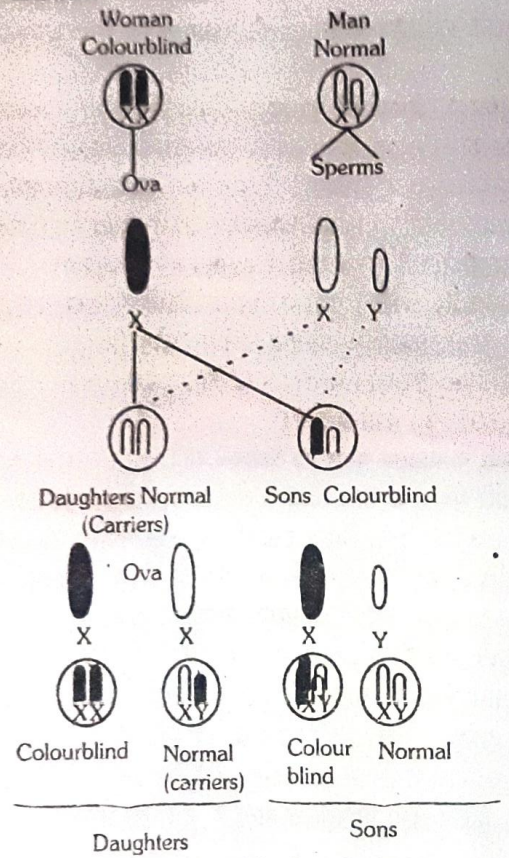


Fig. Cross between a colourblind male (X Y) and a normal female (X X) Showing the inheritance of Colour blindness.

हीमोफीलिया की वंशानुगति भी वर्णान्धता की तरह ही होती है। यदि हीमोफीलिया रोग की वाहक किसी स्त्री का विवाह एक सामान्य पुरुष के साथ हो जाता है तो उसकी सभी पुत्रियां सामान्य होंगी यद्यपि उसमें से 50% वाहक होंगी। पुत्रों में 50% हीमोफीलिया से ग्रसित होंगे। यदि एक हीमोफीलिक पुरुष का विवाह सामान्य स्त्री से होता है तब उसकी सभी सन्ताने सामान्य होंगी यद्यपि सभी पुत्रियाँ इस रोग की वाहक होंगी क्योंकि इनके एक गुणसूत्र (X) पर जो इन्हें माता से प्राप्त होगा सामान्य डॉमिनेन्ट जीन होगा तथा दूसरे X- गुणसूत्र पर जो इन्हें माता से प्राप्त होगा हीमोफीलिया से सम्बन्धित जीन होगा। जो अप्रभावी (Recessive) होगा।

प्रश्न–7. लिंग–संहलग्न आनुवांशिकता का वर्णन कीजिये। [ग्वालियर 2001,17]

अथवा

लिंग सहलग्न वंशागति का वर्णन कीजिये। [ग्वालियर 09,10 भोपाल 19,20, सागर 16, जबलपुर 19,,2000, इन्दौर 2000,09]

अथवा

वर्णान्धता एवं हीमोफिलिया पर टिप्पणी लिखिये। [सागर 2001,10,13]

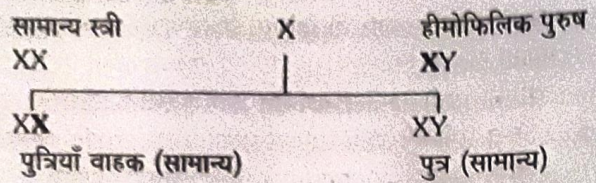
उत्तर– कुछ शारीरिक लक्षणों के निर्धारण के लिये जीन्स लिंग–गुणसूत्रों के असमजात भाग में स्थित होते हैं तथा वंशागति के समय ये लिंग–गुणसूत्रों के साथ वंशागत होते हैं। इन जीन्स को **लिंग सहलग्न जीन्स (Sex–linked genes)** तथा इन लक्षणों को **लिंग–सहलग्न लक्षण (Sex–linked characters)** कहते हैं। X- गुणसूत्र पर स्थित शारीरिक जीन्स को **X– सहलग्न जिन्स (X–linked genes)** कहते हैं तथा जो Y– गुणसूत्र पर होते हैं उन्हें **Y– सहलग्न जीन्स** कहते हैं।

मनुष्य में Y गुणसूत्र रिक्त होता है क्योंकि इस पर दैहिक लक्षणों के लिये जीन्स नहीं के बराबर होते हैं। इस कारण मनुष्य में केवल X सहलग्न जीन्स पाये जाते हैं। पुरुषों में केवल एक X–गुणसूत्र होता है जो उनको माता से प्राप्त होता है। अतः पुरुषों में सभी X–सहलग्न जीन्स माता से आते हैं तथा ये केवल अयुग्मित (Unpaired) होते हैं। स्त्रियों में एक X–गुणसूत्र माता से तथा दूसरा X–गुणसूत्र पिता से आता है। अतः स्त्रियों में लिंग सहलग्न जीन्स युग्मों (Pairs) में मिलते हैं। यदि जीन A एक लिंग–सहलग्न जीन्स है जो X–गुणसूत्र पर स्थित है तो स्त्रियों का जीनोटाइप AA होगा तथा पुरुषों का AY। यहां पर A लिंग सहलग्न जीन को तथा Y, Y–गुणसूत्र को प्रदर्शित करता है।

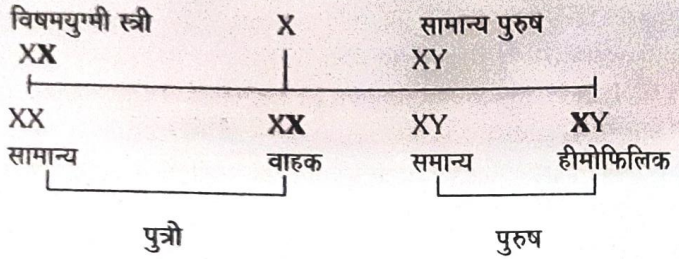
मनुष्य में **हीमोफिलिया (Hemophilia)** तथा लाल व हरे रंग के लिये **वर्णान्धता (Colour blindness)** लिंग–सहलग्न लक्षण है।

हीमोफिलिया (Hemophilia)– हीमोफिलिया एक ऐसी बीमारी है जिसमें थ्रोम्बोप्लास्टिन की कमी के कारण रोगी के खून का ठीक तरह से थक्का नहीं बनता। रुधिर के प्लाज्मा में एन्टी हीमोफिलिक ग्लोबुलिन (Antihemophilic globulin) की अनुपस्थिति के कारण थ्रोम्बोप्लास्टिन नहीं बन पाता। एन्टीहीमोफिलिक ग्लोबुलिन का निर्माण X–गुणसूत्र पर स्थित जीन द्वारा नियन्त्रित रहता है। इस जीन का उत्प्रेरक (Mutant) एन्टीहीमोफिलिक–ग्लोबुलिन का निर्माण सही मात्रा में नहीं होता। अतः तनिक सी चोट लगने पर ही हीमोफिलिक रोगियों के शरीर से बहुत–सा रुधिर (खून) बह निकलता है। हीमोफिलिया मुख्यतः पुरुषों में पाया जाता है किन्तु कभी–कभी स्त्रियों में भी दृष्टिगत होता है। इसका कारण यह है कि पुरुषों में अकेले होने पर भी यह अप्रभावी जीन अपने लक्षण को प्रदर्शित कर सकता है, जबकि स्त्रियों मे हीमोफिलिया लक्षण के बनने के लिये जरूरी है कि उसके दोनों X–गुणसूत्रों पर अप्रभावी लिंग सहलग्न जीन होने चाहिये। अतः हीमोफिलिक स्त्रियां अप्रभावी (Homozygous recessive) जीन के लिये समयुग्मी होती हैं।

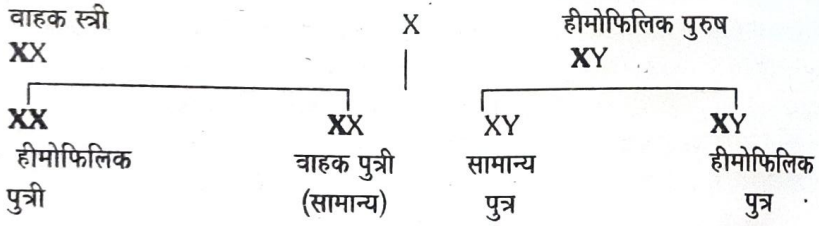
यदि एक हीमोफिलिक पुरुष एक सामान्य स्त्री से शादी करता है तो उसकी सभी सन्तानें (सभी लड़कियां व लड़के) सामान्य दृष्टि वाले होंगे। लेकिन वास्तव में इनकी सभी लड़कियाँ वाहक (Carrier) होती हैं। इनके दो X– गुणसूत्रों में से एक पर सामान्य जीन होता है जो इसकी माता से मिलता है तथा दूसरे X– गुणसूत्र पर सामान्य जीन का अप्रभावी युग्मविकल्पी (Recessive allelc) प्राकृतिक होता है। इसी अप्रभावी युग्मविकल्पी के कारण हीमोफीलिया का रोग होता है लेकिन प्रभावी सामान्य जीन की उपस्थिति के कारण लड़कियों में इसका प्रभाव लक्षित नहीं होता। इनके सभी लड़कों में X–गुणसूत्र माता से आता है। इस गुणसूत्र पर सामान्य जीन होगा। इनके Y–गुणसूत्र पर इस लक्षण के लिये कोई जीन नहीं होता।



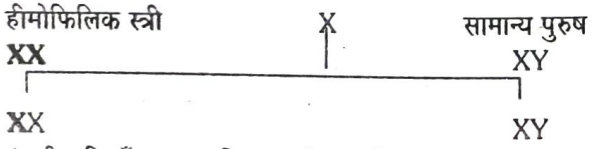
F_1 पीढ़ी की इन वाहक लड़कियों की शादी यदि सामान्य पुरुषों से होती है तो इनके बेटों में से आधे हीमोफिलिक प्रकृति के होते हैं तथा आधे सामान्य। पुत्रियां यद्यपि सामान्य होती है किन्तु उनमें से आधी वाहक या विषमयुग्मी होती हैं।



यदि विषमयुग्मी या वाहक स्त्री की शादी किसी हीमोफिलिक पुरुष से कर दी जाये तो उनकी लगभग आधी लड़कियां हीमोफिलिक होनी चाहिये। अतः हीमोफिलिक लड़की तभी पैदा हो सकती है जब उसकी माता हीमोफिलिया जीन की वाहक हो तथा उसका पिता हीमोफिलिक हो।



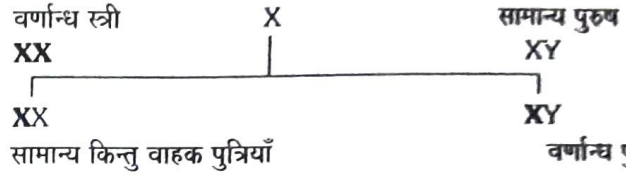
यदि हीमोफिलिक स्त्री की शादी सामान्य पुरुष से कर दी जाये तो उसके सभी पुत्र हीमोफिलिक होंगे तथा सभी बेटियां वाहक अथवा विषमयुग्मी होंगी।



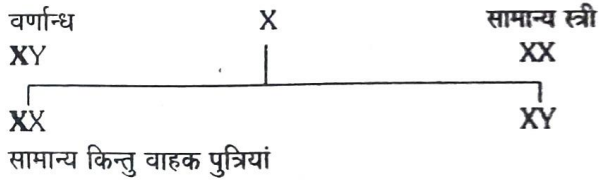
मनुष्य में वर्णान्धता (Colour blindness in man)– मनुष्य में वर्णान्धता भी एक लिंग–सहलग्न लक्षण है। इसका जीन X– गुणसूत्र पर स्थिर होता है तब इस अवस्था में यह अप्रभावी होता है। इसके दूसरे युग्मविकल्पी को सामान्य कहा जा सकता है तथा यह प्रभावी होता है। यदि वर्णान्धता के लिये जीन वाले X–गुणसूत्र को X द्वारा तथा सामान्य वर्णबोध के

लिये जीन वाले X–गुणसूत्र को X से प्रदर्शित करें तो विभिन्न संकरणों के परिणामों को निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है–

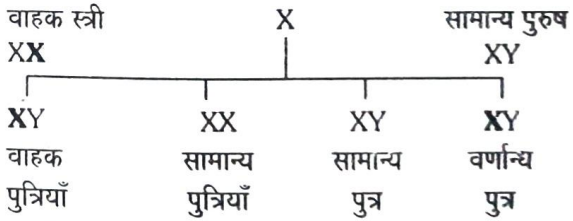
1. यदि एक वर्णान्ध स्त्री की शादी सामान्य वर्णबोध वाले पुरुष के साथ हुई हो तो उसके सभी पुत्र वर्णान्ध होंगे, किन्तु सभी पुत्रियों में सामान्य वर्णबोध होगा यद्यपि इन सभी में वर्णान्धता के लिये भी जीन्स होंगे, अर्थात् ये विषमयुग्मजी होंगी, क्योंकि इनको एक X–गुणसूत्र माता से तथा एक X– गुणसूत्र पिता से प्राप्त होगा। पिता से आने वाले गुणसूत्र में सामान्य वर्णबोध के लिये जीन होगा जो वर्णान्धता जीन पर प्रभावी होता है।



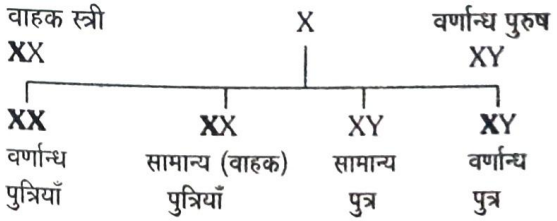
2. अगर एक वर्णान्ध पुरुष व सामान्य स्त्री की शादी की जाती है तो उसके सभी बेटे व बेटियों में सामान्य वर्णबोध पाया जाता है।



3. यदि F_1 पीढ़ी की किसी विषमयुग्म की लड़की की शादी किसी सामान्य वर्णबोध वाले पुरुष से कर दी जाये तो उसकी सभी पुत्रियों में सामान्य वर्णबोध होगा किन्तु उनमें से 50% लड़कियों में वर्णान्धता के लिये एक जीन होगा तथा दूसरा जीन सामान्य वर्णबोध के लिये। उनके बेटों में से 50% में वर्णान्धता पायी जाने की संभावना रहती है।



4. स्त्रियों में वर्णान्धता तभी आ सकती है जब एक वाहक (विषमयुग्मी) स्त्री की शादी वर्णान्ध पुरुष के साथ की गयी हो।



प्रश्न–8. सहलग्नता मानचित्र (Linkage map) पर टिप्पणी लिखिये। [सागर 2008]

अथवा

सहलग्नता मानचित्र (Linkage map) के बारे में आप क्या जानते हैं? स्पष्ट कीजिये।

[भोपाल 2001,13 इन्दौर 2004]

उत्तर– सहलग्नता मानचित्र (Linkage map)– किसी जन्तु या प्राणी कोशिका में अलग–अलग संख्या में क्रोमोसोम पाये जाते हैं और प्रत्येक क्रोमोसोम पर अनेक जीन्स स्थित होते हैं। किसी क्रोमोसोम पर पाये जाने वाले जीन्स को उनकी स्थिति तथा बीच की दूरी को गुणसूत्र के रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इन रेखाचित्रों को सहलग्नता मानचित्र (Linkage map) कहते हैं।

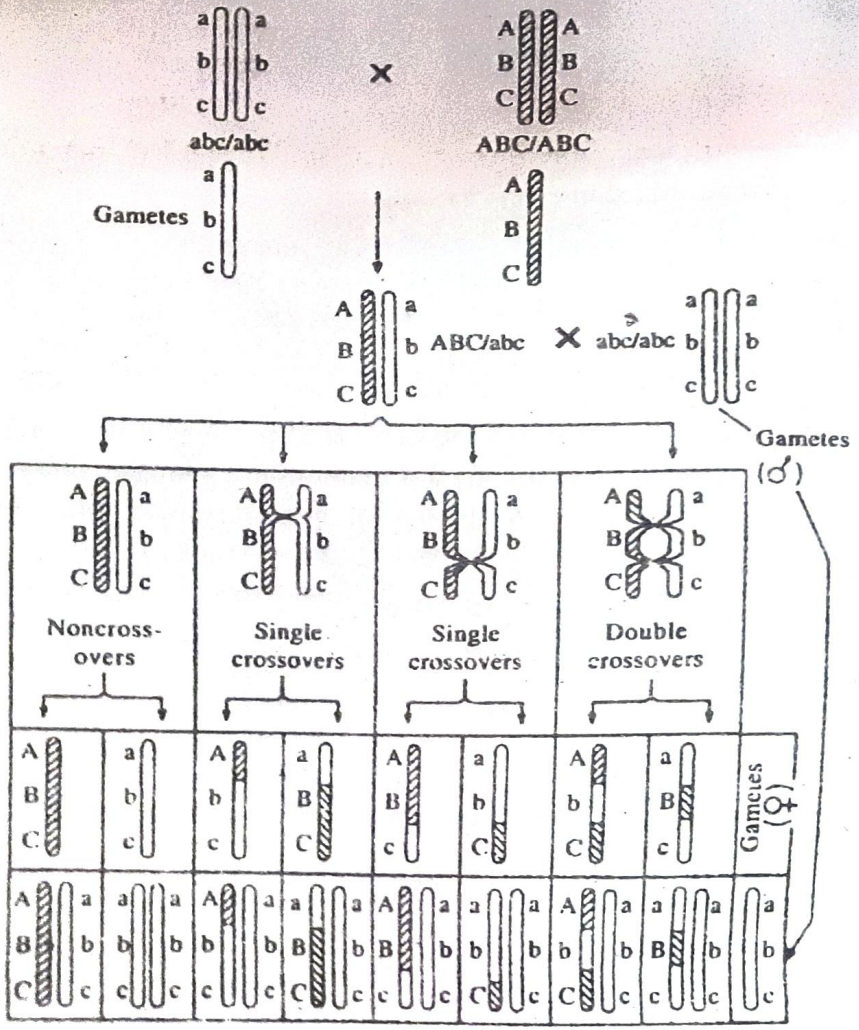


Fig. Three point test cross with three genes A,B,C

सहलग्नता मानचित्रों को कैसे बनाया जाता है उसे नीचे लिखित उदाहरण से समझा जा सकता है–

यदि एक ही गुणसूत्र पर A, B एवं C तीन जीन उपस्थित हैं, और वे सहलग्नी हैं तब एक गुणसूत्र पर इन जीनों की उपस्थिति के क्रमशः तीन संभावित रैखिक क्रम A – B – C, A – C – B एवं B – A – C हो सकते हैं। इन तीनों क्रमों से स्पष्ट है कि पहले दूसरे एवं तीसरे क्रम में क्रमशः B, C और A मध्य में स्थित हैं। इसलिये रैखिक क्रम का ज्ञात करने के लिये पहले केन्द्र में स्थित जीन को ज्ञात करना होगा।

यदि जीनों का क्रम A–B–C हो तो निम्न परिणाम प्राप्त होंगे–

क्रमांक	विनिमय की दशा	जीन प्रारूप	लक्षण प्रारूप	परिकल्पित आवृत्ति
1.	Non-crossovers	ABC/abc abc/abc	ABC	a b
2.	Crossing overs (A–B)	Abc/abc aBC/abc	Abc aBC	c d
3.	Crossing overs (B–C)	ABc/abc abC/abc	ABc abC	e f
4.	Crossing overs (A–B) & (B–C)	abC/abc aBc/abc	AbC aBc	g h
			Total	T

प्रश्न–9. लिंग विभिन्नता पर टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2004,07,10,16]

अथवा

लिंग विभिन्नता से आप क्या समझते हैं? उदाहरण के साथ समझाइये।

अथवा [भोपाल 2001, इन्दौर 2004]

लिंग विभिन्नता को उदाहरण सहित समझाइये। [भोपाल 2006,07,13]

उत्तर– द्विलिंगी जन्तुओं में नर तथा मादा जन्तुओं की फीनोटाइप के साथ ही जीनोटाइप में भी अनेक विभिन्नतायें पायी जाती हैं। जन्तुओं की लिंग में विभिन्नता की पहचान प्रायः गुणसूत्रों में अन्तर तथा हॉर्मोन्स में अन्तर के आधार पर की जाती है। उदाहरण निम्न प्रकार हैं–

(i) सेक्स क्रोमेटिन बॉडीज (Sex Chromatin bodies)– सेक्स क्रोमेटिन बॉडी के सम्बन्ध में सर्वप्रथम एम. एल. बार ने मादा बिल्लियों की तंत्रिका कोशिकाओं का अध्ययन करके बताया। उन्होंने बताया कि यह नर बिल्ली की कोशिकाओं में अनुपस्थित होता है। बाद में उन्होंने औरतों की कोशिकाओं जैसे मुखीय म्यूकोसा (Buccal mucosa) की एपिथीलियम कोशिकाओं में इन बॉडीज को पहचाना और इनका नामकरण बार बॉडी (Barr body) के रूप में किया। इन बॉडी की संख्या x– क्रोमोसोम की संख्या के समानुपात में थी, जबकि नर कोशिकाओं में यह अनुपस्थित थी। इस विधि से मानव भ्रूण की प्रारंभिक अवस्था मे ही लिंग की पहचान की जा सकती है। इसके अलावा कुछ अन्य रोगों की पहचान भी इससे की जा सकेगी। जैसे– मादा में टर्नर सिन्ड्रोम तथा नर में क्लिनफेल्टर्स सिन्ड्रोम।

(ii) मात्रा क्षतिपूर्ति (Dosage Compensation)– ज्यादातर स्तनधारियों के मादा में दो x– क्रोमोसोम तथा नर में एक x– क्रोमोसोम पाया जाता है। इसका अर्थ है कि मादा में

x– क्रोमोसोम के जीन दोगुनी मात्रा में होते हैं, जबकि नर में x– क्रोमोसोम के जीनों का केवल एक डोज ही उपिस्थत होता है (कुछ जीनों को छोड़कर, जिनके ऐलील y– क्रोमोसोम पर होते हैं)। x– क्रोमोसोम के होमोजायगस जीन मादा में उतनी प्रखरता से अपने लक्षण प्रदर्शित नहीं करते हैं जितना ये हेमिजायगस नर (Hemizygous male) में करते हैं। इसका अर्थ है कि यहाँ 'डोसेज कॉम्पेन्सेशन' (dosage compensation) की क्रिया कार्य कर रही है, जिसके कारण दोनों लिंगों में जीन की मात्रा लगभग बराबर हो जाती है। कई वैज्ञानिकों ने यह बताया कि स्तनधारियों में सेक्स क्रोमेटिन बॉडीज और डोसेज कॉम्पेन्सेशन का पता सामान्य मादा में एक x– क्रोमोसोम के निष्क्रियण से लगाया जा सका है।

इस परिकल्पना को **लायन परिकल्पना (Lyen hypothesis)** भी कहा जाता है। **मेरी. एफ. लायन (Mary. F. Lyen)** ने सर्वप्रथम इस परिकल्पना को सायटोलॉजिकल (Cytological) तथा जेनेटिक (genetic) आकलनों के आधार पर तैयार किया था। उन्होंने इसके लिये चूहे (mice) के रंग पर अध्ययन किया। उनके अनुसार मादा में भी केवल एक ही x– क्रोमोसोम की आवश्यकता होती है। केवल एक x– क्रोमोसोम ही शरीर की मेटाबॉलिक क्रियाओं को पूर्ण करने में सक्षम है। कोई अन्य y– क्रोमोसोम यदि कोशिका में है तो वह सिकुड़कर हेटेरोपिक्नोटिक (Heteropycnotic) हो जाता है और जेनेटिकली (Genetically) अक्रिय रहता है।

डोसेज कॉम्पेन्सेशन की अवधारणा को कोशिका में ग्लूकोज–6 फॉस्फेट डीहाइड्रोजीनेज की क्रियाविधि के अध्ययन के बाद काफी बल मिला। एन्जाइम क्रियाविधि दोनों ही लिंगों में समान होती है, जबकि x– क्रोमोसोम की मात्रा मादा में दो तथा नर में एक होती है।

प्रश्न–10. गुणसूत्रीय विपथन से आप क्या समझते हैं? गुणसूत्रीय विपथन का विस्तृत वर्णन कीजिये। **[सागर 2008,13]**

अथवा

गुणसूत्रीय पुनर्व्यवस्थापन (Chromosomal aberrations) क्या है? परिभाषा देते हुये इसका वर्गीकरण कीजिये। **[भोपाल 2007,10,12 जबलपुर 2017]**

उत्तर– क्रोमोसाम के खण्डों में टूटने और उनके पुनः जुड़ने की क्रिया क्रॉसिंग ओवर के समय होती है, परन्तु कभी–कभी क्रोमोसोम के खण्डों में अनियमित रूप से टूटने व जुड़ने की क्रिया होती है। इस प्रकार से 'क्रोमोसोम में होने वाली समग्र परिवर्तन को सामान्यतः गुणसूत्रीय विपथन या गुणसूत्रीय पुनर्व्यवस्थापन' कहते हैं। कई तरह के गुणसूत्रीय विपथन की खोज कर ली गई है, जो कि निम्नलिखित हैं–

गुणसूत्रीय विपथन का वर्गीकरण
(Classification of Chromosomal aberrations)

1. संख्या में परिवर्तन या एक ही क्रोमोसोम के जीन लोकाई का व्यवस्थापन–

(A) संख्या में–

(i) कमी या विलोपन (Deficiency or deletion)– एक या अधिक जीन का ह्रास होना।

(ii) दोहरीकरण (Duplication)– एक या अधिक जीन का समावेश होना।

(B) व्यवस्थापन में–

(i) स्थानान्तरण (Translocation)– दो नये क्रोमोसोम के निर्माण के लिये नॉन–होमोलोगस क्रोमोसोम के भागों में परिवर्तन।

(ii) परिवर्तन (Inversion)– एक ही क्रोमोसोम के अन्तर्गत जीन के एक समूह का 180° से घूम जाना।

2. क्रोमोसोम की संख्या में परिवर्तन (Changes in number of Chromosomes)–

(A) सम्पूर्ण सेट में परिवर्तन

(i) हैप्लॉइडी (Haploidy)– प्रत्येक क्रोमोसोम अलग–अलग प्रदर्शित होते हैं।

(ii) पॉलिप्लॉइडी (Polyploidy)– प्रत्येक क्रोमोसोम दो से अधिक होमोलोगस द्वारा प्रदर्शित होते हैं।

(B) एक सेट में क्रोमोसोम संख्या में परिवर्तन हेटेरोप्लॉइड–

(i) मोनोसोमिक (Monosomics)– एक सेट से एक क्रोमोसोम का कम हो जाना। जैसे– डिप्लॉइड में 2n–1

(ii) पॉलिसोमिक (Polysomic)– एक सेट में एक या अधिक क्रोमोसोम की वृद्धि होना। जैसे– 2n+1

(iii) नलिसोमिक **(Nullisomic)–** एक जोड़े में से दोनों क्रोमोसोम का ह्रास हो जाना।

गुणसूत्रीय विपथन को मुख्य दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

(I) स्वतः विपथन (Spontaneous Aberrations)– यह प्राकृतिक रूप से क्रोमोसोम की पुनर्व्यवस्थापन प्रक्रिया है। इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? यह ज्ञात नहीं है। इस प्रकार की असामान्यता के लिये कास्मिक रेडियेशन, अपर्याप्त खाद्य पदार्थ एवं वातावरणीय परिस्थितियों जैसे तापमान, प्रकाश आदि कारक उत्तरदायी होते हैं। यह विपथन बहुत ही अनिश्चित एवं असमय होता है। यह जीवों में बहुत ही नगण्य होता है।

(i) विलोपन (Deficiency)– यह क्रोमोसोम के एक छोटे से भाग के ह्रास के कारण होता है। यह ह्रास जब क्रोमोसोम के एक सिरे पर होता है तब उसे टर्मिनल (Terminal) तथा जब ह्रास क्रोमोसोम के अन्दर दूसरे से जुड़े हुये सिरे की तरह होता है तब उसे इन्टरकैलेरी (Intercalary) डेफिसिएन्सी कहते हैं।

(II) दोहरीकरण (Duplication)– एक होमोलोगस क्रोमोसोम के एक क्रोमेटिड से कुछ भाग टूट कर अलग हो जाता है साथ ही दूसरे क्रोमेटिड से जुड़ जाता है। तब इस क्रिया को दोहरीकरण कहा जाता है। इस दोहरे भाग में जीन के दो सेट पाये जाते हैं। यह क्रिया उस समय देखने को मिलती है। जब क्रॉसिंग ओवर की क्रिया में सिनाप्सिस (Synapsis) के समय क्रोमेटिड बिल्कुल एक सीध में नहीं आ पाते हैं।

दोहरीकरण की यह क्रिया विकास में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है, क्योंकि इससे क्रोमोसोम में वास्तविक संख्या से अधिक जीन जुड़ जाते हैं। इस क्रिया को पॉलिटीन क्रोमोसोम में अतिरिक्त बैण्ड के रूप में देखा जा सकता है। दोहरीकरण (Duplications) निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) टेण्डम दोहरीकरण (Tandem duplication)– इसमें जुड़ने वाले खण्ड का जेनेटिक ऑर्डर वैसा ही होता है जैसा कि मूल खण्ड का होता है और यह मूल खण्ड के पास ही होता है।

(ii) रिवर्स टेण्डम दोहरीकरण (Reverse tandem Duplication)– इसमें जुड़ने वाला खण्ड मूल खण्ड के पास ही होता है, लेकिन इसका जीन मूल खण्ड के विपरीत क्रम में होते हैं।

(iii) डिसप्लेस्ड दोहरीकरण (Displaced Duplication)– इसमें एक खण्ड अलग क्रोमोसोम में प्रविष्ट होता है।

(a) ABC	ABC	DEF
(b) ABC	CBA	ABCDEF
(c) LMN	ABC	OPQR

Fig. दोहरीकरण के प्रकार
(a) Tandem, (b) Reverse, (c) Displaced

(III) स्थानान्तरण (Translocation)– यह क्रोमोसोम में होने वाली बहुत ही सामान्य क्रिया है। इसमें क्रोमोसोम के एक खण्ड का स्थानान्तरण इसी क्रोमोसोम के अलग भाग में या फिर अलग क्रोमोसोम में होता है। यह क्रिया नॉन- होमोलोगस क्रोमोसोम में भी हो सकती है। स्थानान्तरण (Translocation) तीन प्रकार के होते हैं–

(i) रेसीप्रोकल (Reciprocal)– जब खण्ड का स्थानान्तरण नॉन-होमोलोगस क्रोमोसोम के बीच में होता है, तब उसे रेसीप्रोकल ट्रांसलोकेशन कहते हैं।

(ii) सामान्य (Simple)– इसमें क्रोमोसोम का अंतिम खण्ड होमोलॉगस या नॉन-होमोलोगस क्रोमोसोम के एक सिरे से जुड़ जाता है। यह प्रकृति में बहुत ही नगण्य होता है।

(iii) शिफ्ट (Shift)– इस क्रिया में एक क्रोमोसोम की मध्यस्थ खण्ड उसी क्रोमोसोम या अन्य क्रोमोसोम के दूसरे भाग में जाकर जुड़ जाता है। शिफ्ट में कम से कम किसी क्रोमोसोम में तीन जगह टूटने की क्रिया होती है।

(iv) उलट-पुलट (Inversion)– गुणसूत्रीय विपथन की यह क्लिष्ट प्रक्रिया है। इस क्रिया में क्रोमोसोम का कोई भाग अलग होकर पुनः इस प्रकार से जुड़ता है कि जीन्स के क्रम उलट जाते हैं। इसमें दो ब्रेक की आवश्यकता होती है।

उलट-पुलट (inversion) दो प्रकार के होते हैं–

(a) पैरासेन्ट्रिक (Para-Centric)– इसमें उलटने वाले खण्ड में सेण्ट्रोमियर सम्मिलित नहीं होता है।

(b) पेरिसेन्ट्रिक (Peri-Centric)– जब उलटने की क्रिया में सेन्ट्रोमियर स्थित होता है तब पेरिसेन्ट्रिक इन्वर्सन होता है।

(ii) प्रेरित विपथन (Induced aberrations)– जब किसी विपथन के लिये भौतिक या रासायनिक कारक या प्रतिनिधि की आवश्यकता होती है तब विचलन प्रेरित विपथन कहलाता है। विभिन्न प्रकार के विकिरण की खोज की गई है, जिससे विपथन होता है।

सामान्य जीव जैसे– बैक्टीरिया, वाइरस और प्रोटोजोआ आदि विकिरण रोधी होते हैं सबसे संवेदी जीव प्राइमेट होते हैं जिनमें मनुष्य भी शामिल होते हैं। विकिरण से प्रेरित विपथन को हम दो समूहों में विभाजित कर सकते हैं–

(i) क्रोमोसोम प्रकार (Chromosome type)– यदि क्रोमोसोम को दोहरीकरण के पहले विकिरण दिया जाये तब मेटाफेज एवं एनाफेज अवस्था में विपथन दिखाई देता है। तब इसे क्रोमोसोम प्रकार का विकिरण प्रेरित विपथन कहते हैं। यह टर्मिनल डिलिसन, इंटरस्टीसियल डिलिसन और एक्सचेंज प्रकार का हो सकता है।

(ii) क्रोमेटिड प्रकार (Chromatid type)– यदि विकिरण देते समय क्रोमोसोम प्रभावी रूप से दोगुना हो तब विभाजन के समय होने वाला विपथन क्रोमेटिड प्रकार का विकिरण प्रेरित विपथन कहलाता है।

क्रोमेटिड विपथन निम्न तीन प्रकार का होता है–

(i) क्रोमेटिड डिलिसन (ii) आइसोक्रोमेटिड डिलिसन और (iii) क्रोमेटिड एक्सचेंजेस।

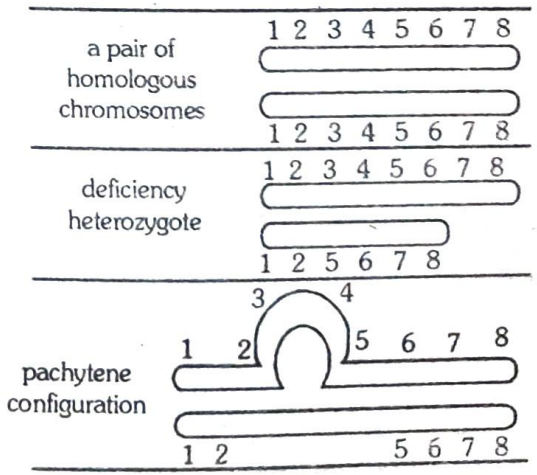
प्रश्न–11. हीनता एवं द्विगुणन का विस्तृत वर्णन कीजिये। [सागर 2004,05,12]

अथवा

हीनता एवं द्विगुणन पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये। [जबलपुर 2001]

उत्तर– हीनता या विलोपन (Deficiency or Deletion)

गुणसूत्र के किसी एक भाग की हानि होने के कारण हीनता आ जाती है। छोटी-छोटी हीनताओं को विषम युग्मजी दशा (दो समजातीय गुणसूत्रों में से केवल एक में होती है) में देखा जा सकता है। अर्धसूत्री विभाजन के अन्तर्गत इस हीनताओं वाले गुणसूत्र एक विशिष्ट युग्मजी (bivalent) में एक लूप (loop) का निर्माण कर लेते हैं। इसे पेकीटीन अवस्था में देखा जा सकता है।



चित्र– एक हीनता विषम युग्मज में गुणसूत्र का बनना

ड्रोसोफिला नामक मक्खी की लार ग्रन्थियों में पाये जाने वाले महागुणसूत्र एक स्थायी युग्मन की अवस्था में पाये जाते हैं। इस कारण इन गुणसूत्रों में छोटी सी हीनताओं का पता लग जाता है। हीनता की स्थिति में एक अप्रभावी लक्षण प्रभावी लक्षण की भाँति व्यवहार करता है। इस कारण इसे आभासी प्रभाव (Pseudodoninance) कहा जा सकता है।

एल. डी. स्टेडलर (L. D. Stadler) ने प्रेरित हीनता को पहचानने के लिये एक प्रभावी प्रभाव (Dominant marker) के द्वारा एक अप्रभावी प्रभाव का परागण कराया। इस प्रयोग में यदि प्रभावी प्रभाव का किरणन के द्वारा विलोपन हुआ तो आभासी प्रभाविता के कारण अप्रभावी युग्मक विकल्पी मुख्य लक्षण के रूप में दिखाई देगा।

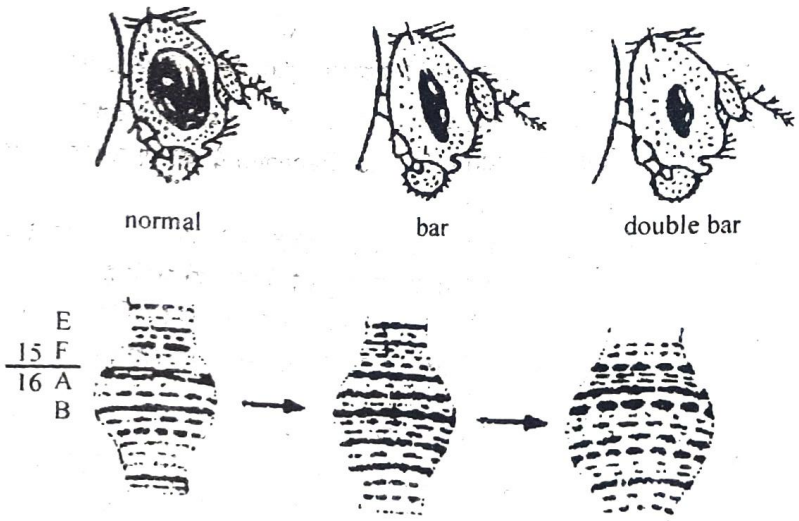
यदि युग्मनज abc/abc या ABC/ABC के द्वारा परागण कराया जाता है तो विषम युग्मजी F_1 (ABC/abc) सन्तनि प्राप्त होगी तथा इस पीढ़ी में केवल प्रभावी लक्षण दिखाई देंगे। परन्तु यदि प्रभावी पराग ABC को विकिरण के द्वारा विलोपित कर दिया जाये तो इसमें एक या एक से अधिक अप्रभावी युग्म विकल्पियों के द्वारा प्रभाविता व्यक्त हो सकती है। इस प्रकार की हीनता का अवलोकन अर्धसूत्री विभाजन की पेकीटीन उप–प्रावस्था में किया जा सकता है। इसमें लूप की उपस्थिति के कारण जीन की उपस्थिति उजागर हो जाती है।

प्रश्न–12. द्विगुणन (Duplication) का वर्णन कीजिये।

उत्तर–

द्विगुणन (Duplication)

किसी गुणसूत्र में उसी के एक भाग के फिर से पाये जाने के क्रम को द्विगुणन (Duplication) कहते हैं। यदि दोनों समजातीय गुणसूत्रों में केवल एक गुणसूत्र पर द्विगुणन होता है तो द्विगुणन में भी अर्धसूत्री विभाजन की पेकीटीन उप–प्रावस्था में हीनता के समान लूप की उपस्थिति का पता चलता है।



चित्र– एक सामान्य नेत्र, शलाका नेत्र और एक द्विक–शलाका नेत्र तथा संगत गुणसूत्र खण्ड, जिसमें द्विगुणन व्युत्पत्ति को प्रदर्शित किया गया है.

एक गुणसूत्र खण्ड में द्विगुणन की क्रिया निम्नलिखित चार प्रकार से होती है–

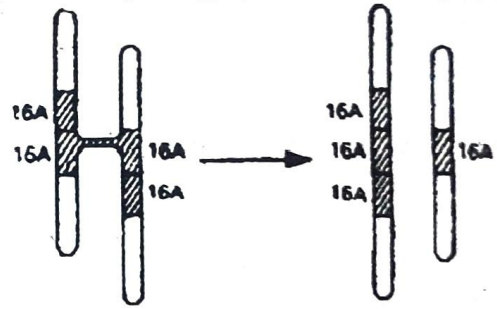
(i) निकटवर्ती क्षेत्र में योग (Addition) द्वारा।

(ii) एक ही गुणसूत्र में अन्य भुजा के योग द्वारा।

(iii) एक ही भुजा में विस्थापित स्थिति में योग द्वारा।

(iv) अन्य गुणसूत्रों में योग द्वारा।

कभी–कभी यह द्विगुणन विलोम पुनरावर्तन (Reverse repeate) के रूप में पाया जा सकता है। द्विगुणन के मुख्य उदाहरणों में शलाका नेत्र (Bar eyes) का इस संदर्भ में उल्लेख किया जाना उचित होगा। शलाका नेत्र एक ऐसा लक्षण है जिसमें नेत्र सामान्य नेत्र की अपेक्षा छोटे हो जाते हैं। यह लक्षण गुणसूत्र के एक भाग के द्विगुणन के कारण होता है। ड्रोसोफिला की लार ग्रन्थियों के गुणसूत्रों के अध्ययन से यह पता चलता है कि x–गुणसूत्र के 16A क्षेत्र में एक द्विगुणन (Duplication) हो जाने से शलाका लक्षण प्रकट हुआ। इस कारण शलाकित जीवों के गुणसूत्र के एक भाग को 16A, 16A के द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। शलाकित जीवों (16A, 16A) के असमान जीव विनिमय के कारण अतिशलाका (16A, 16A, 16A) तथा सामान्य (16A) वन्य प्रकार (Wild type) जीव प्राप्त किये जा सकते हैं।



चित्र– असमान जीव विनिमय के कारण शलाका (bar) से प्राप्त एक अतिशलाका (Ultra bar) अवस्था

इसी प्रकार ड्रोसोफिला में द्विगुणन के कारण कुछ निम्न लक्षण प्रकट हो सकते हैं–

(i) **गुणसूत्र 4 में विलोम पुनरावर्तन (Reverse Repeate) के कारण नेत्रहीन प्रभावी (Ey) लक्षणों का विकसित होना ।**

(ii) **गुणसूत्र 3 में अनुबद्ध द्विगुणन के कारण जुड़ाव (Confluence) का लक्षण विकसित हो जाना, जिसमें शिरायें आपस में जुड़ने से मोटी हो जाती हैं।**

(iii) **द्विगुणन के कारण रोमयुक्त पंखों (Hairing wing) का लक्षण विकसित हो जाना।**

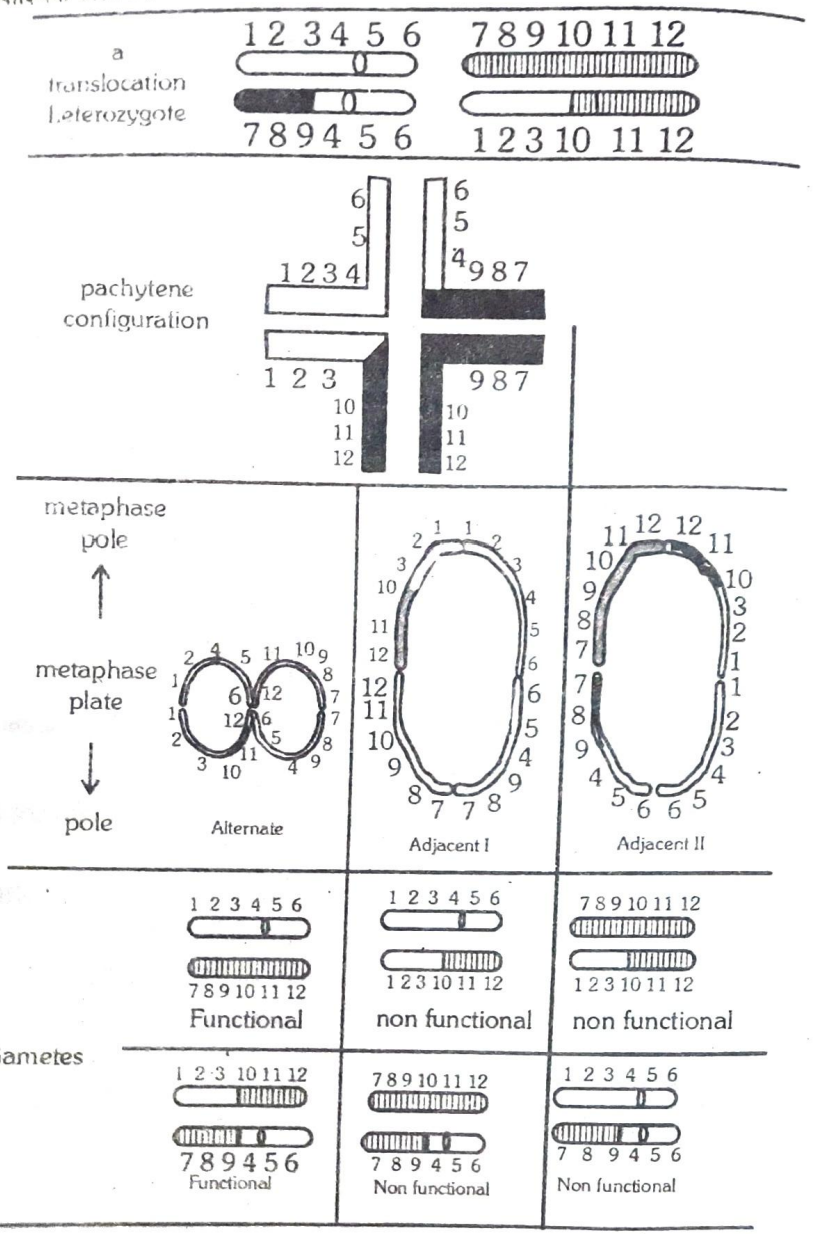
प्रश्न–13. स्थानान्तरण (Translocation) पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

स्थानान्तरण से आप क्या समझते हैं? सचित्र व्याख्या कीजिये।

उत्तर– स्थानान्तरण (Translocation)– इस प्रक्रम के अन्तर्गत एक गुणसूत्र से दूसरे गुणसूत्र में खण्डों के एक पार्श्वीय (Unilateral) जिसमें गुणसूत्र खण्ड एक गुणसूत्र से दूसरे गुणसूत्र में जाता है तथा केवल एक ही दिशा में स्थानान्तरण होता है। एक द्विपार्श्वीय जिसमें खण्डों का आदान–प्रदान दोनों दिशाओं में होता है, शामिल किये जाते हैं। कुछ स्थानान्तरण

जिनका विकास की दृष्टि से महत्व होता है उन्हें पारस्परिक स्थानान्तरण (Reciprocal Translocation) या खण्डीय विनिमय (Segmental interchanges) कहते हैं। इस प्रकार के स्थानान्तरण में असमजातीय गुणसूत्रों के बीच गुणसूत्रों के खण्डों का आदान-प्रदान द्विपार्श्विक होता है।



चित्र– एक स्थानान्तरण विषमयुग्मनज में गुणसूत्र युग्मन (Pairing) एवं विभिन्न प्रकार के बने युग्मक

यदि गुणसूत्रों के दोनों सेट में से किसी एक में स्थानान्तरण उपस्थित है तो इसे एक स्थानान्तरण विषययुग्मज (Translocation heterozyote) कहते हैं। इस प्रकार के लक्षणयुक्त पौधों के स्थानान्तरण में भाग लेने वाले गुणसूत्रों के बीच सामान्य युग्मन की क्रिया के द्वारा युगलियों का निर्माण सम्भव नहीं होगा। गुणसूत्रों के समजातीय खण्डों के बीच युग्मन के कारण पेकीटीन (स्थूल बद्ध) उप-अवस्था में एक त्रासित (+) आकृति परिलक्षित होगी। इसमें चार गुणसूत्र शामिल होंगे। पेटाफेस I के अन्तर्गत इन चारों गुणसूत्रों के द्वारा एक चतुःसंयोजक (Quadrivalent) का निर्माण होगा जो विभिन्न कोशिकाओं में निम्नलिखित तीन विन्यासों में किसी एक के अभिविन्यास को प्रदर्शित करेगा।

(i) एकान्तर (Alternate)– इस प्रकार के अभिविन्यास में एकान्तर गुणसूत्र एक ही ध्रुव की ओर अभिमुख होंगे या निकटवर्ती गुणसूत्रों का अभिविन्यास विपरीत ध्रुवों पर होगा। यह आठ अंक (8) की रचना के द्वारा सम्भव होगी।

(ii) आसन्न I (Alternate I)– इस प्रकार के अभिविन्यास में असमजातीय गुणसूत्र बिन्दु (Non homologous centromeres) वाले निकटवर्ती गुणसूत्र एक ही ध्रुव की ओर विन्यस्त होंगे अर्थात् सगजातीय गुणसूत्र बिन्दु वाले गुणसूत्रों का अभिविन्यास विपरीत ध्रुवों पर होगा। इस दिशा में चार गुणसूत्रों का एक वलय दिखाई देगा।

आसन्न II (Adjacent II)– एकान्तर वियोजन होने पर क्रियाशील युग्मकों का निर्माण होता है। आसन्न I एवं आसन्न II अवस्थाओं में ऐसे युग्मक तैयार होते हैं जिनमें द्विगुणन या हीनतायें होंगी जिनके कारण ये अक्रियाशील या बन्ध्य होंगे। जिस पौधे में स्थानान्तरण विषमयुग्मजी दशा में उपस्थित होगा उसमें परागबन्ध्यता का स्तर अधिक होगा।

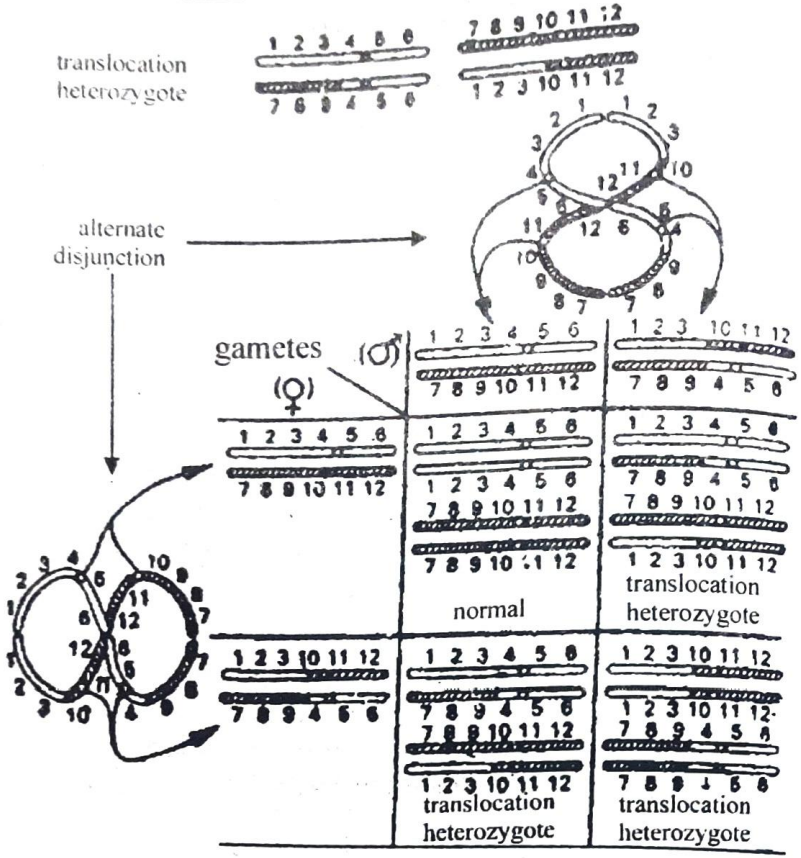
उपरोक्त चार गुणसूत्रों का वलय उन दशाओं में बनता है जब केवल एक ही विनिमय होता है। यदि तीन असमजातीय गुणसूत्रों को शामिल करते हुये दो विनिमय उत्पन्न हो जाते हैं तो नियोसिस के अन्तर्गत 6 गुणसूत्रों का वलय बन जाता है। इससे अधिक विनिमय होने पर वलय का परिमाण और भी बड़ा हो सकता है।

(iii) एक स्थानान्तरण विषमयुग्मज का जनक व्यवहार– अर्ध बन्धयता की उपस्थिति के द्वारा स्थानान्तरण विषमयुग्मजता को पहचाना जा सकता है। इस दशा में अर्धसूत्री विभाजन में चतुः संयोजक के निर्माण के द्वारा इसकी पुष्टि की जा सकती है। जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है कि एकान्तर वियोजन के कारण दो प्रकार के क्रियाशील युग्मक बनते हैं। इनसे तीन प्रकार की सन्तानें उत्पन्न होती हैं।

1. सामान्य 2. स्थानान्तरण विषमयुग्मज 3. स्थानान्तरण समयुग्मज

उपरोक्त तीनों प्रकार की सन्तानों का अनुपात 1:2:1 होता है।

आइनोथेरा में विनिमय विषमयुग्मजता– आइनोथेरा जाति की एक उपजाति युओइनोथेरा के विस्तृत अध्ययन से एक ऐसी कोशिका आनुवांशिक संरचना मिली जिसका विकास उसके विकास से संबंधित था। इस समूह में 2n=14 गुणसूत्र होते हैं और एक अगुणित समुच्चय में सभी सातों गुणसूत्र मध्य केन्द्रीय होते हैं। युओइनोथेरा उपजाति में तीन वर्ग पाये जाते हैं-



चित्र– एक एकान्तर विषमयुग्मक में स्वयं निषेचन के कारण प्राप्त विविध प्रकार की सन्तानें

(i) पहले वर्ग में वे जातियाँ शामिल हैं जिनमें अर्धसूत्री विभाजन अन्तर्गत युगलियाँ या छोटे वलय बनते हैं जैसे ओ. हुकेरी (O. Hookeri) में ओ. ग्रेण्डीफ्लोरा(O. Grandiflora) में।

(ii) दूसरे वर्ग में वे जातियाँ शामिल हैं जिनमें अर्धसूत्री विभाजन के अन्तर्गत विविध परिमाणों के वलय बनते हैं जिनकी उपस्थिति का ज्ञान होता है। ये वलय स्थायी नहीं होत अपितु अपनी अनुकुली श्रेष्ठता के कारण बने रहते हैं। जैसे- ओ. इरीगुला (*O. Irrigua*) में।

(iii) तीसरा वर्ग उन जातियों का बना होता है जिनमें स्थायी स्थानान्तरण विषमयुग्मजता पायी जाती है। इसमें सभी 14 गुणसूत्र एक नियमित वलय बना लेते हैं। जैसा कि ओ. बाइएनिस (*O. biennis*), ओ. पारवीफ्लोरा (*O. parviflora*) में।

उपरोक्त तीसरे वर्ग के पुष्प, परिमाण में एक-दूसरे से अलग होते हैं जिनकी सहायता से इन्हें पहचाना जा सकता है। तीसरे प्रकार के सदस्य शुद्ध वंशक्रमों की भाँति व्यवहार करते हैं। इन्हें स्थायी संकट (Permanent hybrid) भी कहते हैं।

प्रश्न– 14. प्रतिलोमन या इनवर्जन का वर्णन कीजिये।

अथवा [जीवाजी 2004,06,10,13,17 भोपाल 04,12]

प्रतिलोमन से क्या तात्पर्य है? संक्षिप्त में वर्णन कीजिये।

उत्तर– व्युत्क्रमण या प्रतिलोमन (Inversion)– व्युत्क्रमण या प्रतिलोमन का जन्म उस समय होता है जब एक गुणसूत्र दो स्थानों पर टूट जाता है और उसका अन्तर्वेशी या बीच का खण्ड प्रतिलोम क्रम में फिर से जुड़ जाता है। अर्थात् अन्तर्वेशी खण्ड 180° पर घूम जाता है। माना कि एक गुणसूत्र 1-2-3-4-5-6-7-8 से एक अन्य गुणसूत्र 1-2-7-6-5-4-3-8 बनता है। इस प्रकार पहले गुणसूत्र का 3-4-5-6-7 खण्ड 180° पर घूम गया है और जीनों के विन्यास या क्रम के उलट जाने से 7-6-5-4-3 हो गया है। प्रतिलोमन को दो प्रकारों में विभक्त किया गया है-

(i) पराकेन्द्रीय प्रतिलोमन (Inversion)

(ii) परिकेन्द्रीय प्रतिलोमन (Pericentric inversion)

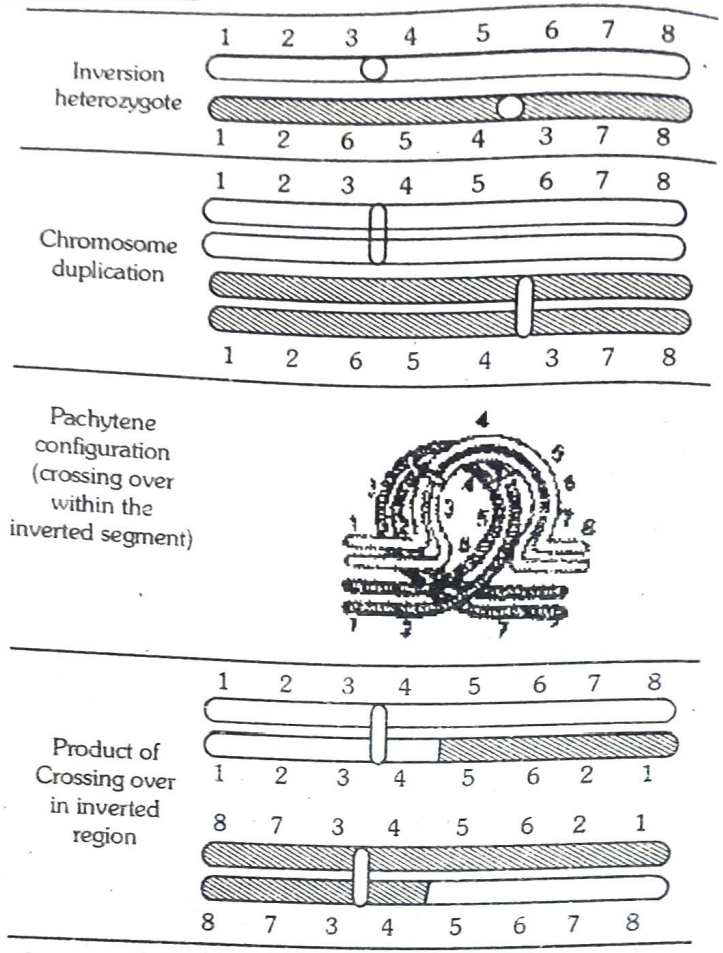
पराकेन्द्रीय प्रतिलोमन वे प्रतिलोमन होते हैं जिनमें प्रतिलोमन खण्ड में गुणसूत्र बिन्दु सम्मिलित नहीं होता जबकि परिकेन्द्रीय प्रतिलोमन में गुणसूत्र बिन्दु प्रतिलोमन खण्ड में शामिल होता है। इनमें अन्तर जानने के लिये यह उचित होगा कि परिकेन्द्री का अर्थ होता है गुणसूत्र बिन्दु के दोनों ओर से घेरते हुये तथा पराकेन्द्री का अर्थ है गुणसूत्र बिन्दु की परिधि पर किसी भी ओर समस्त प्रतिलोम खण्ड का होना।

(1) **पराकेन्द्री प्रतिलोमन (Paracentric inversion)–** प्रतिलोमित क्षेत्र में केवल एकल जीन विनिमय या एक विषम संख्या की जीन विनिमयों (Odd Crossovers) के कारण दो गुणसूत्र बिन्दुओं वाले एक द्विकेन्द्री गुणसूत्र एवं एक गुणसूत्र बिन्दु विहीन अकेन्द्री गुणसूत्र का निर्माण होगा। दो शेष रहे अर्धगुणसूत्रों में से एक सामान्य होगा और दूसरे में प्रतिलोमन पाया जावेगा।

पश्चावस्था प्रथम (Anaphase I) में द्विकेन्द्री एवं अकेन्द्री अर्धगुणसूत्र एक सेतु एवं एक टुकड़े के रूप में देखे जावेंगे। प्रतिलोमन क्षेत्र के अन्दर पाये जाने वाले द्विक जीन विनिमयों द्वारा प्रतिलोमन क्षेत्र तथा उसके बाहर वाले क्षेत्र में जीन विनिमयों की विभिन्न संस्थाओं द्वारा विविध प्रकार के विन्यास प्राप्त होंगे।

(ii) परिकेन्द्रीय प्रतिलोमन (Pericentric inversion)– एक परिकेन्द्रीय प्रतिलोमन में (जिसमें प्रतिलोमित खण्ड के अंदर ही गुणसूत्र बिन्दु उपस्थित रहता है) यद्यपि स्थूलबद्ध अवस्था पर दिखलाई देने वाला विन्यास पराकेन्द्री प्रतिलोमन के लिये ऊपर किये गये प्रतिलोमन के समान प्राप्त होता है। यद्यपि इसके जीन विनिमय उत्पाद एवं अर्धसूत्री विभाजन के बाद वाली अवस्थाओं पर पाये जाने वाले विन्यास पराकेन्द्री उत्पादों एवं विन्यासों से भिन्न होते हैं।

इस प्रसंग के अर्धसूत्री विभाजन के कारण बनने वाले चार अर्धगुणसूत्रों में से प्रत्येक अर्धगुणसूत्र में हीनतायें एवं द्विगुणन होंगे लेकिन, पराकेन्द्री प्रतिलोमन की भाँति इसमें द्विकेन्द्री सेतु तथा अकेन्द्रीय खण्ड नहीं मिलेंगे।



चित्र– एक परिकेन्द्री प्रतिलोमन विषमयुग्मज में गुणसूत्र युग्मन में जीन विनिमय के उत्पाद

उपरोक्त के अलावा परिकेन्द्री प्रतिलोमन में यदि गुणसूत्र के टूटने के दोनों स्थान गुणसूत्र बिन्दु से समान दूरी पर नहीं होते हैं तो गुणसूत्रों की आकारिकी में परिवर्तन आ जाता है। जैसे– एक मध्यकेन्द्री गुणसूत्र उपमध्यकेन्द्री गुणसूत्र में बदल जाता है या इसके विपरीत उपमध्यकेन्द्री गुणसूत्र मध्य केन्द्री गुणसूत्र में परिणित हो सकता है।

प्रतिलोमनों के आनुवांशिक परिणाम– जीन विनिमय के कारण मिलने वाले चार अर्ध गुणसूत्रों में से दो अर्धगुणसूत्रों में हीनतायें एवं द्विगुणन होंगे। जिन युग्मकों में ये गुणसूत्र होंगे वे क्रियाशील नहीं होंगे अर्थात् इनमें पर्याप्त युग्मकी या युग्मन की घातकता (Lethality) मिलेगी। पौधों में पर्याप्त पराग बंध्यता भी होगी क्योंकि एकल जीन विनिमय के उत्पाद क्रियाशील नहीं होंगे और सन्तति में केवल द्विकजीन विनिमय उत्पाद ही प्राप्त होंगे। इस कारण किन्हीं दो जीनों के बीच पुनर्योजन की मात्रा काफी सीमा तक कम हो जावेगी। इस कारण प्रतिलोमनों को प्रायः जीन विनिमय दमनकारी कहा जाता है। जीन विनिमय में यह

कमी कोशिका के जीन विनिमय में वास्तविक कमी नहीं होती अपितु इस कारण होती है कि जीन विनिमयों के उत्पाद क्रियाशील नहीं होते।

प्रश्न– 15. एन्यूप्लॉइडी को संक्षेप में समझाइये। [भोपाल 2007 जबलपुर 2013]

अथवा

एन्यूप्लॉइडी पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– एन्यूप्लॉइडी (Aneuploidy)– जब एक पूर्ण क्रोमोसोम कॉम्प्लीमेण्ट या सैट (Complete Chromosomal Complement or set) में या तो एक अथवा एक से अधिक क्रोमोसोम कम हो जाते हैं अर्थात् हाइपोप्लॉयडी (hypoploidy) हो जाती है या एक अथवा एक से अधिक क्रोमोसोम बढ़ जाते हैं, अर्थात् हाइपरप्लोइडी (hyperploidy) हो जाती है तो क्रोमोसाम की इन दशाओं को एन्यूप्लॉइडी कहते हैं।

एन्यूप्लॉइडी के अन्तर्गत हाइपोप्लाइडी मुख्यतः एक क्रोमोसोम्स की कमी अर्थात्– मोनोसोमी (Monosomy, 2n- 1) या एक जोड़ी क्रोमोसोम की कमी अर्थात् नलिसोमी (Nullisomy, 2n- 2) के कारण होती है। इसी प्रकार हाइपरप्लॉइडी में या तो एक क्रोमोसाम्स की अधिकता अर्थात्–ट्राइसोमी (Trisomy, 2n + 1) होती है या एक जोड़ी क्रोमोसोम्स की अधिकता अर्थात् टैट्रासोमी (2n + 2) होती है।

(i) मोनोसोमी (Monosomy)– मोनोसोमी में एक पूर्ण क्रोमोसोम की कमी (2n- 1) होती है, अतः इस प्रकार के क्रोमोसोमल सैट में ऐबरेशन या विपथन (Aberration) बड़ा असन्तुलन पैदा करते हैं। ये परिवर्तन प्रायः डिप्लॉयड्स (Diploids) में नहीं पाये जा सकते, परन्तु पोलीप्लॉयड्स (Polyploids) में इन्हें सुगमतापूर्वक उत्पन्न किया जा सकता है क्योंकि पोलीप्लॉयड्स में एक ही प्रकार के अनेक क्रोमोसोम्स होते है, इसलिये इस हानि को उनके द्वारा आसानी से सहन किया जा सकता है। एक जीव में सम्भावित मोनोसोमिक की संख्या हैप्लॉयड क्रोमोसोम संख्या के समान होती है। क्योंकि सामान्य गेहूँ में 21 जोड़ी क्रोमोसोम होते हैं, अतः सम्भावित मोनोसोमिक ज्ञात हैं। गेहूँ में ये 21 मोनोसोमिक ई.आर.सीयर्स द्वारा चाइनीज स्प्रिंग नामक गेहूँ जाति में उत्पन्न की गई थी।

मोनोसोमी प्रायः पोलीप्लॉयड्स में ही पाये जाते हैं और डिप्लॉयडस में ऐसे पौधे व जीव जीवित नहीं रह पाते हैं। परन्तु फिर भी टमाटर (2n = 24) तथा मक्का जैसी डिप्लॉयड फसलों में भी मोनोसोमिक उत्पन्न किये जा सकते हैं।

(ii) नलिसोमी (Nullisomy)– नलिसोमी वे जीव होते हैं, जिनमें होमोलोगस क्रोमोसोम्स के केवल एक जोड़ी का अभाव होता है। इस प्रकार उनमें क्रोमोसोम्स संख्या को (2n-2) लिखा जाता है। सीयर्स (Sears) ने गेहूँ में सभी 21 नलिसोमिर्कस को प्राप्त किया है।

(iii) ट्राइसोमी (Trisomy)– ट्राइसोमी वे जीव हैं, जिनमें एक क्रोमोसोम अधिक (2n + 1) होता है। क्योंकि ये अतिरिक्त क्रोमोसोम एक हेप्लॉयड सेट के विभिन्न क्रोमोसोम्स में से कोई एक हो सकता है, इसलिये संभावित ट्राइसोमिकस की संख्या हैप्लॉयड संख्या के समान होगी। उदाहरण– जौ में हैप्लॉयड क्रोमोसोम संख्या N = 7 होती है, अतः इसमें सात ट्राइसोमिक संभव हैं। होमोसैपिएन्स (Homo sapiens) अर्थात् मनुष्य में ट्राइसोमिक पाये

जाते हैं। मनुष्यों में विशेष क्रोमोसोम की ट्राइसोमी कुछ निश्चित आकारिकी असामान्यतायें पैदा कर देती है। उदाहरण– मानसिक मंदता, छोटा शरीर, फूली हुई जीभ।

(iv) टेट्रासोमी (Tetrasomy)– टेट्रासोमी वे जीव हैं, जिनमें एक विशेष क्रोमोसोम चार बार पाया जाता है इसलिये इनके लिये सामान्य क्रोमोसोम संख्या को 2n + 2 सूत्र से निरूपित करते हैं। गेहूँ में सभी 21 सम्भव टेट्रासोमिक उपलब्ध हैं।

प्रश्न–16. बहुगुणिता क्या है? इसके प्रकार, कारण तथा प्रभावों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। [भोपाल 2008,13 जबलपुर 16]

अथवा

बहुगुणिता पर निबंध लिखिये। [जीवाजी 2007,12 सागर 2007]

उत्तर– किसी जाति में क्रोमोसोम्स की वह संख्या जो उसका मूल सेट होता है, हैप्लॉयड (Haploid) या जीनोम (Genome) कहलाती है। जब दो हैप्लॉइड गैमीटस आपस में संयुजन (fusion) करते हैं तब डिप्लॉयड जाइगोट बनता है। इसमें क्रोमोसोम्स के दो सेट्स होते हैं। जब किसी जीव में सामान्य क्रोमोसोम्स के दो सेट्स से अधिक सेटस पाये जाते हैं तो ऐसे जीवों को पॉलिप्लॉइड्स (Polyploides) कहते हैं और इस क्रिया को पॉलिप्लॉइडी कहते हैं।

क्रोमोसोम्स के तीन सेट वाले जीवों को ट्रिप्लॉइड्स (Triploids) चार सेट वाले जीवों को टेट्राप्लॉइड्स (Tetraploids) कहते हैं।

उदाहरण– ब्राइन श्रिम्प (Brine shrimp)

प्लॉइडी के प्रकार (Kinds of Ploidy)– प्रकृति में जाति विशेष के जीवों के मध्य विशेष रूप से पौधों में क्रोमोसोम की संख्या में विविधता या प्लॉइडी सामान्य रूप से पायी जाती है। यह निम्न प्रकार की होती है–

1. **असमगुणित अथवा विषम बहुगुणित (Aneuploidy or Heteroploidy)**– जब एक पूर्ण क्रोमोसोम सेट में या तो एक अथवा एक से अधिक क्रोमोसोम कम हो जाते हैं, तो हाइपोपलॉइडी (Hypoploidy) या एक अथवा एक से अधिक क्रोमोसोम बढ़ जाते हैं, तो हाइपरप्लॉइडी (Hyperploidy), क्रोमोसोम की इन दशाओं को, एन्यूप्लॉइडी कहा जाता है। इसे निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(i) मोनोसोमी (Monosomy)– इसमें एक पूर्ण क्रोमोसोम की कमी (2n–1) होती है, अतः इस प्रकार के क्रोमोसोम सेट में विपथन (aberration) बड़ा असंतुलन पैदा करते हैं। ये परिवर्तन प्रायः डिप्लॉइडस (diploids) में नहीं पाये जा सकते, लेकिन पॉलिप्लॉइड्स में इन्हें सुगमतापूर्वक उत्पन्न किया जा सकता है। इसे निम्न दो श्रेणियों में बाँटा गया है–

(a) एकल मोनोसोमिक (Single monosomic)– इसमें गुणसूत्रों के समस्त समूहों में से किसी एक समूह के एक गुणसूत्र की कमी हो जाती है जैसे– (2n–1)

(b) डिमोनोसोमिक (Double monosomic)– जब गुणसूत्रों के सभी समूहों में से दो समूह के एक–एक गुणसूत्र की कमी हो जाती है तब यह अवस्था बनती है, जिसमें क्रोमोसोम 2n–1–1 होते हैं।

(ii) नलिसोमी (Nullisomy)– इस अवस्था में होमोलोगस क्रोमोसोम्स (Homologous chromosomes) के एक जोड़ी का अभाव होता है। इनमें क्रोमोसोम की संख्या (2n–2) होती है।

(iii) पॉलिसोमी (Polysomy)– डिप्लॉइड पौधे जिनके समस्त गुणसूत्र के समूह में एक या दो समूह के गुणसूत्रों का पुनः उत्पादन होता है, जैसे 2n + 1, 2n + 1 + 1, 2n + 2], 2n + 2 + 2 इत्यादि। यह ट्राइसोमिक (2n+1 एवं 2n+1+1) या टेट्रासोमिक (2n+2 एवं 2n+2+2) प्रकार के होते हैं।

2. **बहुगुणिता (Polyploidy)**– जब किसी जीवधारी में सामान्य क्रोमोसोम्स के दो सेट्स से अधिक सेट्स पाये जाते हैं, तो ऐसे जीव को पॉलिप्लॉइड (Polyploid) कहते हैं और यह क्रिया पॉलिप्लॉइडी कहलाती है।

बहुगुणिता के प्रकार (Types of Polyploids)– यह दो प्रकार की होती है–

(i) स्व बहुगुणिता (Autopolyploidy)– इस प्रकार के पॉलिप्लॉइडस में क्रोमोसोम्स के मूल सेट का गुणन होता है। जैसे– ऑटोट्रिप्लॉइड में तीन समान जीनोम (AAA) होगा।

(ii) पर बहुगुणिता (Allopolyploidy)– दो भिन्न जातियों से उत्पन्न F_1 संतति (हाइब्रिड्स) के क्रोमोसोम्स में द्विगुणन (duplication) के फलस्वरूप पर बहुगुणिता होती है।

बहुगुणिता के कारण (Causes of Polyploidy)– यह निम्न दो कारणों से होती है–

(i) मियोटिक डिवीजन में असमानतायें।

(ii) माइटोटिक डिवीजन में असमानतायें।

(iii) घावों का बनना।

बहुगुणिता के प्रभाव (Effects of Polyploidy)– बहुगुणिता के कारण जीवधारियों के आकार, रंग, रूप, बनावट तथा कार्यिकी में अनेक परिवर्तन दिखायी देने लगते हैं।

1. आकारिकी परिवर्तन (Morphological Changes)–

(i) पौधे के तने लम्बे और मोटे हो जाते हैं, पत्तियों का रंग गहरा हो जाता है।

(ii) पुष्प आकार में बड़े व संख्या में कम हो जाते हैं।

(iii) फलों एवं बीजों का आकार बड़ा हो जाता है।

2. कार्यिकी परिवर्तन (Physiological Changes)–

(i) पौधों की वृद्धि रूक जाती है।

(ii) पुष्प देर से खिलते हैं। फल भी देर से लगता है।

(iii) पौधों में गुणसूत्रों की संख्या दुगुनी हो जाने के कारण उनमें बीज उत्पन्न करने की अधिक क्षमता आ जाती है।

3. रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes)–

(i) भूमिगत जड़ों में शर्करा की मात्रा फलों में विटामिन्स की मात्रा और तम्बाकू के पौधों में निकोटिन की मात्रा बढ़ जाती है।

(ii) पॉलिप्लॉइडी पौधों में नाइट्रोजन का प्रतिशत बढ़ जाता है।

4. आनुवंशिकी परिवर्तन (Genetical Changes)– पॉलिप्लॉइड्स में जिसके कारण जीन्स की संख्या में भी परिवर्तन हो जाता है। पौधों में विभिन्नतायें दिखायी देने लगती हैं।

बहुगुणिता का कृषि–क्षेत्र में योगदान– आधुनिक युग में विभिन्न जातियों के पौधों में संकरण कराकर अच्छी किस्म की फसलें तैयार की जाती हैं। इसमें प्राप्त जातियाँ बन्ध्य (sterile) होती हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस दोष को दूर करते हुये अनेक विधियों द्वारा पॉलिप्लॉइड पौधे प्राप्त किये हैं। इससे नई प्रजातियाँ प्राप्त हुई हैं और कृषि के क्षेत्र में नई क्रान्ति आई है।

बहुगुणिता का प्रेरण (Induction of Polyploidy)– प्रायः अर्द्धसूत्री कोशिका विभाजन के समय कुछ विपथन आ जाने से बहुगुणिता (Polyploidy) उत्पन्न हो जाती है। चूँकि यह प्रक्रम अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इसलिये इसे आजकल कृत्रिम रूप से तैयार किया जाने लगा है। बहुगुणिता के प्रेरण की कुछ विधियाँ निम्न हैं–

1. वर्धी एवं पुष्प कलिकाओं पर x– किरणों द्वारा विकिरण (radiation) के द्वारा।
2. युग्मनज (Zygote) के प्रथम विभाजन के समय पुष्पों को उच्च व निम्न ताप पर रखने के द्वारा।
3. कुछ रासायनिक पदार्थ जैसे कोल्चिसीन (Colchicine) क्लोरोफॉर्म, ऐल्कोहॉल, निकोटीन सल्फेट NAA, IAN जिबरेलिक एसिड आदि के प्रभाव के द्वारा।
4. कैलस बनने (Callus formation) के द्वारा।
5. अन्तरजातीय एवं अन्तरवंशीय (Interspecific and Intergenic) संकरण के द्वारा।

रासायनिक पदार्थ कोल्चिसीन कोल्चिकम नामक लिलियेसी कुल के पौधे से प्राप्त होता है। इसका प्रयोग विभाजन करने वाली कोशिकाओं पर किया जाता है, जिससे सूत्री विभाजन में परिवर्तन आ जाता है। इसके प्रभाव से फूल तथा पत्तियाँ भी बड़ी हो जाती हैं।

बहुगुणिता के कारण परिवर्तन (Changes due to polyploidy)– गुणसूत्र के दोहरीकरण के कारण जन्तु की प्रकृति एवं विकास पर इसका उल्लेखनीय प्रभाव दृष्टिगत होता है व जन्तु में आकारिकी, कार्यिकी व आनुवंशिकीय परिवर्तन आ जाते हैं।

प्रश्न–17. उत्परिवर्तन क्या है? विभिन्न प्रकार के उत्परिवर्तनों का वर्णन कीजिये।

[भोपाल 2006,10 सागर 2007,10,13,17 जीवाजी 16]

अथवा

उत्परिवर्तन के कारण तथा जैव–विकास में इनकी भूमिका समझाइये। [सागर 2008,12]

उत्तर– उत्परिवर्तन (Mutation)– मॉरगन के अनुसार– 'अचानक ही जीवों में प्रकट होने वाले परिवर्तन या असंगत विभिन्नतायें हैं जो जीवों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में वंशागत होती हैं। ये वास्तव में किसी जीन में अचानक परिवर्तन होने के कारण उत्पन्न होते हैं। म्यूटेशन के पश्चात् ऐसी जीन नवीन संरचना उपार्जित कर लेती हैं जिससे जीव में नये लक्षणों का विकास होता है जो आगे गैमीट्स के द्वारा वंशागत होते रहते हैं।'

ह्यूगो डी–ब्रीज के अनुसार– जातियों का विकास उनमें विकसित हुई अकस्मात विभिन्नताओं के कारण होता है। इन विभिन्नताओं को उत्परिवर्तन या म्यूटेशन (Mutation) कहते हैं। **डी–ब्रीज** के अनुसार उत्परिवर्तन हो सकते हैं तथा ये उपयोगी व अनुपयोगी दोनों प्रकार के होते हैं। डी–ब्रीज का उत्परिवर्तन का सिद्धान्त बड़े परिवर्तन या असंतत

विभिन्नताओं पर आधारित है। उत्परिवर्तन की एक विशेषता यह है कि उनके उत्पन्न होने के पश्चात् इनकी वंशागति मेंडल के नियमों के द्वारा होती है।

उत्परिवर्तन की आधुनिक संकल्पना के निम्नलिखित बिन्दु इस प्रकार हैं–

1. उत्परिवर्तन जीन अथवा गुणसूत्रों की संरचना में होने वाले परिवर्तन हैं।
2. केवल अपनी पीढ़ी में जा सकने वाले उत्परिवर्तन का ही आनुवांशिक दृष्टि से महत्व है इन्हें जर्मिनल म्यूटेशन कहते हैं। यह केवल व्यस्क जीव के लैंगिक अंगों की कोशिकाओं में ही होते हैं।
3. ये अप्रभावी तथा प्रभावी किसी भी प्रकार के हो सकते हैं।
4. यह घातक भी हो सकते हैं तथा लाभकारी भी।
5. जीव की आवश्यकता से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता।
6. यह अकस्मात् एवं स्वतः विकसित होते हैं।

उत्परिवर्तनों का वर्गीकरण– उत्परिवर्तनों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधारों के अनुसार किया जा सकता है–

(1) उत्परिवर्तनों के परिमाण एवं मात्रा के आधार पर।

(2) उत्परिवर्तनों की उत्पत्ति के आधार पर।

(3) उत्परिवर्तनों के दृश्य–रूपी प्रभाव के आधार पर।

(1) परिमाण एवं मात्रा के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार– परिमाण एवं मात्रा के आधार पर निम्न प्रकार के उत्परिवर्तन पाये जाते हैं–

(1) जीन या बिन्दु उत्परिवर्तन– जीन्स DNA के बने होते हैं जिसकी संरचना अत्यन्त जटिल होती है। जीन उत्परिवर्तन DNA की रासायनिक संरचना में परिवर्तनों या जीन में कुछ अन्य परिवर्तनों के कारण होते हैं। इन परिवर्तनों की वंशागति होती है। ये एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में जाते हैं। इस प्रकार के परिवर्तित जीन उत्परिवर्तित जीन (Mutant genes) कहलाते हैं। जीन या बिन्दु उत्परिवर्तन DNA में न्यूक्लियोटाइड्स के विन्यास में निम्न परिवर्तन के कारण हो सकते हैं–

(i) न्यूनता उत्परिवर्तन (Deletion Mutations)– ये उत्परिवर्तन किसी सिस्ट्रॉन या जीन के एक ट्रिपलेट कोडोन (Triplet Codon) के किसी भाग में न्यूनता अथवा उसके विलुप्त हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन बैक्टीरियोफेज (Bacterio phages) में प्रचुरता से पाये जाते हैं।

(ii) निवेशी उत्परिवर्तन (Insertions or addition mutations)– ये उत्परिवर्तन किसी सिस्ट्रॉन अथवा जीन में एक या अधिक न्यूक्लियोटाइड्स के निवेश के कारण उत्पन्न होते हैं।

उपरोक्त दोनों प्रकार के उत्परिवर्तनों के कारण उत्परिवर्तन के स्थान के बाद के संदेश की कूटभाषा (Code words) परिवर्तित हो जाती है। इन उत्परिवर्तनो के कारण अक्रिय प्रोटीन्स निर्मित हो सकती है तथा अन्ततः कोशिका की मृत्यु भी हो सकती है।

उपर्युक्त दोनों घटनाओं से जीन में उपस्थित आगे के सभी कोडॉन्स का अर्थ बदल जाता है अतः इन्हें फ्रेम शिफ्ट म्यूटेशन कहा जाता है।

1. Normal Sequence ..... C (GT CGT CGT CGT CG....
2. Deletion of T from No. 2 CGT CGC GTC GTC G.....
3. Insertion of T at No codon... CGT TCG TCG TCG TCG.....

(iii) प्रतिस्थापन उत्परिवर्तन (Substitution Mutations)– इस प्रकार के उत्परिवर्तन तब उत्पन्न होते हैं जब किसी ट्रिपलेट की एक न्यूक्लियोटाइड किसी अन्य न्यूक्लियोआइड के द्वारा प्रतिस्थापित हो जाती है। अतः ये उत्परिवर्तन केवल किसी ट्रिपलेट कोडोन विशेष को प्रभावित करते हैं। इनके कारण, किसी जीवधारी के दृश्य-रूप (Phenotype) में अनेक विविधतायें उत्पन्न हो जाती हैं।

प्रोटीन संश्लेषण में जेनेटिक कोड के अनुसार तीन न्यूक्लियोटाइड्स का बना एक ट्रिपलेट कोडॉन प्रोटीन श्रृंखला में एक अमीनो–अम्ल की स्थिति निर्धारण करता है। म्यूटेशन की वजह इन कोडॉनों के अर्थ बदल जाने के कारण प्रोटीन श्रृंखला में अमीनों–अम्लों के क्रम भी बदल जाते हैं, अतः ये नये प्रकार के प्रोटीन हानिकारक होकर अपना कार्य नहीं कर सकते। जैसे सिकल सेल एनीमिया रोग में प्रोटीन हीमोग्लोबिन म्यूटेशन के कारण असामान्य बनता है तथा ऑक्सीजन का वहन ठीक से नहीं कर पाता है।

इस रोग का मुख्य कारण R.B.Cs. के हीमोग्लोबिन में अमीनो–अम्ल के विन्यास में अन्तर है। हीमोग्लोबिन एक प्रोटीन है, जिसमें अमीनो–अम्लों के लगभग 600 अणु होते हैं, जो चार पॉलिपेप्टाइड चैनों में विन्यासित होते हैं। इनमें से दो α– चेन तथा दो β– चैन कहलाती है। सामान्य हीमोग्लोबिन Hb– A में β पॉलिपेप्टाइड चैन का छठवां अमीनो–अम्ल अणु ग्लूटेमिक अम्ल होता है, जबकि असामान्य हीमोग्लोबिन Hb–S छठवां अमीनो–अम्ल वेलिन होता है।

Hb– A (सामान्य हीमोग्लोबिन)	Hb– S (असामान्य हीमोग्लोबिन)
Valine	Valine
Histidine	Histidine
Leucine	Leucine
Theronine	Theronine
Proline	Proline
Glutamic acid	Valine
Glutamicacid	Glutanic acid
Lycine	Lycine

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हीमोग्लोबिन के 600 अमीनों–अम्लों के अणुओं में से केवल एक अमीनो–अम्ल के परिवर्तन से हीमोग्लोबिन के गुणों में परिवर्तन हो जाता है। यह

परिवर्तन β– पॉलिपेप्टाइड चैन के एक छठवें अम्ल का कूटीकरण (Coding) करने वाले छठवें ट्रिप्लेट के नाइट्रोजन बेस में परिवर्तन के कारण होता है।

(2) **गुणसूत्री उत्परिवर्तन या गुणसूत्री विपथन (Chromosomal mutations or aberrations)**– गुणसूत्रों में होने वाले परिवर्तनों को गुणसूत्री परिवर्तन या ग्रॉस उत्परिवर्तन (Gross mutations) या गुणसूत्री उत्परिवर्तन (Chromosomal mutations) कहते हैं। ये दो प्रकार के हो सकते हैं–

(a) गुणसूत्रों की संख्या में होने वाले परिवर्तन।

(b) गुणसूत्रों की रचना में होने वाले परिवर्तन।

गुणसूत्रों की संख्या में होने वाले परिवर्तन पौधों में सामान्य रूप से पाये जाते हैं, लेकिन जन्तुओं में बहुत दुर्लभ होते हैं। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) ट्राइसोमी (Trisomy) मोनोसोमी तथा नलीसोमी (Nullisomy)

(ii) हेप्लॉयडी (Haploidy) (iii) ट्राइप्लॉयडी (Triploidy)

(iv) टेट्राप्लॉयडी (Tetraploidy) (v) पॉलीप्लॉयडी (Polyploidy)

त्रिसमसूत्री (Trisomic forms) में एक या अधिक अतिरिक्त गुणसूत्र पाये जाते हैं। ये अर्द्धसूत्री विभाजन (Meiosis) में अवियोजन (Non-disiunction) के द्वारा उत्पन्न होते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण ऑइनोथेरा एलेटा (Oenothera elata) है जिसमें 15 गुणसूत्र पाये जाते हैं, जबकि जनन पौधे ऑइनोथेरा लेमार्कियाना (Oenothera T lamarkiana) में 14 होते हैं। त्रिगुणित अवस्था में गुणसूत्रों की संख्या सामान्य (2n) की अपेक्षा तीन गुनी (3n) हो जाती हैं। इनका निर्माण द्विगुणित अण्ड (Diploid egg) तथा अगुणित शुक्राणु (Haploid sperm) के आपस में मिलने से होता है।

चतुर्गुणित (Tetraploid) दशा (4n) एक द्विगुणित शुक्राणु द्वारा द्विगुणित अण्ड के निषेचन से विकसित होती है। अन्य बहुगुणित दशाओं में गुणसूत्रों की संख्या काफी अधिक हो सकती है। जैसे– रयूमरटेक्स (Rumertex) में दस गुनी अर्थात् 10n।

गुणसूत्रों की संरचना में परिवर्तन उनमें उपस्थित जीन्स के विन्यास में परिवर्तनों के कारण होती हैं, ये नीचे लिखे प्रकार के होते हैं–

(i) **न्यूनता (Deficiency or deletion)**– गुणसूत्र के किसी छोटे भाग के अलग हो जाने व बाद में नष्ट हो जाने के कारण न्यूनता पैदा होती हैं।

(ii) **द्विरावृत्ति (Duplication)**– इस क्रिया में न्यूनता के विपरीत गुणसूत्र में एक और अतिरिक्त गुणसूत्र का भाग संलग्न हो जाता है जिसके फलस्वरूप एक गुणसूत्र में इन जीन्स का अभाव हो जाता है तथा दूसरे में इनकी पुनरावृत्ति हो जाती है।

(iii) **स्थानान्तरण (Translocation)**– कभी–कभी किसी गुणसूत्र का एक भाग अलग होकर दूसरे गुणसूत्र में जुड़ जाता है। इस प्रकार से दो गुणसूत्रों में एक–दूसरे से उनके भागों में आदान–प्रदान हो जाता है।

(iv) **प्रतिलोमीकरण (Inversion)**– इनमें गुणसूत्रों पर स्थित जीनों की संख्या नहीं बदलती, लेकिन गुणसूत्र का कोई एक भाग पूर्णतया विलोम हो जाता है जिसके कारण गुणसूत्र पर स्थित जीनों का क्रम बदल जाता है।

इस प्रकार गुणसूत्र में जीनों के विन्यास में परिवर्तन नई जातियों के बनने में मुख्य भूमिका निभाता है।

उत्पत्ति के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार– उत्पत्ति के आधार पर दो प्रकार के उत्परिवर्तन पाये जाते हैं–

(1) **स्वतः उत्परिवर्तन (Spontaneous Mutations)**– ये उत्परिवर्तन अनेक प्राकृतिक स्थितियों जैसे विभिन्न प्रकार के विकिरणों (Radiations), विद्युत धाराओं (Electric currents), तापक्रम में आकस्मिक परिवर्तन आदि कारकों के प्रभाव के कारण स्वतः उत्पन्न होते हैं। स्वतः उत्परिवर्तन अपेक्षाकृत बहुत कम मिलते हैं तथा यदाकदा ही उत्पन्न होते हैं। ये पादप प्रजनन के लिये उपयोगी नहीं होते हैं।

(2) **प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced Mutations)**– कुछ विशेष परिस्थितियों तथा रसायनों के द्वारा जो उत्परिवर्तन कृत्रिम रूप से उत्पन्न किये जा सकते हैं, उन्हें प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced mutation) कहा जाता है। उत्परिवर्तनों को प्रेरित करने वाले एक कारक उत्परिवर्तन जनक (Mutagenic) कहलाता है। प्रेरित उत्परिवर्तनों के कारकों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(a) उत्परिवर्तन जनक रसायन (Mutagenic Chemicals)– प्रेरित उत्परिवर्तनों के अध्ययन **आवेर बैक** (Aver bach,1947) की खोज से आरंभ हुआ। इसके अध्ययन के अनुसार मस्टर्ड गैस तथा इसके समान अन्य यौगिक उत्परिवर्तन (Mutation) तथा गुणसूत्रीय विपणन (Chromosomal aberration) उत्पन्न कर सकते हैं। इन रासायनिक–पदार्थों द्वारा उत्पादित प्रभाव विकिरण उत्पादित प्रभावों के समान ही होते हैं, अतः ये रेडियोमिमेटिक कारक (Radiomimetic agents) कहलाते हैं तथा इस क्रिया को रेडियोमिमेसिस (Radiomimesis) कहा जाता है। उत्परिवर्तन जनक रसायन निम्न प्रकार हैं–

(i) मस्टर्ड गैस तथा इससे सम्बन्धित यौगिक (Mustard gas and its related compounds)–

(1) मस्टर्ड गैस (2) नाइट्रोजन मस्टर्ड

(3) गन्धक मस्टर्ड– ये प्रबल उत्परिवर्तन जनक हैं।

(ii) ऐलकाइलेटिंग कारक (Alkylating agents)–

(1) एथिलिन ऑक्साइड।

(2) एन–ब्यूटाइल मिथेन सल्फोनेट, 3.1 : 2 : 3 : 4 डाइएपॉक्सी ब्यूटेन।

(iii) प्यूरीन तथा प्यूरीन व्युत्पन्न कारक (Purines and Purine derivative agents)–

(1) कैफीन, (2) थियोफाइलीन, (3) पैराजेन्थीन, (4) थियोब्रोमीन

(iv) अन्य पदार्थ (Other Substances)– 1. कोल्चिसिन 2. इथाइल कार्बामेट 3. पोटैशियम थायोसाइनेट 4. फॉर्मेलीन 5. फिनॉल।

(b) विकिरण (Radiations)– गामा किरणें, एक्स किरणें तथा अल्ट्रावायलेट किरणें, ऊर्जा तरंगें होती हैं तथा ये कण रहित (non-particulate) होती है, जबकि अन्य कणयुक्त होती हैं।

जब जैविक पदार्थ को उपरोक्त कथित विकिरणों में रखा जाता है तो उनके इलेक्ट्रॉन उत्तेजित होकर उच्च ऊर्जिक स्तर पर पहुँच जाते हैं तथा जिन परमाणुओं के वे अंग होते है उनसे अलग हो जाते हैं। यह प्राथमिक आयनीकरण है। इसके पश्चात् बाहर निकले हुये इलेक्ट्रॉन अन्य परमाणुओं से इलेक्ट्रॉन निकालते हैं। इस प्रकार यह क्रिया लगातार चलती रहती है। यह क्रिया द्वितीयक आयनीकरण (Secondary ionization) कहलाती है। इस प्रकार जीव के आण्विक संगठन में परिवर्तन शुरू हो जाता है।

विकिरण की विभेदन शक्ति जितनी अधिक होती है उतनी ही आयनीकरण की शक्ति क्षीण होती है। इस प्रकार गामा किरणें, एक्स किरणें, तथा अल्फा किरणों के आयनीकरण के क्रमिक उच्च घनत्व होते हैं परन्तु विभेदन क्रमशः कम होता है।

दृश्यरूपी प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तनों के प्रकार (Kinds of mutations According to Phenotypic effects)– म्यूटेशन जीवधारियों के जीवनकाल को प्रभावित करते हैं। ये लाभदायक और हानिकारक दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। सभी उत्परिवर्तन जीवों में दृश्यरूपी परिवर्तन उत्पन्न नहीं कर सकते हैं। कुछ शरीर क्रियात्मक उत्परिवर्तन होते हैं जिनका प्रभाव जीवधारी के अंगों के कार्य पर होता है। दृश्यरूपी प्रभाव के आधार पर उत्परिवर्तन इसप्रकार के होते हैं–

(i) **प्रभावी दृष्टिगत उत्परिवर्तन**– ये म्यूटेशन प्रभावी होते हैं तथा विषमयुग्मजी एवं समयुग्मजी दोनों ही अवस्थाओं में अपना प्रभाव प्रकट कर सकते हैं। इनको पहचानना सरल होता है। ये अप्रभावी दृष्टिगत म्यूटेशन की अपेक्षा कम संख्या में पाये जाते हैं।

(ii) **माध्यमिक दृष्टिगत उत्परिवर्तन**– ये अपना प्रभाव विषमयुग्मजी अवस्था में उत्पन्न करते हैं। इनमें से अनेक उत्परिवर्ती जीनों का प्रभाव बहुत कम होता है। अतः इन्हें माध्यमिक उत्परिवर्तन कहना तर्कसंगत नहीं है। जेन्थोमेटोसिस (Xanthometosis) बीमारी उत्पन्न करने वाले जीन समयुग्मजी (Homozygous) अवस्था में ही बीमारी उत्पन्न कर सकता है। अतः इसे अप्रभावी जीन माना जाता था। लेकिन यह देखा गया है कि इस जीन के विषमयुग्मजी अवस्था में होने पर हाइपरकोलेस्ट्रोलेमिया (Hyper-cholestrolemia) नामक बीमारी उत्पन्न होती है। अतः ये जीन अपूर्ण प्रभावी कहलाते हैं।

(iii) **लिंग सहलग्न दृष्टिगत उत्परिवर्तन**– हैटरोगैमीटिक लिंग में अर्थात् नर में इन उत्परिवर्ती जीवों को सुगमतापूर्वक पहचाना जा सकता है, क्योंकि नर जन्तुओं में X– गुणसूत्र में होने वाला जीनिक परिवर्तन (Genic modification) भी अपने को प्रदर्शित कर सकता है।

(iv) **आटोसोमल अप्रभावी दृष्टिगत उत्परिवर्तन**– इस प्रकार के उत्परिवर्तन को ज्ञात करना कठिन होता है। ये केवल समयुग्मजी जीनों में ही अपने को प्रदर्शित करते हैं। विषमयुग्मजी में प्रभावी जीनों की उपस्थिति के कारण इनका प्रभाव लुप्त हो

जाता है। इस प्रकार के उत्परिवर्तनों को उभयलिंगी जीवों में सरलता से पहचाना जा सकता है।

(v) **घातक उत्परिवर्तन–** इस उत्परिवर्तन को पहचानना काफी कठिन होता है। ये घातक म्यूटेशन विषमयुग्मज जीवों में ही पाये एवं देखे जा सकते हैं। अधिकतर, ये अप्रभावी होते हैं अन्यथा इनका प्रभाव अलग–अलग होता है। ये उत्परिवर्तन प्राणघातक हो सकते हैं।

(vi) **हानिकारक उत्परिवर्तन–** ये उत्परिवर्तन सबसे अधिक पाये जाते हैं लेकिन इनको पहचानना कठिन होता है। ये भी अधिकतर अप्रभावी होते हैं। इनके प्रभावी X-गुणसूत्र में उपस्थिति के प्रभाव से 20% जीवों की मृत्यु हो सकती है। इस उत्परिवर्तन का मादा के विषमयुग्मजी होने से कोई प्रभाव नहीं होता, किन्तु समस्त नर जन्तुओं में यदि यह जीन उपस्थित होता है तो उनमें से 20% की मृत्यु होना संभव है। इस म्यूटेशन का पता एक या दो जीवों को देखकर लगाना संभव नहीं है। अपितु बहुत से जीवों के समूह पर बार–बार प्रयोग करने के बाद ही ज्ञात किया जा सकता है। जैव विकास के लिये उत्परिवर्तन अत्यन्त महत्वपूर्ण है तथापि अधिकांश उत्परिवर्तन अप्रभावी तथा हानिकारक होते हैं। मनुष्यों में पाये जाने वाले जीन उत्परिवर्तन जैसे– हीमोफीलिया, एल्केप्टोन्यूरिया, डाइबिटीज, वर्णहीनता एनिरिडिया आदि हानिकारक तथा अप्रभावी हैं।

(vii) **दैहिक उत्परिवर्तन–** ये उत्परिवर्तन शरीर के किसी भाग में विकसित हो सकते हैं और केवल उसी भाग में परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। ये जीव की मृत्यु के साथ समाप्त हो जाते हैं और ये वंशागत नहीं होते हैं।

(viii) **प्रतिवर्त्य उत्परिवर्तन–** इन उत्परिवर्तनों की क्रिया प्रतिवर्ती होती है। अगर A जीन उत्परिवर्तन के पश्चात् a में परिवर्तित हो जाये तो a पुनः A में भी परिवर्तित हो सकता है।

उत्परिवर्तनों के कारण– उत्परिवर्तनों के अनेक कारण हो सकते हैं। गुणसूत्री उत्परिवर्तनों में जोकि गुणसूत्रों की संख्या में परिवर्तन होने से बनते हैं। ये परिवर्तन उत्परिवर्तन के कार्यिकी अन्तरों के कारण होते हैं। इस प्रकार के उत्परिवर्तन वातावरण के कारण भी हो सकते हैं। जैसे कि जनन कोशिका चक्र (Germ cell cycle) के क्रान्तिक काल (Critical period) में तापमान का अचानक कम हो जाना। ऐसा विश्वास है कि गुणसूत्री उत्परिवर्तन पूर्णरूप से आन्तरिक कारणों से होते हैं जैसे कि अवियोजन में समजात गुणसूत्रों के बीच आकर्षण की दुर्बलता के कारण सूत्रयुग्मक का असफल हो जाना।

बीडल (Beadle) एवं **टेटम** (Tatum) ने सन् 1940 में पता लगाया कि रासायनिक और भौतिक बल भी उत्परिवर्तनों को प्रेरित कर सकते हैं। कुछ पौधों पर कॉल्चिसिन नामक रासायनिक पदार्थ का उपयोग करने से इन पौधों से बहुगुणित पौधे उत्पन्न होते हैं। कुछ रासायनिक पदार्थ, जैसे– मेनगेनस, फेरस यौगिक, सल्फर तथा नाइट्रोजन मस्टर्ड आदि जो उत्परिवर्तन को बढ़ावा देते हैं, वे उत्परिवर्तन जनक (mutagenic) कहलाते हैं।

गुयर और **स्मिथ** (Guyer and Smith, 1918-1924) ने अनेक प्रयोगों के बाद बताया कि प्रतिरक्षी पदार्थ भी उत्परिवर्तन को प्रेरित करने की क्षमता रखती है। मुलर (Muller) ने बताया कि उत्परिवर्तन अकस्मात् हो जाते हैं तथा उत्परिवर्तन प्राकृतिक विघटनाभिकता द्वारा भी हो सकती है।

जैव–विकास में उत्परिवर्तन की भूमिका– डी–व्रीज के उत्परिवर्तन के सिद्धान्त का जैव–विकास में महत्व निम्न प्रकार से प्रदर्शित किया जा सकता है–

(1) इस सिद्धान्त के अनुसार विकासशील परिवर्तन अल्प समय में पैदा होते हैं।
(2) अपसारी उत्परिवर्तन के संकरण के द्वारा जातियाँ नष्ट नहीं हो सकती हैं।
(3) इस मत के अनुसार अंगों के विकास के दौरान इनकी प्रारंभिक अवस्था को समझाया जा सकता है, क्योंकि शुरू से ही उत्परिवर्तन पूर्ण रूप से बनते हैं।
(4) जन्तुओं का वर्णात्मक मूल्यांकन करने के लिये उत्परिवर्तन काफी महत्वपूर्ण होते हैं।
(5) विकास को समझाने के लिये संयोजी बंध कोई मापदण्ड नहीं है लेकिन इसके अस्तित्व की संभावना को उत्परिवर्तन के सिद्धान्त के द्वारा समझाया जा सकता है।
(6) उत्परिवर्तन का सिद्धान्त यह दर्शाता है कि महत्वहीन अंगों में अन्तर ही संबंधित जातियों का मुख्य अन्तर है।

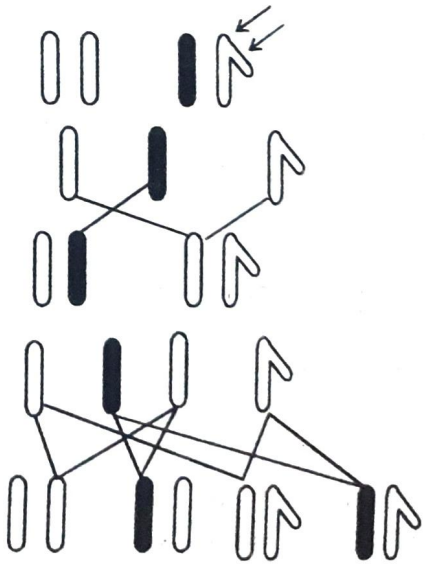
प्रश्न–18. उत्परिवर्तन की मूलर–5 विधि (Muller-5 Method) का वर्णन कीजिये।

[भोपाल 2001,10 इन्दौर 2004,13]

अथवा

उत्परिवर्तन की मूलर–5 विधि पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2008,12]

उत्तर– मूलर–5 विधि (**Muller- 5 method**)– इस विधि का उपयोग मूलर ने ड्रोसोफिला में उत्परिवर्तन के संसूचन या निर्धारण के लिये किया था।



चित्र– मूलर– 5 विधि

मूलर के द्वारा इस प्रयोग में लाये गये ड्रोसोफिला (मादा) को मूलर–5 के नाम से जाना जाता है। इन मादा मक्खियों में दो लक्षणों के जीन्स पाये जाते हैं– (i) प्रभावी बार आँखों वाले जीन (Dominant barred eye) तथा (ii) अप्रभावी एप्रीकाट आँखों वाले जीन्स (Apricot eyes)। इसमें C I B के समान घातक जीन अनुपस्थित होते हैं। मूलर–5 ड्रोसोफिला में अपेक्षाकृत जटिल प्रकार का प्रतिलोमन (Inversion) होता है, अतः यहाँ पर क्रॉसिंग–ओवर नहीं हो पाता।

अब मूलर–5 एप्रीकाट बार आँख (Apricot barred eyed) समजात मादा मक्खी का संकरण X- किरणों के द्वारा उपचारित सामान्य नर मक्खी के साथ किया जाता है, तब F_2 पीढ़ी में प्राप्त नर मक्खियों में से 50% नर मक्खियां मूलर–5 फिनोटाइप युक्त (एप्रीकाट, बार आँख युक्त) होती है। जबकि शेष 50% एप्रीकाट–बार–टाइप होंगे।

प्रश्न–19. रासायनिक म्यूटाजन पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [सागर 2008,13]

अथवा

म्यूटाजन किसे कहते हैं? इनके गुणों के आधार पर वर्गीकरण कीजिये। [भोपाल 2006]

अथवा

डी. एन. ए. अणुओं म्यूटेशन करने वाले कारकों का विस्तृत वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2007]

उत्तर– म्यूटेशन एक स्वतः प्रेरित प्रक्रिया है तथा इन्हीं को आजकल विकास का आधार मानते हैं। प्राकृतिक वरण, आनुवंशिक अपसरण, पार्थक्य आदि वे बल हैं, जो म्यूटेशन को प्रभावशाली बनाकर जीव जगत में विविधता उत्पन्न करवाते हैं, जिससे कालान्तर में नई जातियों का विकास होता है। चूँकि वातावरण बदलता रहता है। अतः उसमें रहने वाले जीवों के आनुवंशिक पदार्थ में भी परिवर्तन होना आवश्यक होता है, जिससे वे बदलते वातावरण में म्यूटेशन की वजह से उत्पन्न अपने नये गुणों के साथ तालमेल बैठाकर अपना अस्तित्व बनाये रख सकें।

चूँकि म्यूटेशन एक स्वतः प्रेरित प्रक्रिया है, लेकिन आजकल ऐसे कारकों की खोज हो चुकी है जिससे जीवों में कृत्रिम तरीके से म्यूटेशन प्रेरित किये जा सकते हैं इन कारकों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(i) भौतिक म्यूटाजेन (Physical mutagen)– ऐसे विकिरण (radiations) जोकि म्यूटाजेनिक गुण रखते हैं, भौतिक म्यूटाजन कहलाते हैं। ये कम तरंगदैर्ध्य तथा उच्च ऊर्जा वाले होते हैं। जैसे– अल्ट्रावायलेट किरण, x–किरण, कॉस्मिक किरणें एवं गामा किरणें।

विकिरणों को दो भागों में बाँटा जाता है–

1. आयोनाइजिंग (Ionizing)– इस तरह के विकिरण सामने के अणु को आयनित कर देते हैं। ये अणु एक इलेक्ट्रॉन बाहर निकाल देते हैं। आयोनाइजिंग विकिरण भी दो प्रकार के होते हैं, इलेक्ट्रोमैग्नेटिक किरणें जैसे– X एवं गामा किरणें। x– एवं गामा किरणें दोनों ही ऊतकों में अन्दर तक भेदने में सक्षम होते हैं। किसी अणु पर पड़ने के पश्चात् एक इलेक्ट्रॉन अति ऊर्जाकृत होकर अपना कक्ष छोड़ देता है, जिससे अणु आयन में परिवर्तित हो जाता है। दूसरी प्रकार की आयनित विकिरण को कणीय किरणें कहते हैं। ये किरणें रेडियो एक्टिव पदार्थों के क्षय के कारण पैदा होती हैं। जैसे– बीटा किरण, अल्फा किरणें एवं न्यूट्रॉन। इन किरणों के प्रभाव से कई तरह के परिवर्तन होते हैं जैसे–

1. डीएमिनेशन की प्रक्रिया का होना।
2. हाइड्रोजन बंध का कमजोर होना।
3. एक नाइट्रोजन बेस का कम हो जाना।
4. DNA के एक या दोनों स्ट्रैण्ड का टूटना आदि।

2. नॉन आयोनाइजिंग विकिरण (Non-ionizing radiations)– इस श्रेणी में केवल अल्ट्रावायलेट किरणें ही आती हैं, जोकि सूर्य के प्रकाश या मरकरी लैंप से निकलती हैं। ये DNA में उपस्थित प्यूरीन तथा पिरिमिडीन बेसों द्वारा अवशोषित होते हैं। अल्ट्रावायलेट किरणें कम ऊर्जा वाली होने के कारण इनमें आयनन की क्षमता नहीं पाई जाती है, अतः इनकी गैस क्षमता भी कम होती है।

(ii) रासायनिक म्यूटाजन (Chemical Mutagens)– बहुत से रसायन जो कि कीटनाशक या कवक नाशक दवाइयों के रूप में खेतों में उपयोग किये जाते हैं, गुणसूत्रीय विपथन (Chromosomal abberations) पैदा करते हैं। इन म्यूटाजेनिक रसायनों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है–

(a) डीएमिनेशन ऐजेन्ट (Deamination agents)– कुछ रसायन DNA के विभिन्न क्षारों को डीएमिनेट कर देते हैं। उन्हें डीएमिनेशन ऐजेन्ट कहते हैं। जैसे नाइट्रस अम्ल G, C व A क्षारों को डीएमिनेट करता है। इसका प्रभाव TMV, बैक्टीरिया, Tu फेज, यीस्ट आदि में देखा गया है। नाइट्रस अम्ल ऐडीनीन को हाइपो जैन्थीन (H) में, सायटोसीन (C) को यूरेसिल (U) में तथा ग्वानिन (G) को जैन्थीन (X) में डीएमिनेट करता है। इस तरह से क्षारों में परिवर्तन हो जाता है।

(b) ऐल्काइलेटिंग ऐजेन्ट (Alkylating agent)– इस तरह के म्यूटाजेनिक ऐजेन्ट में एक या अनेक ऐल्किल समूह क्रियाशील अवस्था में पाये जाते हैं। ये ऐजेंट अपना ऐल्किल समूह DNA बेसों को या फॉस्फेट समूह को दे देते हैं।

उदाहरण– डाइएथिल सल्फेट, एथिल मीथेन सल्फोनेट, डाइमेथिल सल्फेट आदि। ये ऐसे ऐल्काइलेटिंग एजेंट हैं जोकि DNA पर चार तरह से परिवर्तन लाते हैं–

1. **क्षारों का ऐल्काइलेशन (Alkylation of Bases)–** क्षारों के ऐल्काइलेशन के फलस्वरूप 1–मेथिल ऐडीनीन, 3– मेथिल ऐडीनीन आदि बनते हैं।
2. फॉस्फेट ट्राइएस्टर की जल अपघटन (hydrolysis) सुगर व फॉस्फेट के बीच में हो सकती है जिससे DNA की रीढ़ टूट जाती है।
3. **फॉस्फेट समूह का ऐल्काइलेशन (Alkylation of Phosphate group)–** फॉस्फेट समूह के ऐल्काइलेशन से फॉस्फेट ट्राइएस्टर बनते हैं, जो जल– अपघटित होकर ऐल्किल समूह बनाते हैं। ये समूह द्विगुणन में रूकावट पैदा करते हैं तथा कभी–कभी नॉन–कॉम्प्लिमेण्टरी बेसों के द्विगुणन के समय समाहित कर लेते हैं।
4. **डीप्यूरिनेशन (Depurination)–** ग्वानीन के 7– कार्बन पर एल्काइलेशन एक अस्थायी नाइट्रोजन देता है जो या तो जल–अपघटित हो जाता है या फिर DNA से प्यूरीन को हटा देता है। प्यूरीन के हटने से खाली हुई जगह DNA द्विगुणन में अवरोध उत्पन्न करती है।

(c) बेस ऐनालॉग्स (Base Analogues)– यह DNA में स्थित क्षारों (bases) से मिलते जुलते यौगिक होते हैं। यह DNA द्विगुणन के समय DNA में बेसों की जगह लगा दिये जाते हैं। उदाहरण के लिये 5– ब्रोमोयूरेसिल (5 – BU), 2–6 डीएमीनोप्यूरीन 5– आयोडो यूरेसिल (S–IU) आदि।

उपर्युक्त वर्णित म्यूटाजेन ऐजेन्टो के अलावा कुछ अन्य ऐजेंट जैसे– एक्रीफ्लैविन प्रोफ्लैविन तथा ICR – 170. ICR – 191 श्रृंखला के रसायन भी रासायनिक म्यूटाजेन की श्रेणी में आते हैं।

प्रश्न–20. प्रेरित उत्परिवर्तन को समझाइये। [जीवाजी 2007,10 भोपाल 2007]

अथवा

प्रेरित उत्परिवर्तन से आप क्या समझते हैं? इसके कारकों का वर्णन कीजिये। [भोपाल 2008]

उत्तर– प्रेरित उत्परिवर्तन (Induced mutation)– वे उत्परिवर्तन जो कोशिकाओं के अप्राकृतिक कारकों में अनावृत (expose) होने के परिणामस्वरूप होते हैं, उन्हें प्रेरित उत्परिवर्तन कहते हैं। जैसे कि कृत्रिम रेडियोएक्टिव आइसोटॉप्स (Radioactive isotopes) में अनावृत करने से या तेज रसायनों में अनावृत करने से।

प्रेरित उत्परिवर्तन तथा उनके कारकों के बारे संक्षिप्त व्याख्या– प्रेरित उत्परिवर्तनों को कृत्रिम रूप से अनेक म्यूटाजेनिक कारकों द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है–

(1) **तापमान (Temperature)**– तापमान के प्रेरण द्वारा विभिन्न जीवधारियों में जीन उत्परिवर्तन किया जा सकता है जैसे– अगर ड्रोसोफिला मेलेनोगेस्टर में सेक्सलिंक्ड लीथल जीन्स के प्रेरण दर में वृद्धि हो जाती है, तब उनके अनुकूलतम (Optimum) तापमान वाले वातावरण का तापमान (Temperature) 10°C बढ़ा दिया जाता है।

(2) **विकिरण (Radiations)**– विकिरण द्वारा जीवों में उत्परिवर्तन को प्रेरित किया जा सकता है। म्यूटाजेनिक विकिरण (Mutagenic radiations) दो प्रकार के होते हैं–

(i) आयनकारी विकिरण (Ionizing Radiations)– जैसे कि α–किरणें, β–किरणें, γ– किरणें। X– किरणों को भी आयनकारी विकिरण मानते हैं चूँकि X–किरणें α, β, γ सभी आयन्स उत्पादित करती हैं।

(ii) नॉन–आयनकारी विकिरण (Non-Ionising rays)– जैसे कि uv– प्रकाश तथा सामान्य प्रकाशीय किरणें (visible light), इलेक्ट्रोमैग्नेटिक क्षेत्र (Field) में वेव (Wave) के रूप में जो ऊर्जा ट्रान्समिट होती है उसे विकिरण कहते हैं।

एच.जे. मुलर (1927) ने अपने प्रयोगों द्वारा यह निश्चित किया कि अगर ड्रोसोफिला मक्खियों को X– किरणों से अनावृत किया जाये तो उनमें उत्परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। जौ तथा मक्का पर प्रयोग करके स्टेडलर (Stadler) ने बाद में मुलर के प्रेक्षणों की सम्पुष्टि की, जिनमें उन्होंने यह भी देखा कि X– किरणों की अभिक्रिया से उत्परिवर्तन की दर भी बढ़ जाती है।

इन प्रेक्षणों के पश्चात् शीघ्र ही विकिरणों को एक बहुत प्रभावी टूल की तरह उत्परिवर्तनों की (पौधों, सूक्ष्मजीवियों तथा जानवरों में) उच्च आवृत्ति (High frequency) प्राप्त करने के लिये किया और किया जा रहा है। यह देखा गया है कि अल्ट्रावायलेट किरणों

द्वारा उत्पन्न परिवर्तन अधिक महत्वपूर्ण हैं। आयनकारी विकिरण निम्न प्रभाव (effect) उत्पन्न करती हैं–

(i) जीन एवं क्रोमोसोमल दोनों प्रकार के उत्परिवर्तन करती हैं।

(ii) गुणसूत्रों या क्रोमेटिड्स का विच्छेदन करती है, जिससे यह विच्छेदन DNA तन्तुओं से सुगर–फॉस्फेट बेकबोन के स्थान से होता है। समजात गुणसूत्रों में दो एक साथ विच्छेदन ट्रान्सलोकेशन (Translocation) में परिणामित हो सकते हैं। अगर दो लगातार एक साथ विच्छेदन एक ही क्रोमोसोम में इनवर्जन (Inversion) या न्यूनता (Deletion) के अनुक्रमानुपात होता है।

रासायनिक पदार्थ (Chemicals)– विभिन्न प्रकार के रासायनिक पदार्थों का उपयोग जन्तुओं एवं पादपों में उत्परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये किया जाता है। 1940 में औरबेक (Auerback) ने सर्वप्रथम ड्रोसोफिला मक्खी मस्टर्ड गैस (Mustard gas) के म्यूटाजिनिक पदार्थ (Mutagenic Chemicals) कोशिका के माध्यम से जीन्स से प्रक्रिया करते हैं और इसके फलस्वरूप वे उत्परिवर्तन उत्पन्न करते हैं। कुछ उत्परिवर्तन रसायन हैं–

(1) मस्टर्ड गैस तथा सम्बन्धित यौगिक– जैसे कि नाइट्रोजन मस्टर्ड, सल्फर मस्टर्ड।

(2) एल्काइलेटिंग एजेण्ट्स– जैसे इथाइल आक्साइड, N– ब्यूटाइल मेथेन सल्फोनेट, इथाइल मेथेन सल्फोनेट।

(3) प्यूरीन तथा प्यूरीन डेरीवेटिव एजेण्ट्स– जैसे कि कैफीन, थियोब्रोमीन।

(4) प्यूरीन तथा पाइरीमिडीन को रूपान्तरित करने वाले एजेण्ट्स– जैसेकि नाइट्रस ऑक्साइड, नाइट्रोसागुआनीडीन।

(5) DNA में विकृति करने वाले एजेण्ट्स– जैसे कि प्रोफ्लेबिन, एक्रीडीन ऑरेन्ज (Acridine orange)।

(6) अन्य पदार्थ– जैसे कि मैलिक हाइड्रैजाइड डाईमिथाइल नाइट्रोसोमीन आदि।

प्रश्न–21. उत्परिवर्तन की C I B विधि का वर्णन कीजिये। [रीवा 2002,13]

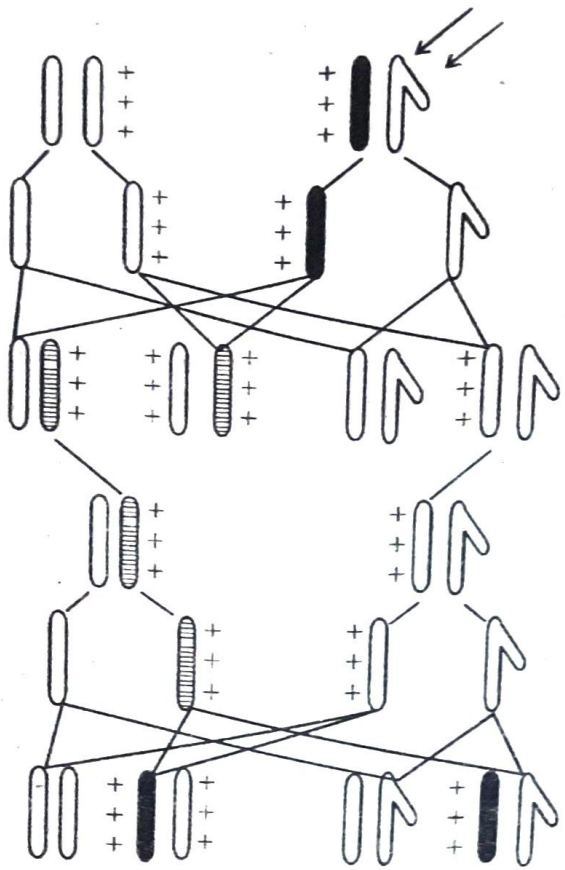
अथवा

C I B विधि पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– **CIB विधि (C I B- Method)**– **एच.जे. मूलर** (H.J. Muller, 1927) ने उत्परिवर्तन का निर्धारण करने के लिये इस विधि को बताया था।

अनेक प्रकार के उत्परिवर्तन (Mutations) कोशिका में स्थित गुणसूत्रों (Chromosomes) का अध्ययन करके ज्ञात किया जा सकते हैं। किन्तु कुछ उत्परिवर्तन जीन्स (genes) के कारण होते हैं जिनका पता आसानी से नहीं लगाया जा सकता है। उत्परिवर्तनों के कारण जीवधारियों की आकारिकी एवं कार्यिकी में असामान्यतायें आ जाती हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक एच.जे. मूलर (H.J. Muller, 1927) ने ड्रोसोफिला नामक मक्खी पर महत्वपूर्ण कार्य किये। उनके अनुसार ड्रोसोफिला के एक्स–गुणसूत्र (X-Chromosomes) पर प्रभावी जीन (Dominant gene) 'bar' (B) एक अप्रभावी घातक जीन (Recessive lethal) 'L' तथा एक इनवरसन सप्रेसिंग क्रॉसिंग ओवर (Inversion suppressing crossing over) (c) पाये जाते हैं।



चित्र– ड्रोसोफिला में सेक्स लिंक्ड उत्परिवर्तन की पहचान के लिये **CIB** विधि

अतः यह गुणसूत्र सी.एल.बी. (C.L.B.) गुणसूत्र (C.L.B. Chromosomes) कहलाता है। अब यह सी.एल.बी. गुणसूत्र (C.L.B. Chromosomes) नर मक्खियों (Male Flies) में पाया जाता है तो वे मर जाती हैं। जब सी.एल.बी.हेट्रोजायगस (C.L.B heterozygous) मादा (Female) के सामान्य नर से संकरण (Cross) कराया जाता है तो प्राप्त सामान्य नर तथा लम्बी आँखों वाली मादा (Bar eyed females) में 1:2 का अनुपात होता है यानि लम्बी आँखों वाली मादा मक्खियों की आधी संख्या प्राप्त होती है। यदि मूल नर (Original male) से अप्रभावी (Recessive lethal) लिंग सहलग्न (Sex linked) लक्षण स्थानान्तरित होता है तो प्रथम पीढ़ी (F_1) की मादा मक्खियों में द्वितीय पीढ़ी (F_2) की सभी नर मक्खियों में ये लक्षण आ जाते हैं।

अतः प्रथम पीढ़ी (F_1) की लम्बी आँखों वाली मादा मक्खियों की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार मूलर (Muller) ने नर ड्रोसोफिला (Male Drosophila) में एक्स–गुणसूत्रों (X-Chromosomes) में उत्परिवर्तनों का पता लगाया।

इकाई-IV

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न– 1. मानव क्रोमोसोम की रचना का वर्णन कीजिये। [जीवाजी 2013,17]

अथवा

मानव क्रोमोसोम की रचना पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2008,10,16]

उत्तर– मानव क्रोमोसोम **(Human Chromosome)**– मनुष्य में 23 जोड़े गुणसूत्र होते हैं जिनमें 22 जोड़े शरीर का निर्माण करते है जिसको आटोसोमल क्रोमोसोम (Autosomal chromosome) कहते हैं। तथा AA द्वारा प्रदर्शित करते हैं, जबकि एक जोड़ा जनन गुणसूत्र होते हैं जो लिंग का निर्धारण करते हैं। लिंग गुणसूत्र (Sex chromosome) कहते हैं जिनको XX या XY द्वारा प्रदर्शित करते हैं। सभी गुणसूत्र लम्बाई में असमान होते हैं जिनको आकारिकी के आधार पर सात समूह में बांटते हैं–

(1) A समूह – 1से 3 गुणसूत्र = 3
(2) B समूह – 4 से 5 गुणसूत्र = 2
(3) C समूह – 6 से 12 गुणसूत्र = 7
(4) D समूह – 13 से 15 गुणसूत्र = 3
(5) E समूह – 16 से 18 गुणसूत्र = 3
(6) F समूह – 19 से 20 गुणसूत्र = 2
(2) G समूह –21 से 23 गुणसूत्र = 3

= 23 जोड़े

मानव गुणसूत्र कोशिकाओं में दो रूपों में पाये जाते हैं -
(1) युग्मित अवस्था में, (2) अयुग्मित अवस्था में।

मानव भ्रूणों के फेफड़ों की कोशिकाओं में कई विधियों द्वारा संवर्धन (Culture) तैयार किया तथा अध्ययन के आधार पर बताया कि मनुष्य की एक सामान्य दैहिक कोशिका में 46 गुणसूत्र (अर्थात् 23 जोड़े गुणसूत्र) पाये जाते हैं। इन 23 जोड़े गुणसूत्रों में नर तथा मादा दोनों में दोनों 23 जोड़े गुणसूत्र एक समान लेकिन नर के ये दोनों असमान होते हैं।

नर में 23वें जोड का एक गुणसूत्र लम्बा तथा एक छोटा होता है। लम्बे को 'X' तथा छोटे को 'Y' से व्यक्त करते हैं। नर के 23वें जोड़े का 'X' गुणसूत्र मादा के 23 वें जोड़े के गुणसूत्रों के समान ही होता है। नर तथा मादा दोनो ही 23वें जोड़े (अन्तिम जोड़े) के गुणसूत्रों को लिंग गुणसूत्र (Sex chromosomes) कहते हैं। मादा के लिंग गुणसूत्र को "X X" तथा नर के लिंग गुणसूत्र को "X Y" से व्यक्त करते हैं। प्रत्येक जोड़े गुणसूत्रों की आकारिकी तथा लम्बाई निश्चित होती है और यह पीढ़ी दर पीढ़ी बदलती भी नहीं है। सेण्ट्रोमीयर की उपस्थिति के आधार पर डेनवर तथा लाण्डू (Denver And Londu 1962) ने मनुष्य की कोशिका में पाये जाने वाले गुणसूत्रों को सात समूहों में घटती हुयी लम्बाई के क्रम में रखा। लिंग गुणसूत्रों को इन्होंने लम्बाई के अनुसार न रखकर अन्त में रख दिया। गुणसूत्रों को इस प्रकार इसने अच्छे ढंग से व्यवस्थित किया गया है कि प्रत्येक जोड़े को

आसानी से पहचाना जा सकता है। गुणसूत्रों के जोड़े या रचना में थोड़ा-सा भी परिवर्तन होने पर इसका तुरन्त पता लगाया जा सकता है।

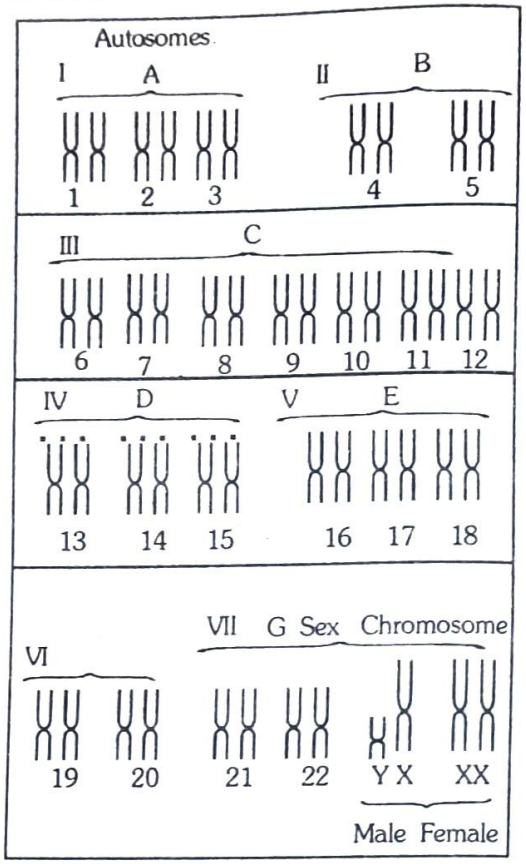


Fig. Human chmromosomes classified into sevem major groups according to criteria established at Deaver (1960), London (1963) and Chicago (1966) Conference

सन् 1969 में मानव गुणसूत्र को प्रतिदीप्तिशील रंगों में रंगने की कई विधियों का आविष्कार हुआ। इस विधि से रंगने पर गुणसूत्रों की पूरी लम्बाई में रंगहीन तथा रंगयुक्त एक-दूसरे के बाद कई पट्टियाँ बनीं। ये पट्टियां प्रत्येक गुणसूत्र में निश्चित विधि से हमेशा एक समान बनती हैं। इस प्रकार इस विधि से गुणसूत्रों के भाग को पहचाना जा सकता है। अब तक अध्ययन के आधार पर चार प्रकार की पट्टी पद्धतियों (Banding patterns) का अविष्कार किया जा चुका है। इन पद्धतियों की Q (Qucinacrine), F (Gienemse), R (Reverse or gienemsa) और C (Constitutive heretochromatin) के नाम से जानते हैं। गुणसूत्रों के अध्ययन में अब तक इस बात के स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि इनकी संरचना तथा संख्या में परिवर्तन होने पर कई प्रकार की विकृतियां आ जाती हैं।

प्रश्न-2. केरियोटाइप पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीबाजी 2004,07,12]

उत्तर- केरियोटाइप (Karyotype)- कोशिका के न्यूक्लियस में उपस्थित क्रोमोसोम की सम्पूर्ण संख्या सम्मिलित रूप से क्रोमोसोम-कॉम्प्लीमैण्ट या कैरियोटाइप कहते हैं।

उच्च श्रेणी के जन्तुओं तथा पौधों की सोमेटिक कोशिकाओं में उपस्थित क्रोमोसोम्स को डिप्लॉयड या सोमेटिक (diploid or Somatic) जबकि इनके अण्डाणुओं और शुक्राणुओं में उपस्थित क्रोमोसोम्स को गैमीटिक या हैप्लॉयड कहते हैं। डिप्लॉयड सैट को 2n तथा हेप्लॉयड सेट को n से निरूपित करते हैं। क्रोमोसोम्स के हैप्लॉयड सेट को जीनोम कहते हैं। इस प्रकार डिप्लॉयड सेट (2n) में दो जीनोम होते हैं। अतः जाइगोट में एक जीनोम अण्डाणु के द्वारा मादा से तथा दूसरा जीनोम शुक्राणु के द्वारा नर से आता है।

जन्तुओं और पौधों की प्रत्येक जाति में क्रोमोसोम्स की संख्या निश्चित होती है अर्थात् एक ही जाति के सभी जन्तुओं की सोमेटिक कोशिकाओं में डिप्लॉयड क्रोमोसोम्स की संख्या तथा उनके गैमीट्स में हैप्लॉयड क्रोमोसोम्स की संख्या एक ही होगी। लेकिन इनकी संख्या अलग-अलग जातियों के जन्तुओं में अलग-अलग होगी। क्रोमोसोम्स की सबसे कम संख्या ऐस्केरिस मैगेलोसिफेला में पायी जाती है, जिसकी प्रत्येक सोमेटिक कोशिका में डिप्लॉयड (2n) क्रोमोसोम्स की संख्या दो (एक जोड़ी) तथा गैमीटिक कोशा में हैप्लॉयड (n) संख्या एक होती है। बीलर **(Belar,1926)** के अनुसार क्रोमोसोम्स की सबसे अधिक संख्या प्रोटोजोअन रेडियोलोरियन-एलौकेन्था (Aulocantha) में पायी जाती है जिसमें क्रोमोसोम्स की संख्या 1600 होती है। मनुष्य की प्रत्येक सोमेटिक-कोशिका में क्रोमोसोम्स की 2n संख्या 46 तथा गैमीटिक-कोशिका में n संख्या 23 होती है।

प्रश्न-3. मनुष्य में जीन सम्बन्धित आनुवांशिक रोगों का वर्णन कीजिये।

अथवा [सागर 2007,13 जीबाजी 2007,10]

मनुष्य में जीन सम्बन्धित कौन-कौन से रोग पाये जाते हैं? वर्णन कीजिये। [जीबाजी 2008]

उत्तर- (1) ग्वॉयट्रस क्रैटिनिज्म रोग **(Goitrous Cretinism disease)-** मनुष्य में यह रोग एक अप्रभावी जीन के कारण उत्पन्न होता है। यह रोग केवल होमोजाइगस दशा में अभिव्यक्त होता है। इस रोग के व्यक्ति में फिनाइलेलानीन तथा टाइरोसीन के मैटाबॉलिज्म में अवरोध उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण थॉइराइड ग्रंथि की क्रिया अनियमित हो जाती है। इस रोग के व्यक्ति प्रायः मन्द बुद्धि के होते हैं।

(2) थैलेसीमिया रोग **(Thalassemia disease)-** यह रोग रक्त से सम्बंधित है। इस रोग से भी लाल रक्त कणिकायें अपनी क्रिया में असामान्य हो जाती हैं। मनुष्य में इस रोग को माइक्रोसाइटीमिया के नाम से भी जाना जाता है। यह रोग भी एक अप्रभावी जीन के कारण होता है जो मनुष्य में होमोजाइगस दशा में प्रभावकारी होता है। और तीव्र ऐनीमिया उत्पन्न करता है। मनुष्य में इस ऐनीमिया को कुलीज ऐनीमिया कहते हैं।

(3) रेटीनोब्लास्टोमा रोग **(Retinoblastoma disease)-** यह रोग बहुत घातक (Lethal) होता है यह रोग बहुत घातक एक समान जीन के प्रभावी ऐलील में म्यूटेशन के कारण होता है। इसके कारण व्यक्तियों के नेत्रों में कैन्सरस ट्यूमर बन जाते हैं। इस रोग के व्यक्तियों की मृत्यु अधिकांशतः शिशु अवस्था में ही हो जाती है।

(4) **एपीलोइया रोग (Epiloia disease)**– मनुष्य में यह रोग भी एक सामान्य जीन के प्रभावी एलील में म्यूटेशन के कारण होता है। इस रोग के व्यक्ति मन्दबुद्धि के तथा इनकी त्वचा और आन्तरिक अंगों में ट्यूमर्स (Tumours) के समान रचनायें पायी जाती है। इन रोगियों की मृत्यु भी शिशु अवस्था में हो जाती है।

(5) **सिकिल सेल एनीमिया (Sickle cell anaemia)**– यह रोग जीन के द्वारा होता हैं जो समयुग्मजी दशा (Homozygous condition) में घातक और विषम युग्मजी दशा (Heterozygous condition) में साधारण प्रभाव उत्पन्न करता है। इस रोग में लाल रक्त कणिकायें अपने सामान्य गोलाकार रूप के स्थान पर अर्धचन्द्राकार या हँसिये के समान हो जाती हैं। इस रोग के वाहक विषमयुग्मजी व्यक्ति सामान्य स्वास्थ्य युक्त होते हैं, लेकिन कभी-कभी रक्ताल्पता (एनीमिया) पायी जाती है। इसके विपरीत समयुग्मजी व्यक्ति अधिक रक्ताल्पता के कारण व्यस्क होने से पूर्व ही मर जाते हैं। यह रक्ताल्पता विशेषकर रक्त संचार में ऑक्सीजन की कमी के दौरान अधिक प्रकट होती है। रक्त संचार में जब ऑक्सीजन की मात्रा सामान्य होती है तब तक सिकिल कोशिकां हीमोग्लोबिन (Sickle cell haemoglobin or Hb^S) रक्त कणिकाओं में घुलनशील अवस्था में रहती है। ऑक्सीजन की कमी होने पर Hb^S संकुचित होकर अघुलनशील केलासीय संरचना में परिणित हो जाती है। इस कारण लाल रक्त कणिकाओं का आकार हँसियें के समान हो जाता है।

(6) **ऐल्केप्टोनूरिया (Alkaptonuria)**– यह एक मूत्र सम्बन्धी रोग है जिसमें पीड़ित व्यक्ति द्वारा ऐल्केप्टॉन (Alkapton or homogentisic acid) का उत्सर्जन होता है। इस रोगी का मूत्र शरीर से बाहर आते ही वायु के सम्पर्क अथवा क्षारीय माध्यम के सम्पर्क से काले रंग का हो जाता है। यह रोग उस जीन में विषमता के कारण होता है जो होमोजेन्टिसिक ऑक्सीडेज (Homogentisic oxidase) एन्जाइम के उत्पादन का नियंत्रण करती है। यह एन्जाइम ऐल्केप्टॉन को ऑक्सीकृत करके कार्बन डाईऑक्साइड तथा पानी में बदलने हेतु आवश्यक है। सामान्य मनुष्य में यह एन्जाइम आवश्यक मात्रा में पाया जाता है, जबकि इस रोग से पीड़ित व्यक्ति में इससे संबंधित दोनों जीन दोषपूर्ण हैं। सामान्य जीन की तुलना में ये जीन्स अप्रभावी प्रकार के होते हैं।

(7) **फीनाइलकीटोनूरिया (Phenylketonuria)**– प्रोटीन संश्लेषण के लिये फिनाइल एलानिन (Phenyl alanine) की आवश्यकता होती है। रक्त में इसकी मात्रा बढ़ जाने पर यह क्रमिक रूप में विघटित होता है एवं कोशिका श्वसन हेतु उपयोग में आता है। इसके विघटन की विभिन्न अवस्थाओं (1 से 4 तक) को नीचे लिखे अनुसार दर्शाया जा सकता है तथा प्रत्येक अवस्था में किसी न किसी एन्जाइम की आवश्यकता होती है।

(1) फिनाइल एलानिन (Phenyl alanine)

↓

(2) टाइरोसिन मेलानिन (Tyrosine Melanin)

↓

(3) p- हाइड्रॉक्सी फिनाइल पायरूविक अम्ल (P-hydroxy Phenyl pyruvic acid)

↓

(4) होमोजीनटिसिक अम्ल (Hamogentisic acid)

↓

(5) एसीटो एसिटिक अम्ल (Acto acetic acid)

↓

(6) सेल्यूलर श्वसन (Cellular respiration)

फिनाइलकीटोन्यूरिया नामक रोग फिनाइलएलानीन (Phenyl alanine) तथा टाइरोसीन (Tyrosine) का उपापचय में उत्पन्न अवरोध के कारण होता है। इस रोग में यकृत में निर्मित होने वाला एन्जाइम फिनाइल एलानीन हाइड्रोऑक्सीडेज, जो कि फिनाइल एलानीन को टाइरोसीन में परिवर्तित करता है, यह दोषपूर्ण हो जाता है। इस रोग से पीड़ित व्यक्ति के मूत्र में फैरिक क्लोराइड के घोल की कुछ बूंदें मिलाने से वह गहरा नीले -रंग का हो जाता है यह क्रिया मूत्र में उपस्थित फिनाइल पाइरुविक अम्ल के कारण होती है।

यह रोग एक अप्रभावी जीन के कारण होता है, जिसकी अभिव्यक्ति केवल समयुग्मजी दशा (Homozygous condition) में होती है। इस रोग में पीड़ित व्यक्ति मन्द बुद्धि युक्त होते हैं, इनमें पेशियों की गति अनियंत्रित होती है, तथा त्वचा व बालों का रंग काफी हल्का होता है। इन व्यक्तियों की आयु कम होती है तथा इनमें संतानें कम या नहीं पायी जाती हैं।

(8) एल्बिनिज्म **(Albinism)**– यह रोग फिनाइल एलानिन के उपापचय में दोष उत्पन्न होने के कारण होता है। इस रोग से ग्रसित मनुष्य डिहाइड्रोऑक्सी फिनाइलएलानिन (Dehydroxy Phenylalanine) को मिलैनिन (Melanin) में परिणित करने में असमर्थ होते है। एल्बिनिज्म से पीड़ित मनुष्यों में मिलैनिन नामक वर्णक पदार्थ की कमी होने से त्वचा का रंग फीका पड़ जाता है। यह रंग एक अप्रभावी जीन, जिसे एल्बिनो जीन (Albino gene) कहते हैं, के कारण होता है। इस जीन की अभिव्यक्ति तभी होती है जब यह समयुग्मजी दशा (Homozygous condition) में होता है। इस अवस्था में त्वचा का रंग फीका पड़ने के साथ ही बालों का रंग भी सफेद या हल्का भूरा हो जाता है।

प्रश्न–4. आनुवंशिक बीमारियाँ क्या हैं? उदाहरण देकर समझाइये। [सागर 08,13,16]

अथवा

जीन सम्बन्धित रोग क्या हैं? मनुष्य में पाये जाने वाले विभिन्न जीन सम्बन्धित रोगों का वर्णन कीजिये। [रीवा 2002,12]

अथवा

निम्न पर टिप्पणी लिखिये–

(1) सिकिल सेल ऐनीमिया, (2) एल्बिनिज्म । [सागर 2007,10]

उत्तर– एक सामान्य मनुष्य में क्रोमोसोम की संख्या 46 पायी जाती है, लेकिन क्रोमोसोम में संख्यात्मक या संरचनात्मक परिवर्तन के कारण मानव कैरियोटाइप में अनेक असामान्यायें निश्चित हो जाती हैं। इन क्रोमोसोम में असामान्यताओं के कारण फीनोटिपिक दोष या बीमारी उत्पन्न होती हैं। ये बीमारियाँ सिन्ड्रोम (Syndrome) कहलाती हैं।

क्रोमोसोमल असमान्यतायें दो प्रकार की होती हैं–

(i) पॉलिप्लॉयडी (Polyploidy)– इसमें क्रोमोसोम की संख्या हमेशा एक मूल संख्या (Haploid or 'n' or 'y') के गुणन में होती है। जैसे– ट्रिप्लॉयड = 3n , टेट्राप्लॉयड = 4n तथा पेन्टाप्लॉयड =5n आदि। यह क्रिया जन्तुओं मे बहुत कम जबकि पौधों में अधिक पायी

जाती है। सन् 1960 में वैज्ञानिकों ने पहली बार ट्रिप्लॉयड बालक पाया था। वह केवल जन्म लेने तक ही जीवित रहा। उसमें 69 क्रोमोसोम जिनमें 66 ऑटोसोम 2X तथा 1Y सेक्स क्रोमोसोम थे। यह बालक आनुवंशिक रूप से नर था। वर्तमान में इसका कोई जीवित उदाहरण नहीं है। पॉलिप्लॉयड जीव बनने के तीन कारण निम्नलिखित हैं–

(i) एक सामान्य मादा गैमीट के साथ एक से अधिक नर गैमीट के संयुग्मन से।

(ii) अपसामान्य मिओसिस विभाजन के कारण डिप्लॉयड गैमीट बनने पर।

(iii) जाइगोट में प्रथम विभाजन के अपूर्ण रहने पर जिसके कारण क्रोमोसोम ब्लास्टोमियर्स में नहीं पहुंच पाते और एक ही कोशिकाओं में रह जाते हैं।

(ii) एन्यूप्लॉइडी (Aneupoidy)– इसमें क्रोमोसोम की बदली हुयी संख्या एक मूल सेट के गुणन में नहीं होती। इसमें एक या एक से अधिक क्रोमोसोम मूल क्रोमोसोम संख्या (2n) में जुड़ जाते हैं, या कम हो जाते हैं। मिऑसिस (Meiosis) में एक या एक से अधिक समजात जोड़ियों के क्रोमोसोम के अलग न होने के कारण क्रोमोसोम संख्या में ऐसे परिवर्तन होते हैं। यह परिवर्तन ऑटोसोम्स तथा सेक्स क्रोमोसोम में हो सकता है। इस क्रिया में शरीर के अनेक लक्षण एक साथ प्रभावित होकर असामान्य रोग उत्पन्न करते हैं। इस एन्यूप्लॉयडी से सम्बन्धित सिन्ड्रोम दो प्रकार के होते हैं–

(A) ऑटोसोमल सिन्ड्रोम तथा (B) सेक्स क्रोमोसोमल सिन्ड्रोम।

(A) ऑटोसोमल सिन्ड्रोम (Autosomal syndrome)– ऑटोसोम्स की संख्या में अपसामान्यता को दो भागों में बाँटा गया है–

(i) ट्राइसोमी द्वारा उत्पन्न सिन्ड्रोम (Syndromes developed by trisomy)

(a) डाउन सिन्ड्रोम (Down's Syndrome)– इसके बारे में लैंग डाउन (Lang Down) ने सन् 1866 में वर्णन किया इस सिन्ड्रोम का सम्बन्ध 21वें क्रोमोसोम की ट्राइसोम से है। इस प्रकार के बच्चों का चेहरा गोल तथा चौड़ा होता है। गर्दन छोटी व चौड़ी तथा त्वचा खुरदरी होती है। ऊंगलियाँ मोटी व छोटी होती हैं तथा पादों की पहली व दूसरी ऊँगली के बीच ज्यादा जगह होती है। नाक चपटी, आँख एक–दूसरे से काफी दूर, मुख खुला हुआ, निचला होठ लटका हुआ, आँख तिरछी तथा पलकें मंगोल जाति की तरह फोल्डेड (Folded) होती हैं। इसी कारण से इसे मंगोलियन जड़ता (Mongolism) कहते हैं। ये मंद बुद्धि वाले होते हैं। तथा 16 वर्ष की आयु तक मर जाते हैं। इसमें 21वीं जोड़ी ऑटोसोम्स के बजाय 3 होते हैं। अर्थात् क्रोमोसोम समूह 2n+1 (21) = 47 होता है।

(b) एडवर्ड सिन्ड्रोम (Edward's Syndrome) या 18–ट्राइसोमी– इसमें क्रोमोसोम के 18वें जोड़े में दो की जगह तीन क्रोमोसोम पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति का तंत्रिका तन्त्र दोषपूर्ण होता है। इनका सिर चपटा तथा बाह्यकर्ण लम्बे व मुड़े हुये होते हैं। ये एक वर्ष तक ही जीवित रहते हैं।

(c) पेट्यूसिन्ड्रोम या 13 ट्राइसोंमी (Patau's Syndrome or 13- Trisomy)– इसमें 13 वें जोड़े क्रोमोसोम में एक क्रोमोसोम अतिरिक्त होता है। इनकी ऊपरी होंठ कटा हुआ तथा सिर एवं मस्तिष्क अपेक्षाकृत छोटे होते हैं, ये बच्चे मन्द बुद्धि के होते हैं।

(ii) मोनोसोमी द्वारा उत्पन्न सिन्ड्रोम (Syndrome Developed by Monosomy)– किसी एक जोड़ी ऑटोसोम में से एक क्रोमोसोम अनुपस्थित होने पर यह सिन्ड्रोम विकसित होता है। इसमें सामान्य से कम क्रोमोसोम होते हैं–

(a) 18–मोनोसोमी (18 Monosomy)– इसमें 18वें जोड़े में एक क्रोमोसोम (2n-1) कम होता है। इसमें मनुष्यों में बाह्यकर्ण बहुत बड़े, ऊंगलियाँ लम्बी तथा ऊँगलियों की रेखायें जटिल होती हैं? ये कम समय तक जीवित रहते हैं।

(b) 21–मोनोसोमी (21 Monosomy)– इसमें 21वें जोड़े के एक क्रोमोसोम कम होता है। इसके रोगी में आँखों के बीच की दूरी कम होती है, नाक लम्बी एव बाह्य कर्ण बड़े होते हैं। यह अवस्था अधिक घातक होती है।

(B) सेक्स क्रोमोसोमल सिन्ड्रोम (Sex- Chromosomal Syndrome)–

(a) क्लीनेफेल्टर सिन्ड्रोम (Klinefelter's Syndrome)– इसका वर्णन सन् 1942 में क्लीनेफेल्टर नामक एक अमेरिकन वैज्ञानिक द्वारा किया गया। यह पुरुषों में एक अतिरिक्त X-क्रोमोसोम के कारण होता है। इसमें 47 क्रोमोसोम (44 ऑटोसोम + XXY लिंग क्रोमोसोम) होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर सामान्य पुरुषों जैसा होता है, लेकिन Y-क्रोमोसोम की उपस्थिति के कारण इनकी प्रवृत्ति स्त्रियों के समान होती है। तथा ऐसे व्यक्ति नपुंसक होते हैं और इसमें प्रायः औरतों जैसे स्तनों का विकास हो जाता है, इसे जाइनीकोमेस्टिया (Gynaecomastia) कहते हैं। यह स्थिति 500 पुरुषों में केवल एक व्यक्ति में दिखायी देती है।

(b) टर्नर सिन्ड्रोम (Turner's Syndrome)– यह सेक्स क्रोमोसोम में केवल एक X-क्रोमोसोम की उपस्थिति से होता है। बाल्यावस्था में ये बच्चे लड़कियों के समान होते हैं, लेकिन किशोरावस्था में इनके अण्डाशय तथा स्तन पूर्ण विकसित नहीं हो पाते हैं। इनमें मासिक स्त्राव व अण्ड निक्षेपण भी नहीं होता। इनका कद छोटा, वक्ष चपटा तथा जनन अंग अनुपस्थित या अविकसित होते हैं।

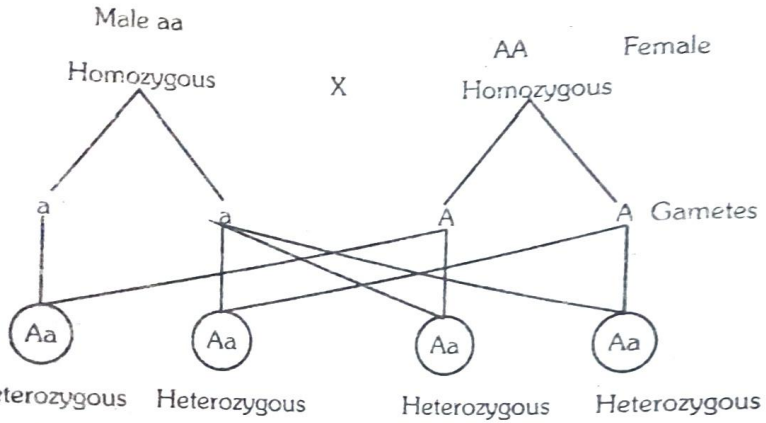
मानव में कुछ महत्वपूर्ण जीन सम्बन्धित रोग
(Some important Gene Related diseases in Human)

(1) सिकिल सेल एनीमिया (Sickle Cell Anaemia)– यह मनुष्यों में होने वाला रक्त सम्बन्धित रोग है। इसमें लाल रूधिर कणिकाओं का आकार वृत्ताकार न होकर हसियाँ की तरह होता है। इसमें उत्पन्न होने वाली असमान्यताओं के कारण मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। इस रोग का कारण केवल एक जीन होता है। यह जीन हेटेरोजाइगस दशा में तो अपना सामान्य प्रभाव दिखाता है लेकिन होमोजाइगस दशा में सिकिल–सेल एनीमिया उत्पन्न करता है। हेटेरोजाइगस व्यक्ति इस रोग के वाहक (Carrier) होते हैं।

यह भी देखा गया है कि इलैक्ट्रोडफोरैटिक क्षेत्र में (Electrophoretic field) में सामान्य मनुष्य तथा इस रोग के रोगी के हीमोग्लोबिन में भिन्न गतिशीलतायें पायी जाती है। सिकिल सेल एनीमिया हीमोग्लोबिन की दिशा से विपरीत दिशा में गति करता है। मनुष्य में यह

एनीमिया रोग जीन Hb ^{A} में जीन म्यूटेशन के कारण होता है, जो वयस्क मनुष्य में β हीमोग्लोबिन शृंखला का निर्माण करती है। म्यूटेंट जीन Hb^{S} सिकिल-सेल हीमोग्लोबिन का निर्माण करती है।

(2) ऐल्बिनिज्म (Albinism)– मानव में त्वचा, बालों एवं आँखों की पुतली का गहरा रंग मिलैनिन (Melanin) नामक पदार्थ की उपस्थिति के कारण होता है। अतः मिलैनिन की अनुपस्थिति में त्वचा सफेद सी, बाल सफेद तथा पुतलियाँ रक्त केशिकाओं के कारण गुलाबी या लाल होती हैं, यह दशा ऐल्बिनिज्म कहलाती है। शरीर में मिलैनिन पिगमेंट एक प्रबल (Dominant) जीन के प्रभाव से बनता है। अतः इस जीन का साथी सुप्त जीन ऐल्बिनिज्म का जीन होता है। इसलिये जिन मनुष्यों में ऐल्बिनिज्म पायी जाती है, उनमें दोनों सुप्त जीन (एक पिता से तथा एक माता से) प्राप्त हो जाते हैं। इस प्रकार एक ऐल्बिनो व्यक्ति में हमेशा होमोजाइगस (Homozygous) अवस्था पायी जाती है। कोई व्यक्ति इसकी हेटेरोजाइगस अवस्था में सामान्य दिखायी देता है। अगर इस प्रकार का पुरुष किसी सुप्त होमोजाइगस जीन या हेटेरोजाइगस जीन अवस्था वाली स्त्री से शादी करता है तो उसकी सन्तानों में दो प्रकार की अवस्थायें पायी जाती हैं।



अगर एल्बिनो पुरुष किसी होमोजाइगस सामान्य स्त्री से शादी करता हो तो उनकी सभी सन्तानें सामान्य हेटेरोजाइगस पैदा होती हैं।

प्रश्न–5. सिण्ड्रोम क्या है? निम्न सिण्ड्रोम को समझाइये–

(i) केट क्राई सिण्ड्रोग [ग्वालियर 2001]

(ii) क्लाइन फेल्टर सिण्ड्रोम

(iii) डाउन सिण्ड्रोम [भोपाल 2001]

(iv) टर्नर सिण्ड्रोम

उत्तर– सिण्ड्रोम (Syndrome)– मनुष्य में गुणसूत्रों की सामान्य संख्या 46 होती है, लेकिन गुणसूत्रों में संख्यात्मक परिवर्तनों के कारण कभी-कभी गुणसूत्र प्रारूप में अनेक असमानतायें विकसित हो जाती हैं। इन असमानताओं को सामान्यतः गुणसूत्री असामान्यतायें

कहते हैं, यह असामान्यतायें मनुष्य में जीवों में अधिक अभिव्यक्त होती है। इन असामान्यताओं के कारण मनुष्य में विभिन्न रोगों के लक्षण उत्पन्न होते हैं जिनको सिण्ड्रोम/संलक्षण कहते हैं।

(i) केट क्राई सिण्ड्रोम (Cat cry–syndrome)– जब किसी गुणसूत्र में विलोपन होता है तब उसका प्रभाव उस भाग में स्थित जीन्स के ऊपर निर्भर करता है। इस विधि में गुणसूत्र में से एक खण्ड टूट कर निकल जाता है। विलुप्त खण्ड की लम्बाई के अनुसार गुणसूत्र से एक जीन या जीन समूह का विकास होता है। टूटा हुआ खण्ड सेण्ट्रोमीयर के अभाव के कारण जीवित नहीं रहता है।

डॉ. जे लेजुने ने 5 वें अलिंगी गुणसूत्र के एक भाग के विलोपन को दर्शाया। इसके कारण एक वर्ष के बच्चे का चेहरा गोल या चन्द्रमा के समान होता है तथा उसकी आवाज बिल्ली की तरह होती है। इसको केट–क्राई सिण्ड्रोम (Cat cry–syndrome) या क्राइ–दू– चेट सिण्ड्रोम कहते हैं। ऐसे बच्चे में मस्तिष्कीय मन्दता अत्यधिक विकसित होती है तथा जन्मजात हृदय में विसंगति पायी जाती है। चेहरा व हाथ पैर कुरूप होते हैं। ऐसे बच्चे एकाधिसूत्र (Trisomic) बच्चों की अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। कुछ व्यस्क अवस्था तक जीवित रहते हैं।

(ii) क्लाइनफेल्टर सिण्ड्रोम (Klinefelter's Syndrome [44 +xxy]– कभी-कभी युग्मक के निर्माण के समय होने वाले अर्धसूत्री विभाजन (mitosis) के समय लिंग गुणसूत्रों के वितरण में कुछ असामान्यतायें उत्पन्न हो जाती हैं। ऐसे बच्चों में प्रारंभिक पुरुष (male) तो उपस्थित रहता है, लेकिन जैसे-जैसे बच्चे की वृद्धि होती हैं, वृषण (Testis) की वृद्धि उस अनुपात में नहीं होती है। अतः व्यस्क होने पर पुरुषों के अविकसित जननांग होते हैं। ऐसे मनुष्य में केवल एक x– गुणसूत्र आनुवांशिक रूप से क्रियाशील होता है। दूसरा x– गुणसूत्र या तो मातृक (maternal) या पैतृक (paternal) निर्मित में हैटेरोपिक्नोसिस के कारण गुणसूत्र अक्रियाशीलता हो जाता है। सभी ब्लास्टोसिस्ट की कोशिकायें मातृक या पैत्रक x– गुणसूत्र में यकायक भ्रूणीय अवस्था के 16 वें दिन अक्रियाशील विकसित हो जाती है। अतः सभी पूर्वगामी कोशिकाओं के x– गुणसूत्रों में अक्रियाशीलता पायी जाती हैं। इस सिद्धान्त को लियोन सिद्धान्त कहते हैं। ऐसे मनुष्य में व्यस्क होने पर पुरुषों के विकसित जननांग नहीं होते है। इस विसंगति में नर बन्ध्य (sterile) होते है। इनमें 46 के स्थान पर 47 गुणसूत्र होते हैं। 850 बच्चों में से एक बच्चा क्लाइनफेल्टर सिण्ड्रोम वाला होता है।

(iii) डाउन सिण्ड्रोम (Down's syndrome)– इस प्रकार के सिण्ड्रोम में व्यक्ति, मन्द बुद्धि वाले, चेहरा चपटा होता है, चौड़ा या छोटा धड़ हाथ-पैर छोटे एवं मोटे होते हैं। इनके जनन अंग अल्प विकसित होते हैं। ऐसे बच्चों में केन्द्रीय तंत्रिका-तन्त्र का विकास उचित प्रकार से नहीं हो पाता है। इनमें आँखें एक-दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होती हैं। नासिका चपटी एवं कर्णपल्लव आकार में असामान्य होते हैं। ग्रीवा आकार में छोटी एवं अधिक मोटी होती है। ऐसे प्राणी बन्ध्य (sterile) होते हैं।

(iv) टर्नर सिण्ड्रोम (Turner's syndrome (44 + xo)– यह एक प्रकार की न्यून सूत्रता है यह x– गुणसूत्र की आंशिक या पूर्ण न्यून सूत्रता है। इस प्रकार की विसंगति में- (i) 51% रोगियों में सम्पूर्ण x– गुणसूत्र अनुपस्थित रहता है। (ii) 43% रोगियों में से 40% रोगियों में x– गुणसूत्र की छोटी भुजा का पूर्ण रूप से विलोपन होता है। 23% में x– गुणसूत्र

के छोटी भुजा का आंशिक विलोपन होता है। शेष 37% मोजेक प्रकार के होते हैं। इस सिण्ड्रोम में ग्रसित मनुष्य में दो के स्थान पर केवल एक लिंग गुणसूत्र पाया जाता है। कभी-कभी अर्धसूत्री विभाजन के द्वारा ऐसा अण्डाणु (ovum) उत्पन्न होता है, जिसमें लिंग गुणसूत्रों का अभाव (A + O गुणसूत्र युक्त अण्डाणु) होता है। जब इन लिंग गुणसूत्र रहित अण्डाणुओं एवं सामान्य शुक्राणुओं (A + X) के बीच निषेचन होता है, तब इस प्रकार निर्मित जाइगोट में केवल एक ही लिंग गुणसूत्र (2A + X) होता है। ऐसे जाइगोट के विकास के परिणामस्वरूप असामान्य स्त्री का विकास होता है। ऐसी असामान्य स्त्री में केवल 46 के स्थान पर 45 गुणसूत्र ही पाये जाते हैं। इनमें निम्न लक्षण पाये जाते हैं–

(i) स्त्रियां छोटे कद तथा मन्द बुद्धि की होती हैं।
(ii) गर्दन की त्वचा जालयुक्त होती है।
(iii) स्तन अल्पविकसित, स्तन के दोनों स्तनाग्रों में काफी अन्तर होता है।
(iv) सीना चौड़ा व पुरुषों के समान होता है।
(v) ऐसी स्त्रियों के अण्डाशय में संयोजी ऊतक के पिण्ड पाये जाते हैं। इसका ऐस्ट्रोजेनिक हार्मोन्स का स्त्राव नहीं हो पाता है।
(vi) जनन–अंग अल्पविकसित एवं ऋतुचक्र अनुपस्थित होती है। ऐसी स्त्रियां बांझ होती हैं।
(vii) पीयूष ग्रंथि से गोनेडोट्रॉपिन हार्मोन अधिक स्त्रावित होता है। विश्व में 3,000 जन्मे बच्चों में से 1 सन्तान टर्नर सिण्ड्रॉम युक्त होती है।

प्रश्न–6. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–

(i) थैलेसेमिया, (ii) मार्फन्स सिण्ड्रॉम [भोपाल 2001,10,12]

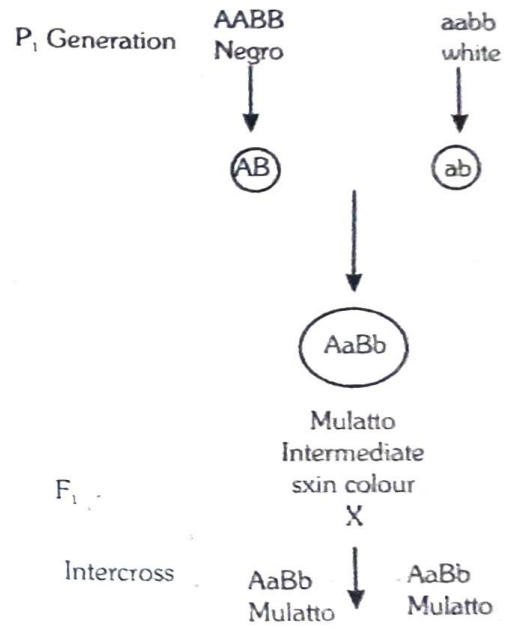
उत्तर– (i) थैलेसेमिया (Thalassemia)– इस प्रकार की विसंगति को माइक्रो साइटेमिया कहते हैं। यह विसंगति भी दात्र कोशिका अरक्ता (sickle cell anaemia) के समान मनुष्य लाल रुधिर (R.B.C.) की असमानता रोग से सम्बन्धित है। यह जीन के कारण होता है जो कि समयुग्मजी (Homozygous) अवस्था में घातक प्रभाव देता है। जिसके कारण घातक रक्त क्षीणता (Anaemia) रोग होता है। इस रक्तक्षीणता को कोलीज रक्तक्षीणता (Cooley's anaemia) भी कहते हैं।

(ii) मार्फन्स सिण्ड्रॉम (Marfan's Syndrome)– यह एक असामान्य प्रकार की संयोजी ऊतक सम्बन्धित विसंगति है जिसमें कंकालीय नेत्र एवं कार्डियोवेस्कुलर तन्त्र में परिवर्तन होता है। कंकालीय विसंगति मार्फन्स सिण्ड्रॉम का सामान्य लक्षण है। रोगी में लम्बी अंगुलियां एवं पादागुंलियां (Toes) होती हैं। शरीर के नीचे के भाग के लम्बा होने के कारण शरीर अत्यधिक लम्बा होता है। हाथ एवं पैरों के सन्धिमय स्नायु लचीले होते हैं। रोगी की दोहरी सन्धि दर्शाता है, मुख्य रूप से अंगूठा पीछे की ओर कलाई तक मुड़ सकता है।

मार्फन्स सिण्ड्रॉम में कोलेजन तन्तुओं या इलास्टिन तन्तुओं में क्रॉस लिन्केज कम होने के कारण होता है। यह एक x सहलग्न प्रभावी वंशागतिकी विसंगति है। यह एक विषम आनुवांशिकी विसंगति है। अलिंग गुणसूत्रीय प्रभावी सिण्ड्रॉम रोगी मनुष्य के 50% बच्चों में पाया जाता है। 30–40 वर्ष की उम्र में रोगी की मृत्यु हो जाती है। अधिकांश रोगी की मृत्यु हृदय की क्रिया बन्द होने से होती है।

प्रश्न–7. बहु कारक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2007]

उत्तर– बहुकारक जीन (Multiple Factors)– हमारे शरीर के कई मात्रात्मक लक्षणों (Quantitative traits) के लिये विविक्त वर्ग (Descrete classes) सुगमता से स्थापित नहीं किये जा सकते हैं, क्योंकि इनकी वंशागति कई जीनों द्वारा नियंत्रित होने के कारण जटिल होती है।



जब एक ही लक्षण को एक से अधिक जीन्स नियंत्रित करती है तो ऐसी जीन्स को बहुकारक जीन्स कहते हैं। बहुकारक जीन्स की वंशागति का अध्ययन **नेल्सन ईली** (Nelson Ehli, 1908) तथा ईस्ट (East) ने किया था। उन्होनें बताया कि जीनों का संचयी प्रभाव (Cumulative effect) हो सकता है। उनके अनुसार एक ही लक्षण को नियंत्रित करने वाले एक से अधिक जीनों के आधार पर तथा कथित सम्मिश्रण वंशागति (blending inheritance) की व्याख्या भी की जा सकती है। इस प्रकार के जीनों को बहुजीनी तंत्र (Polygenic System) कहते हैं। इन तन्त्रों से नियंत्रित वंशागति की व्याख्या बहुकारक परिकल्पना के रूप में की जाती है।

मानव की त्वचा का रंग तीन जीन्स द्वारा नियंत्रित होता है। इन जीन्सों से नियमानुसार 8 प्रकार के युग्मक तथा इनसे 64 प्रकार के समलक्षणी गुण प्रतिपादित होते हैं, क्योंकि प्रत्येक प्रभावी ऐलील मिलैनिन वर्णक की समान मात्रा का उत्पादन करने में सक्षम होता है। इसलिये प्रभावी ऐलिल की संख्या के आधार पर मानव में त्वचा का रंग अलग अलग होता है तथा 61 प्रकार के जीन संयोजन में 1 : 6 : 15 : 20 : 15 : 6 : 1 का अनुपात

होता है अर्थात् यह 7 प्रकार के त्वचा रंग की आवृत्ति समलक्षणी उत्पाद में एक से अधिक होती है।

O_x \ O	AB	Ab	aB	ab
AB	AA BB like negro	AA Bb darker than mulatto	Ab BB darkker than mulatto	Aa Bb like Mulatto
Ab	AA Bb darker than mulatto	AA bb like mulatto	Aa Bb like mulatto	Aa bb lighter than mulatto
aB	Aa BB darker than mulatto	Aa Bb like mulatto	aa BB like mulatto	aa Bb lighter than mulatto
ab	Aa Bb like mulatto	Aa bb lighter than mulatto	aa Bb lighter than mulatto	aa bb like white

Fig- Progeny of F_2 generations of a Negro and a white.

प्रश्न–8. रक्त–समूह से आप क्या समझते हैं? विभिन्न प्रकार के रक्त–समूहों का वर्णन कीजिये। [भोपाल 2008,13]

अथवा

मानव में रक्त समूह आनुवंशिकी पर निबंध लिखिये। [भोपाल 2006, जीवाजी 2007,10]

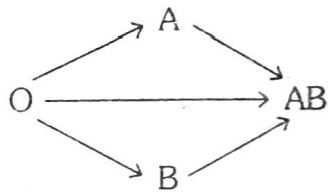
उत्तर– रक्त–समूह (Blood group)– किसी भी मनुष्य के रक्त को किसी अन्य मनुष्य के रक्त (blood) में प्रदाय (donate) करके मिलाया नहीं जा सकता। जब दो विभिन्न रक्त–समूह वाले रक्त को मिलाया जाता है तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, क्योंकि विभिन्न मनुष्य के रक्त प्रोटीन्स में अन्तर होता है, इस कारण उनकी R.B.C. आपस में चिपक जाती है, और रक्त की यह चिपकी कणिकायें वाहिनियों के पथ को बन्द कर देती हैं और मनुष्य की मृत्यु हो जाती है।

कार्ल लैण्ड स्टेनर ने 1900 में A, B तथा AB रक्त समूह के बारे में खोज की तथा डी. कास्टेलो ने 1902 में O रक्त–समूह की खोज की। लैण्ड स्टेनर ने मनुष्य के रक्त एवं R.B.C. में दो प्रकार के पदार्थों को पाया एण्टीजन (Antigen) एवं एण्टीबॉडी (Antidody) एवं इनके विपरीत प्लाज्मा में में दो एण्टीबॉडी (Anti-body) होती हैं।

विभिन्न रक्त–वर्गों तथा एण्टीजन तथा एण्टीबॉडी को निम्न तालिका से दर्शाया है–

क्र.	रक्त–समूह (Blood group)	लाल रक्त कणिकाओं में उपस्थित प्रतिजन (Antigen in R.B.C.)	प्लाज्मा में उपस्थित प्रतिरक्षा (Antibody in Plasma)
1.	A	A Antigen	b Antidody
2.	B	B Antigen	a antidody
3.	AB	AB Antigen	None
4.	O	None	a and b antitibody

A रक्त–समूह का रक्त केवल उन मनुष्यों को दिया जा सकता है, जिनका रक्त A, AB समूह का होता है तथा B रक्त–समूह का रक्त उन मनुष्यों को दिया जा सकता है, जिनका रक्त समूह B, AB समूह होता है। रक्त समूह AB का रक्त केवल AB रक्त समूह वाले मनुष्य को दिया जा सकता है, लेकिन यह अपने ही वर्ग के समूह का रक्त ग्रहण कर सकता है। इस कारण O समूह के मनुष्य को सार्वजनिक दाता (universal donor) कहते हैं। AB रक्त–समूह किसी भी मनुष्य का रक्त ग्रहण कर सकते हैं। इस कारण यह सर्वग्राही (universal recipients) कहलाते हैं। रक्त–समूहों के आपस में रक्त देने की सम्भावनाओं को निम्न प्रकार दर्शाया गया है--



रक्त–समूह	किस रक्त–समूह से रक्त को समूहन करती है?				किस समूह को रक्त दिया जा सकता है?	किस समूह से रक्त ग्रहण किया जा सकता है?	टिप्पणी
	O	A	B	AB			
O	–	–	–	–	O, A, B, AB	O	सर्वदाता
A	+	–	+	–	A एवं AB	O एवं A	–
B	+	+	–	–	B एवं AB	O एवं B	–
AB	+	+	+	–	AB	O, A, B, AB	सर्वग्राही

+ = कणिकाओं का समूहन (Agglutination)

– = कणिकाओं का समूहन नहीं (No Agglutination)

प्रश्न–9. रुधिर ट्रान्सफ्यूजन में रुधिर वर्गों का महत्व स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– रुधिर ट्रान्सफ्यूजन में रुधिर वर्गों का महत्व– किसी दुर्घटना अथवा रोग के कारण शरीर में रुधिर की अत्यधिक कमी हो जाती है तो उस रोगी को बचाने के लिये उसे किसी दूसरे मनुष्य का रुधिर चढ़ाया जाता है। इसलिये रोगी के शरीर में रुधिर चढ़ाने अथवा ब्लड ट्रान्सफ्यूजन से पहले यह पता करना आवश्यक है कि डोनर का रुधिर रोगी (रैसिपिऐण्ट) के रुधिर के समान हो। अन्य डोनर के RBCs में उपस्थित ऐण्टीजन की विपरीत या सम्बन्धित ऐण्टीबॉडी रैसिपिऐण्ट के रुधिर सीरम या प्लाज्मा में नहीं होनी चाहिये वरना रोगी (रैसिपिऐण्ट) के रुधिर में पहुँचाते ही डोनर के RBCs आपस में बड़े–बड़े समूहों में चिपकना शुरू कर देंगे।

आमतौर पर ब्लड ट्रान्सफ्यूजन एक जैसे रुधिर वर्गों वाले व्यक्तियों के मध्य उत्तम होता है, परन्तु जरूरत पड़ने पर आन्तर–वर्गीय ब्लड ट्रान्सफ्यूजन भी किया जा सकता है।

ब्लड ट्रान्सफ्यूजन को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

(1) **यूनिवर्सल डोनर या सर्वदाता–** O रुधिर वर्ग वाले मनुष्य को यूनिवर्सल डोनर कहते हैं, क्योंकि इसका रुधिर किसी भी अन्य रुधिर वर्ग वाले मनुष्य को बिना किसी हानि के दिया जा सकता है। क्योंकि O रुधिर वर्ग के व्यक्तियों के रुधिर में ऐण्टीजेन्स पूर्णतः अनुपस्थित होते हैं तथा ट्रान्सफ्यूजन के समय इन व्यक्तियों का रुधिर प्लाज्मा रैसिपिऐण्ट के रुधिर में डायल्यूट हो जाता है।

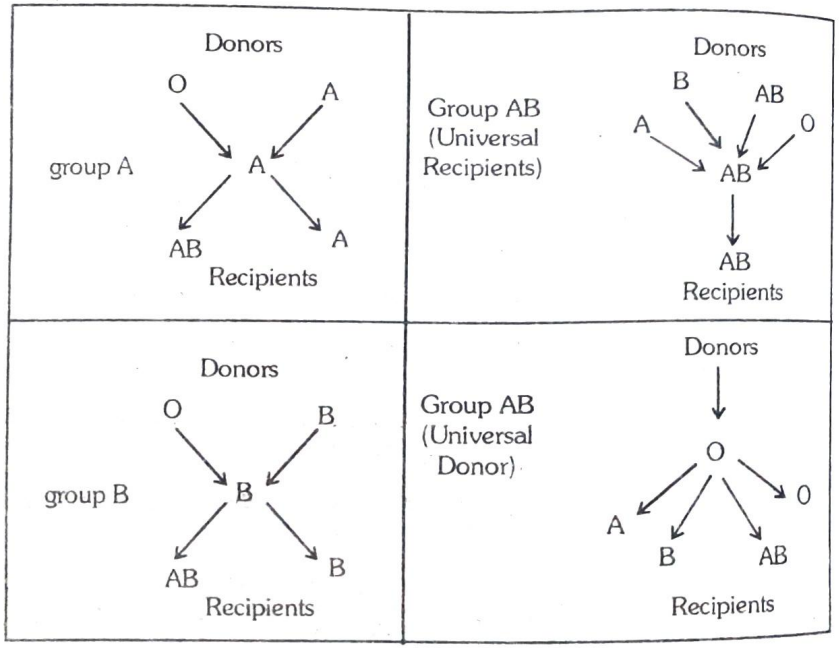


Fig. Blood Group Showing their Comparability

(2) **यूनिवर्सल रैसिपिऐण्ट या सर्वप्रापक–** जिन व्यक्तियों का रुधिर वर्ग AB होता है, उन्हें यूनिवर्सल रैसिपिऐण्ट कहते हैं, क्योंकि ये सभी रुधिर वर्गों के व्यक्तियों का रुधिर ले सकता है। इसका कारण है कि रुधिर सीरम या प्लाज्मा में दोनों ही a और b ऐण्टीबॉडीज अनुपस्थित होती हैं, इसलिये किसी भी डोनर के रुधिर के RBCs या ऐण्टीजन्स पर इनके रुधिर की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है।

(3) **वर्ग A –** जिन व्यक्तियों का रुधिर वर्ग A होता है, वे A और O रुधिर वर्गों का रुधिर ले सकते हैं. किन्तु इनको B एवं AB रुधिर वर्ग के व्यक्तियों का रुधिर नहीं दिया जा सकता है। इसका कारण यह है कि यदि B रुधिर वर्ग के रुधिर सीरम में उपस्थित b ऐण्टीबॉडीज के कारण आपस में चिपकने लगेंगी, जिससे A रुधिर वर्ग वाले व्यक्ति की ब्लड कैपिलरीज रोंधी हो जायेगी और रुधिर का संचरण नहीं हो पायेगा तथा परिणामस्वरूप उस व्यक्ति की मृत्यु हो जायेगी।

(4) **वर्ग B –** जिन व्यक्तियों का रुधिर B वर्ग का होता है, वे केवल रुधिर वर्ग B एवं O से रुधिर ले सकते हैं। किन्तु इन्हें A तथा B रुधिर वर्गों के व्यक्तियों का रुधिर नहीं दिया जा सकता है, इसका कारण यह है कि B रुधिर वर्ग के व्यक्ति के रुधिर सीरम में उपस्थित a ऐण्टीबॉडी, A तथा AB वर्गों के व्यक्तियों के RBCs में उपस्थित A ऐण्टिजन के साथ नहीं रह सकती। A ऐण्टिजन फैक्टर की उपस्थिति के कारण B वर्ग रैसिपिऐण्ट व्यक्ति के रुधिर सीरम में उपस्थित ऐण्टीबाडी a से प्रतिक्रिया करके आपस में समूहों में चिपकने या ऐग्यूटिनेशन के अन्तर्गत आ जायेंगे तथा रुधिर संचरण रुकने के कारण रोगी की मृत्यु हो जायेगी।

प्रश्न–10. Rh कारक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। [जीवाजी 2008]

उत्तर– Rh कारक (Rh factor)– Rh कारक की खोज Land's Steiner तथा Wiener ने सन् 1940 में रीसस जाति के बन्दरों में की, अतः इसका नाम रीसस कारक या Rh factor रखा गया। Rh factor कुछ मनुष्यों की R.B.C. में भी पाया जाता है और अन्य में अनुपस्थित होता है। ये Rh positive (Rh^+) तथा Rh negative (Rh^-) हैं। Rh^+ मनुष्य के R. B. C. में Rh antigen होता है तथा Rh^- मनुष्य के R.B.C. में कोई Rh antigen नहीं होता।

यूरोपियन देशों में 85% मनुष्य Rh^+ तथा 15% Rh^- होते हैं, भारत में 93% Rh^+ तथा 7% Rh^- मनुष्य होते हैं, जबकि चीन में 99.5% Rh^+ और केवल 0.5% मनुष्य Rh^- होते हैं। Rh antigen की कोई natural antibody नहीं होती। यद्यपि Rh antibody कृत्रिम रूप से पैदा की जा सकती हैं। एक Rh^- मनुष्य जब Rh^+ मनुष्य से रक्त ग्रहण करता है तो Rh antibody बनाता है। Rh^+ रक्त की थोड़ी मात्रा (0.5 ml) की Rh^- मनुष्य में antibody बनाने को प्रेरित कर सकती है। एक बार antibody बनने पर जीवन–भर रहती है।

यदि Rh^- (Negative) स्त्री का विवाह Rh^+ (Positive) पुरुष से होता है तो Rh^+ गर्भधारण करने पर ही सुग्राही संवेदनशील (Sensitised) हो जाता है। गर्भ के अन्दर परिवर्तन के समय भ्रूण (embryo) की कुछ रक्त कणिकायें (Corpuscles) स्त्री के रक्त से मिल जाती हैं। इस कारण प्रथम सन्तान लगभग सामान्य होती है। लेकिन दूसरी बार गर्भ धारण करने की स्थिति में स्त्री के antibody जरायु (Placenta) के द्वारा गर्भ में पहुँचकर

उसकी R.B.C. को हानि पहुँचाते हैं। इन antibody की प्रबलता इतनी अधिक हो जाती है कि ये गर्भ की R.B.C. पर आक्रमण कर उन्हें नष्ट कर देती हैं। स्त्री के इन antibodies तथा अजन्मे शिशु की R.B.C. के मध्य प्रतिक्रिया रक्त लयन (Hoemolysis) तथा रक्तक्षीणता (Anaemia) को उत्तेजित करती है। यह प्रतिक्रिया इतनी घातक होती है कि इसके कारण गर्भपात (Abortion) या नवजात शिशु की मृत्यु हो जाती है। इस स्थिति को नवजात शिशु का रूधिरलयी रोग (Hoemolytic disease of the newly bom) या गर्भ रक्ताणु कोरकता (Erythroblastosis foetalis) कहा जाता है। माँ के रक्त में Rh^+ foetal cells को शिशु के जन्म के तुरन्त बाद ant-D इन्जेक्शन देकर नष्ट किया जाता है।

प्रश्न–11. जुड़वा व आनुवंशिकी पर निबंध लिखिये। [भोपाल 2007,13]

अथवा

'मानव आनुवंशिकी में जुड़वा बच्चे' कथन की विवेचना कीजिये। [जीवाजी 2008,10]

अथवा

मोनोजाइगोटिक तथा डाइजाइगोटिक जुड़वा पर एक नोट लिखिये। [भोपाल 2006,10]

उत्तर– सामान्यतः मादा के शरीर में एक अण्डे के निषेचन से एक ही भ्रूण बनता है, लेकिन कुछ मादाओं में कभी-कभी एक ही निषेचित अण्डे से दो भ्रूण का विकास हो जाता है। इस तरह से विकसित होने वाले भ्रूण को जुड़वा (Twins) कहा जाता है। इन जुड़वा बच्चों का जोनोटाइप एक समान होता है और इनका लिंग भी एक ही होता है। जुड़वा कई तरह से उत्पन्न हो सकते हैं–

(i) कभी-कभी भ्रूण मॉरूला अवस्था तक विकसित होता है और फिर दो भागों में टूट जाता है। ये दोनों ही भाग अलग-अलग भ्रूण का निर्माण करते हैं। ऐसी अवस्था में कोरियोनिक सैक एक ही होता है, लेकिन ऐम्नियोटिक गुण अलग-अलग होते हैं।

(ii) कुछ में प्रारम्भिक भ्रूणीय विकास में बनी कोशिकायें एक अलग स्वस्थ भ्रूण बनाने में सक्षम होती हैं। प्रथम विभाजन के पश्चात् उत्पन्न दोनों कोशिकायें अलग होकर स्वतन्त्र रूप से भ्रूण का विकास करती हैं। इनके कोरियोनिक तथा ऐम्नियोटिक सैक अलग-अलग होते हैं।

जुड़वा तथा मानव आनुवंशिकता (Twins and Human genetics)– मानव आनुवंशिकता के अध्ययन में जुड़वा बच्चों की अहम् भूमिका मानी जाती है। सामान्य लक्षणों की वंशागति को मेण्डल के नियमों के आधार पर समझ सकते हैं, लेकिन कई लक्षण ऐसे होते हैं जिनमें अत्यधिक विभिन्नतायें पायी जाती हैं, जैसे- ऊँचाई, बीमारी के प्रति इम्यूनिटी दिमागी लक्षण, बाल के रंग, त्वचा के रंग आदि। इन लक्षणों की विभिन्नता में जीन के साथ-साथ वातावरण का प्रभाव होता है। जीन व वातावरण के आपसी अन्तःक्रिया (interaction) के अध्ययन में जुड़वा महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रायः जानवरों व पौधों में वातावरण तथा जीन के प्रभाव के अध्ययन के लिये समान लक्षणों व वांछित वातावरण की व्यवस्था की जा सकती है, लेकिन मानव में इस प्रकार के अध्ययन के लिये न तो समान लक्षणों वाले मनुष्य और न ही समान या वांछित वातावरण की व्यवस्था की जा सकती है। इसी समस्या को जुड़वां आसान बना देते हैं। एक लक्षण के प्रकटीकरण का अध्ययन कई जुड़वा में एक साथ किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन में शारीरिक व दिमागी लक्षणों का प्रयोग ज्यादा किया जाता है।

शारीरिक लक्षण (Physical traits)– शारीरिक लक्षणों पर आधारित अध्ययन अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अन्तर्गत प्रायः लम्बाई, भार, सिर की लम्बाई व सिर की चौड़ाई (Head width) आदि का अध्ययन किया जाता है और इसके परिणाम भी इस अध्ययन की सार्थकता को सिद्ध करते हैं।

एक अध्ययन के दौरान दो प्रकार के मोनोजायगोटिक जुड़वा (Monozygotic twins) लिये गये, एक जो साथ-साथ एक घर में पाले गये व दूसरे जो बहुत कम उम्र से ही अलग-अलग घरों में पाले गये। इन दोनों प्रकार के जुड़वा के विभिन्न लक्षणों जैसे- ऊँचाई, भार आदि के मात्रात्मक अन्तरों की तुलना की गयी। दोनों ही प्रकार के मोनोजायगोटिक जुड़वा में अन्तरों की समानता यह साबित करती है कि इन लक्षणों पर वातावरण का प्रभाव नगण्य है। केवल भार पर वातावरण का प्रभाव दिखायी पड़ता है।

दिमागी लक्षण (Mental Traits)– लक्षणों की आनुवांशिकता में वातावरण के प्रभाव के लिये जुड़वा दिमागी लक्षणों का भी अध्ययन करते हैं। दिमागी लक्षणों में प्राकृतिक अनियमितता, व्यवहार कुशलता, सजगता, चालाकी, मूर्खता, दिमागी प्रखरता, बुद्धिमानी (intelligence) व संगीत, साहित्य, गणित आदि में जन्मजात रुचि आदि आते हैं।

दिमागी लक्षणों की आनुवंशिकता के अध्ययन में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, जैसे- इन लक्षणों के दायरे में आँकने में असहजता पर्याप्त वैज्ञानिक उपकरणों का न होना।

इन लक्षणों में सबसे अधिक अध्ययन बुद्धिमानी का किया जाता है। इसके मापन के लिये IQ (Intelligence Quotient) का प्रयोग किया जाता है। एक अध्ययन के परिणामों के अनुसार साथ-साथ रहने वाले मोनोजायगोटिक ट्विन के IQ में 5.9 का अन्तर है तो अलग-अलग रहने वाले ऐसे ही ट्विन की IQ में 8.2 का अन्तर है। यह अन्तर डाइजायगोटिक ट्विन के IQ में 9.9 के अन्तर के करीब है और यह संकेत देता है कि बुद्धिमानी पर वातावरण का लालन-पालन का प्रभाव पड़ता है।

प्रश्न–12. जुड़वा कितने प्रकार के होते हैं? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर– जुड़वाँ के प्रकार–

(1) डाइजायगोटिक या फ्रैटर्नल ट्विन– वह स्थिति जब ओवरी से एक ही समय में एक साथ दो अण्डे निकलते हैं और दोनों ही अण्डे निषेचित होकर एक साथ गर्भाशय में सामान्य भ्रूणों की तरह पलते हैं। ऐसे जुड़वाँ बच्चों को डाइजायगोटिक अथवा फ्रैटर्नल ट्विन कहा जाता है। क्योंकि दोनों ही बच्चे अलग-अलग अण्डे तथा स्पर्म के निषेचन से बनते हैं, इसलिये इनका जीनोटाइप सामान्य भाइयों अथवा भाई-बहनों की तरह विभिन्न होता है।

(2) मोनोजायगोटिक या मैटर्नल ट्विन– वह स्थिति जब एक ही निषेचित अण्डे से दो भ्रूण बनते हैं, इन्हें मोनोजायगोटिक अथवा मैटर्नल ट्विन कहा जाता है। मोनोजायगोटिक ट्विन के दोनों बच्चों का जीनोटाइप समान होता है तथा ये दोनों एक ही लिंग के होते हैं। ये दिखने में एक ही समान होते हैं।

(3) सियामीस ट्विन– बहुत ही कम अवस्था में विभाजन भ्रूणीय डिस्क बनने के बाद होता है, जिसके फलस्वरूप पूर्ण विभाजन नहीं हो पाता है और जुड़े हुये जुड़वां विकसित होते हैं। इन्हें सियामीज जुड़वा कहते हैं। इनमें प्रायः चार प्रकार का संयोजन पाया जाता है–

(i) **थोरेकोपेगस**– दोनों जुड़वा वक्ष से आपस में जुड़े रहते हैं।

(ii) **क्रेनियोपेगस**– दोनों जुड़वाँ सिर से आपस में जुड़े रहते हैं। ऐसी ही जुड़वा बहनों की हाल में अलग करने के प्रयास में ऑपरेशन के बाद मृत्यु हो गयी। उनकी उम्र लगभग 30 साल थी।

(iii) **इश्चियोपेगस**– ये जुड़वाँ अपने जंघा स्थानों से आपस में जुड़े रहते हैं।

(iv) **पायोपेगस**– इनका शरीर अपनी लम्बाई में पूरा ही जुड़ा रहता है।

इकाई-5

लघु एवं दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर-

प्रश्न–1. DNA रिकॉम्बीनेंट तकनीक का वर्णन कीजिये। [भोपाल 2007,09]

अथवा

प्रतिबन्ध या रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लियस पर टिप्पणी लिखिये। [भोपाल 2006 जीवाजी 2008]

उत्तर– DNA रिकॉम्बिनेन्ट तकनीक (DNA Recombinant Technology)– यह जेनेटिक अभियांत्रिकी के अन्तर्गत आता है, जिसके अन्तर्गत किसी जीन को कोशिका से अलग करके उसमें उपस्थित न्यूक्लियोटाइड के क्रम की जानकारी प्राप्त करते हैं तथा फिर कृत्रिम रूप से न्यूक्लियोटाइड का संश्लेषण करके उसी क्रम में व्यवस्थित करके कृत्रिम DNA के अणु का निर्माण करते हैं।

वह क्रिया जिसके अन्तर्गत किसी मनचाही, DNA का कृत्रिम रूप से निर्माण करते हैं, DNA रिकॉम्बिनेन्ट तकनीक कहलाती है। सभी जीवधारियों में DNA मुख्य जेनेटिक पदार्थ के रूप में पाया जाता है। **स्मिथ तथा नाथन्स** (1970) ने एक नये वर्ग के एन्जाइम्स की खोज की जिसे रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लिऐज कहते हैं। ये एन्जाइम्स एक रासायनिक कैंची के रूप में कार्य करते हैं तथा DNA को छोटे-छोटे टुकड़ों में काट देते हैं। इस तरह के दो विभिन्न DNA के टुकड़ों को संयोजित करने से जो DNA बनता है उसे रिकॉम्बिनेन्ट DNA कहते हैं तथा इस तरह का DNA बनाने के लिये जो तकनीक प्रयुक्त होती हैं उसे रीकॉम्बिनेन्ट DNA टैक्नोलॉजी कहते हैं जो जेनेटिक इंजीनियरिंग का प्रमुख साधन माना जाता है। रीकॉम्बिनेन्ट DNA वास्तव में एक भिन्न जीव समुदाय के DNA तथा एक कैरियर DNA के परस्पर कोवैलेन्ट लिंकेज के द्वारा निर्मित होता है।

रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लियेजेज– रीकॉम्बिनेन्ट DNA के निर्माण में ये एन्जाइम्स महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनको निम्न श्रेणियों में बाँटा जा सकता है–

(1) **प्रथम श्रेणी के एन्जाइम (Class I Enzymes)**– ये एन्जाइम्स यद्यपि DNA के न्यूक्लियोटाइड सीक्वेन्स को पहचानते हैं किन्तु ये उन्हें विशिष्ट स्थानों पर काटने में सक्षम नहीं होते। इस श्रेणी के एन्जाइम्स rDNA के निर्माण में अधिक उपयोगी नहीं होते।

(2) **द्वितीय श्रेणी के एन्जाइम्स (Class II Enzymes)**– ये एन्जाइम्स DNA के न्यूक्लियोटाइड सीक्वेंस को पहचानने के साथ-साथ DNA को विशिष्ट स्थानों पर विभक्त करने की क्षमता रखते हैं अतः ये rDNA के निर्माण के लिये बहुत महत्व के हैं। इन श्रेणी के लगभग 8- एन्जाइम्स के बारे में ज्ञात है।

(3) **तृतीय श्रेणी के एन्जाइम (Class III Enzymes)**– ये एन्जाइम DNA को एक निश्चित लम्बाई के टुकड़ों में विभक्त कर सकते हैं किन्तु इनका न्यूक्लियोटाइड सीक्वेंस निश्चित नहीं होता।

रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लिएजेज अधिकांश बैक्टीरिया में प्राकृतिक रूप से पाये जाते हैं, जो फॉरेन DNA से इनकी रक्षा करते हैं। जब कोई फॉरेन DNA बैक्टीरिया पर आक्रमण करता है, तब ये एन्जाइम उसे पहचानकर छोटे-छोटे टुकड़ों में काट देते हैं और बैक्टीरिया नष्ट होने से बच जाता है।

वाहक या वैक्टर (Carrier or Vector)– r DNA के निर्माण के लिये एक वाहक की आवश्यकता होती है। ताकि पृथक्करण के बाद फोरेन DNA को उससे जोड़कर होस्ट सेल में स्थानान्तरित किया जा सके। इस कार्य के लिये प्लास्मिड्स (Plasmids) या लेम्डा बैक्टीरियोफेज का प्रयोग किया जाता है। प्लाज्मिड्स सूक्ष्म और गोलाकार डुप्लेक्स DNA के अणु होते हैं जो अधिकांश बैक्टीरिया में स्वतंत्र रूप से पाये जाते हैं। इनमें बैक्टीरिया के क्रोमोसोमल DNA से पृथक रूप से स्वतन्त्रतापूर्वक रेप्लिकेशन करने की क्षमता होती है। r DNA के निर्माण के लिये वेक्टर में निम्न विशेषतायें होनी चाहिये–

(a) वैक्टर के DNA में किसी रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लियेजेज द्वारा विशेष स्थान पर विभक्त होने की क्षमता होनी चाहिये।

(b) वैक्टर DNA में फॉरेन DNA को स्वीकार करने की क्षमता होनी चाहिये।

(c) वैक्टर में अवांछित फॉरेन DNA को अस्वीकार करने की क्षमता होनी चाहिये।

रीकॉम्बिनेन्ट DNA का निर्माण– सबसे पहले बैक्टीरिया से प्लाज्मिड्स को जिसे कैरियर या वाहक के रूप में प्रयोग करते हैं, अल्ट्रासेण्ट्रीफ्यूगेशन विधि द्वारा अलग करते हैं। इसके बाद रेस्ट्रिक्शन एण्डोन्यूक्लियेजेज की सहायता से इसे एक विशिष्ट स्थान पर विभक्त करते हैं। इसी प्रकार यूकैरियोटिक DNA (फॉरेन DNA) को भी उसी एन्जाइम की सहायता से विभक्त करके उसका एक विशेष टुकड़ा अलग कर लेते हैं। उपर्युक्त दोनों क्रियाओं में एक ही एन्जाइम के प्रयोग से DNA के विशिष्ट खण्ड के दोनों सिरे प्लाज्मिड के सिरों से समंजित होने योग्य बन जाते हैं ऐसे सिरों को चिप-चिपे सिरे या स्टिकी एण्ड्स कहते है। इसके बाद दोनों DNA को (प्लाज्मिड्स और फॉरेन DNA को) कृत्रिम माध्यम में परस्पर समंजन (Anneal) करने के लिये रखते हैं, यदि वे किसी कारण से नहीं मिलते तब टर्मिनल ट्रांसफरेज की सहायता से उनमें अन्य आवश्यक न्यूक्लियोटाइड जोड़कर समंजन योग्य बनाया जाता है। इसके बाद DNA लाइगेज एन्जाइम की मदद से दोनों टुकड़ों को परस्पर कोवेलेण्टली लिंक कर दिया जाता है जिससे एक नये DNA या r- DNA का निर्माण हो जाता है।

r- DNA का ट्रान्सफारमेशन– जब किसी स्वतंत्र DNA को बैक्टीरियल सेल में स्थानान्तरित किया जाता है तब इस क्रिया को ट्रान्सफारमेशन कहते हैं तथा यदि स्थानान्तरण किसी वाइरस की सहायता से सम्पन्न कराया जाता है, तो इसे ट्रान्सडक्शन कहते हैं। r- DNA के निर्माण के बाद उसे वृद्धि एवं रेप्लिकेशन के लिये किसी क्लोनिंग जीव (साधारणतः E. Coli बैक्टीरिया) में स्थानान्तरित किया जाता है। E. Coli बैक्टीरिया की कोशा को r- DNA के प्रवेश हेतु तत्पर करने के लिये उसे कुछ समय के लिये कैल्शियम क्लोराइड के घोल में

रखा जाता है। ऐसी कोशिका जो r- DNA को स्वीकार कर लेती है ट्रान्सफार्मड सेल कहलाती है। इस सेल को वृद्धि एवं प्रजनन के लिये उचित कल्चर माध्यम में आइसोलेशन में रखते हैं। यह कोशा अलैंगिक विधि द्वारा प्रजनन करके निर्धारित असंगत जीन (Implanted foreign gene) युक्त अनेक कोशायें बनाती हैं।

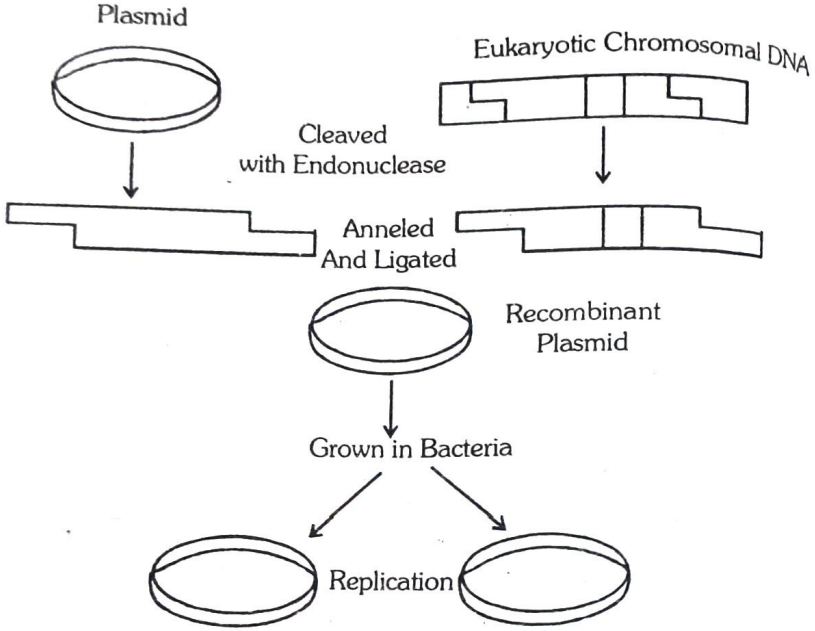


Fig.- Production of a recombinant DNA molecule and its cloning

तथा उनमें उपस्थित r- DNA बैक्टीरिया की प्रोटीन के अतिरिक्त उन विशिष्ट प्रोटीन का भी संश्लेषण करती है जोकि इमपलान्टेड फॉरेन जीन द्वारा निर्देशित होती है।

प्रश्न–2. काइमेरिक DNA से आप क्या समझते हैं? इसके निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन कीजिये। [उज्जैन 2013]

उत्तर– काइमेरिक DNA– रिकॉम्बिनेन्ट DNA वह वेक्टर है, जिसमें कोई इच्छित DNA खण्ड जोड़ा गया हो।

इस विधि के द्वारा किसी जीव के किसी भी जीन को किसी अन्य जीव के किसी भी जीन से जोड़ कर नये गुणधर्मों वाला जीन उत्पन्न कर सकते हैं। ऐसे जीनों को काइमेरिक जीन कहते हैं। काइमेरिक जीनों का निर्माण एवं उन्हें वेक्टरों से जोड़ना रिकॉम्बिनेन्ट DNA टेक्नोलॉजी कहलाता है। जिन वेक्टरों में फॉरेन DNA जुड़ा होता है, उन्हें काइमेरिक वेक्टर तथा फॉरेन DNA को DNA इन्सर्ट कहा जाता है तथा इस प्रकार प्राप्त DNA काइमेरिक DNA कहलाता है।

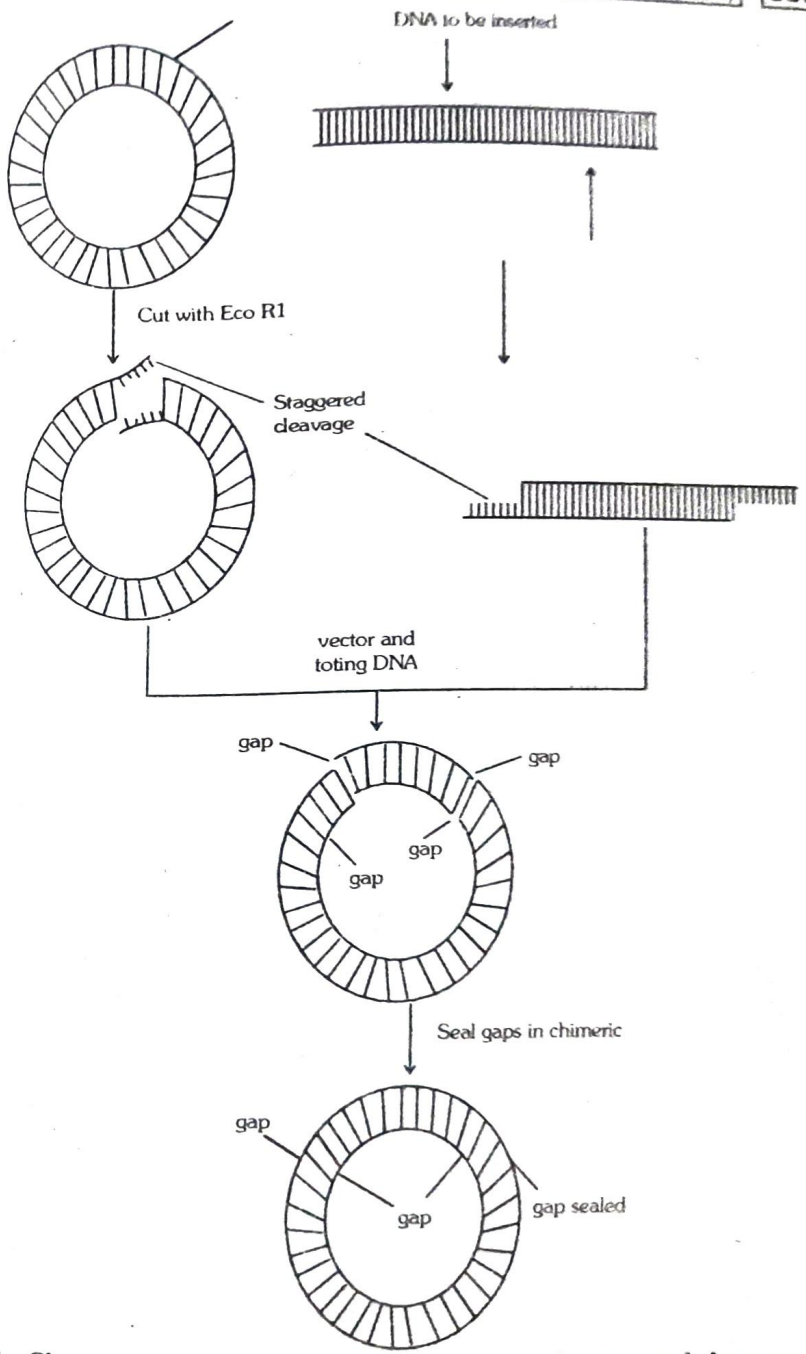


Fig. Cloning of a DNA segment in a plasmid vector by staggered cleavages, both in vector DNA and foreign DNA to be cloned

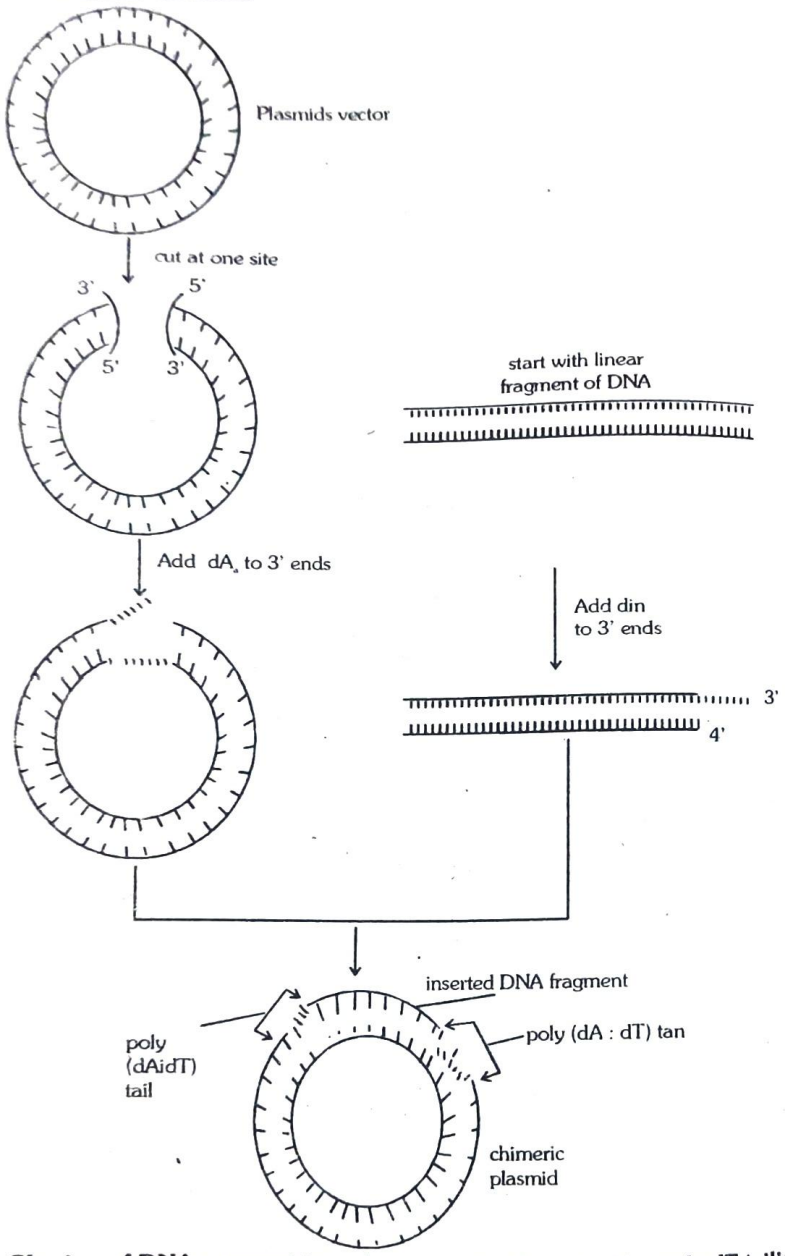


Fig. Cloning of DNA segment in a plasmid vector by poly dA : poly dT tailing technique

काइमेरिक DNA का निर्माण (Formation Chimeric DNA)– काइमेरिक DNA का निर्माण किसी वाहक के DNA में फॉरेन DNA जोड़ने से होता है। काइमेरिक DNA की मदद से किसी जीन या DNA के छोटे टुकड़े की क्लोनिंग की जाती है। काइमेरिक DNA का

निर्माण फॉरेन DNA के सिरों को वाहक के DNA के सिरो से जोड़ने से होता है। DNA अणु के सिरों के विभिन्न विभाजन के कारण काइमेरिक DNA का निर्माण निम्न तरीकों से हो सकता है–

1. **पेलिन्ड्रोम तथा स्टेगार्ड विभाजन (Palindromes and Staggared cleavage)**– पेलिन्ड्रोम साइटो पर स्टेगार्ड काट के कारण कोहैसिव छोर उत्पन्न होते हैं। यदि वाहक तथा फॉरेन DNA को समान प्रतिबंध एन्जाइम से काटा जाये तो दोनों में समान प्रकार के सिरे उत्पन्न होंगे, जोकि आपस में मिलाने पर जुड़ जायेंगे, जिससे काइमेरिक DNA का निर्माण आसान हो जाता है।

2. **ब्लंट विभाजन (Blunt Cleavage)**– रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम से उत्पन्न ब्लन्ट सिरों वाले वाहक DNA के स्ट्रेण्डों में से 3 सिरे पर एक स्ट्रेण्ड वाली पॉली– A पूँछ तथा फॉरेन DNA के 3′ सिरों पर पॉली–T पूँछ का डी ऑक्सी–न्यूक्लियोराइडिल ट्रांसफरेज द्वारा संश्लेषण किया जाता है, इसे टेलिंग (Tailing) कहते हैं। इस प्रकार ब्लंट सिरों वाले DNA, कोहेसिव सिरों वाले DNA में परिवर्तित हो जाते हैं तथा आपस में आसानी से जुड़ जाते हैं।

प्रश्न–3. प्रतिबन्ध एन्जाइम से आप क्या समझते हो? इसकी क्रियाविधि समझाइये।

उत्तर– **प्रतिबंध एन्जाइम (Restriction Enzymes)**– किसी DNA के एक विशेष गुण वाले भाग की क्लोनिंग के लिये हमें उस भाग को DNA के मूल अणु से काट कर अलग करना पड़ता है। इसके लिये विशेष प्रकार के एन्जाइम प्रयुक्त किये जाते हैं, जो DNA अणु को एक विशेष नाइट्रोजिनस बेस वाली निश्चित जगह से काटते हैं। इन एन्जाइमों को प्रतिबंध एन्जाइम (Restriction Engyme) कहते हैं। चूँकि ये एन्जाइम DNA अणु को बीच से काटते हैं, इसलिये इन्हें एन्डोन्यूक्लियेज भी कहते हैं। काटने की क्रिया को क्लीवेज तथा इस विशेष जगह को रिकॉग्नीशन साइट कहा जाता है। विभिन्न प्रतिबंध एण्डोन्यूक्लिएजों के लिये रिकॉग्नीशन साइट अलग एवं भिन्न होती हैं। प्रतिबंध एन्जाइम मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं–

(i) **टाइप– I** एन्जाइमों के रिकॉग्नीशन साइट 15 बेस पेयर लम्बी होती है और ये DNA अणु को साइट में स्थित "TCA" बेस क्रम के 5′ छोर से 1000 बेस पेयर दूर काटते हैं। जैसे Eco K, Eco B।

(ii) **टाइप– II** एन्जाइम DNA अणुओं को साइट के भीतर या उनके एकदम करीब काटते हैं अब तक लगभग 350 ऐसे एन्जाइमों की खोज की जा चुकी है। यही एन्जाइम जीन क्लोनिंग में प्रयुक्त किये जाते हैं, जैसे– Eco RI, Hind II।

(iii) **टाइप– III** एन्जाइम टाइप I एवं टाइप II के इन्टरमीडिएट होते हैं ये DNA अणुओं को साइट के पास में काटते हैं, जैसे– Eco PI, Eco P15, Hinf III

इन एन्जाइमों के नाम अंग्रेजी वर्णमाला के तीन या चार अक्षरों के होते हैं, जो इनकी उत्पत्ति की पहचान बताते हैं तथा साथ में लगे रोमन अंक (I, II, III आदि) समान उत्पत्ति वाले कई एन्जाइमों की पहचान करते हैं। उदाहरण के लिये, Eco RI की उत्पत्ति ई. कोली (E. Coli) से तथा Hpa I की, उत्पत्ति हीमोफिलस पैरेन्फ्लुन्जी से हुई है।

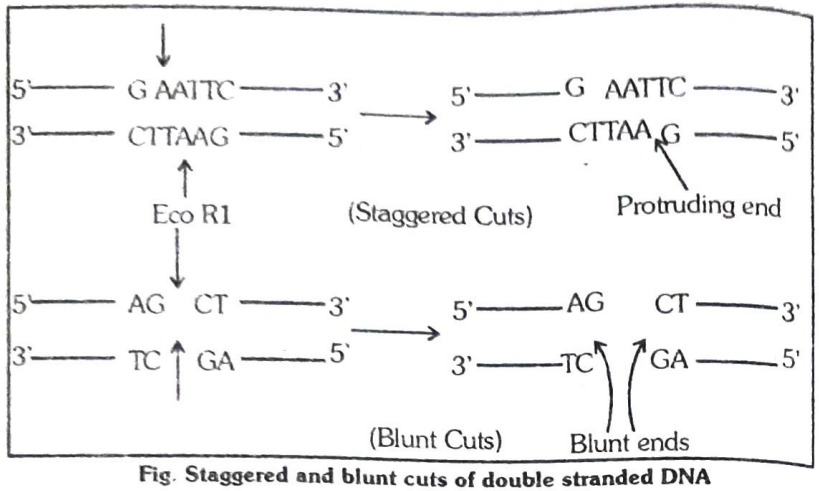


Fig. Staggered and blunt cuts of double stranded DNA

तीनों प्रकार के एन्जाइमों में से टाइप- II प्रकार के एन्जाइम जीन क्लोनिंग के लिये सबसे महत्वपूर्ण हैं। इन एन्जाइमों के साइट के bp क्रम रोटेशनल सिमेट्री वाले पेलिन्ड्रोम होते हैं। अधिकांश एन्जाइमों के साइट के bp क्रम 4, 5 या 6 bP लम्बे होते हैं और ये GC बहुल होते हैं। इन एन्जाइमों द्वारा या तो स्टेगार्ड या ब्लंट काट किया जाता है। स्टेगार्ड काट में DNA के अणु के दोनो स्ट्रैण्ड अलग-अलग जगहों पर काटे जाते हैं, जिससे बाहर निकले हुये छोर प्राप्त होते हैं ऐसे छोरों में एक स्ट्रैण्ड दूसरे स्ट्रैण्ड से कुछ bp बड़ा होता है। साइट के bp क्रमों के पेलिन्ड्रोमी होने के कारण एक ही एन्जाइम द्वारा उत्पन्न प्रोट्रूडिंग छोर एक-दूसरे के पूरक होते हैं अतः इन्हें स्टिकी (Sticky) या कोहेसिव (Cohesive) छोर कहते हैं।

इस प्रकार के कटे हुये DNA के टुकड़े स्टिकी छोरों के कारण एक-दूसरे के छोर से चिपक जाते हैं।

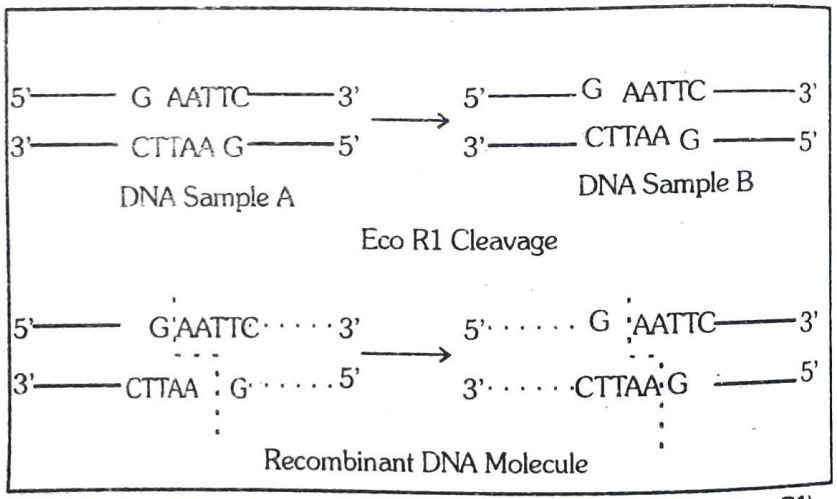


Fig. Protruding cohesive ends produced by one restriction enzyme(Eco R1) cleavage in two DNA

कुछ एन्जाइम DNA अणु के दोनों स्ट्रेण्डों को एक ही स्थान पर काटते हैं, जिससे ब्लंट छोर उत्पन्न होते हैं। ये छोर आपस में चिपकते नहीं हैं।

प्रश्न-1. सदर्न, नार्दन तथा वेस्टर्न ब्लॉटिंग तकनीकों का वर्णन कीजिये। इनके अनुप्रयोग की विवेचना कीजिये। [रीवा 2001,13 इन्दौर 2004 सागर 2008]

अथवा

नार्दन ब्लोटिंग तकनीकी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

[जीवाजी 2004,07,10,16 सागर 2007,17]

उत्तर- सदर्न ब्लॉटिंग **(Southern blotting)** का विकास ई. एम. सदर्न **(E.M. Southern)** ने किया। इस विधि से यह पता लगाया जाता है कि किसी DNA के मिश्रण में कोई वांछित क्रम उपस्थित है या नहीं। इसके लिये वांछित DNA क्रम के एक खण्ड का DNA प्रोब के रूप में प्रयोग किया जाता है।

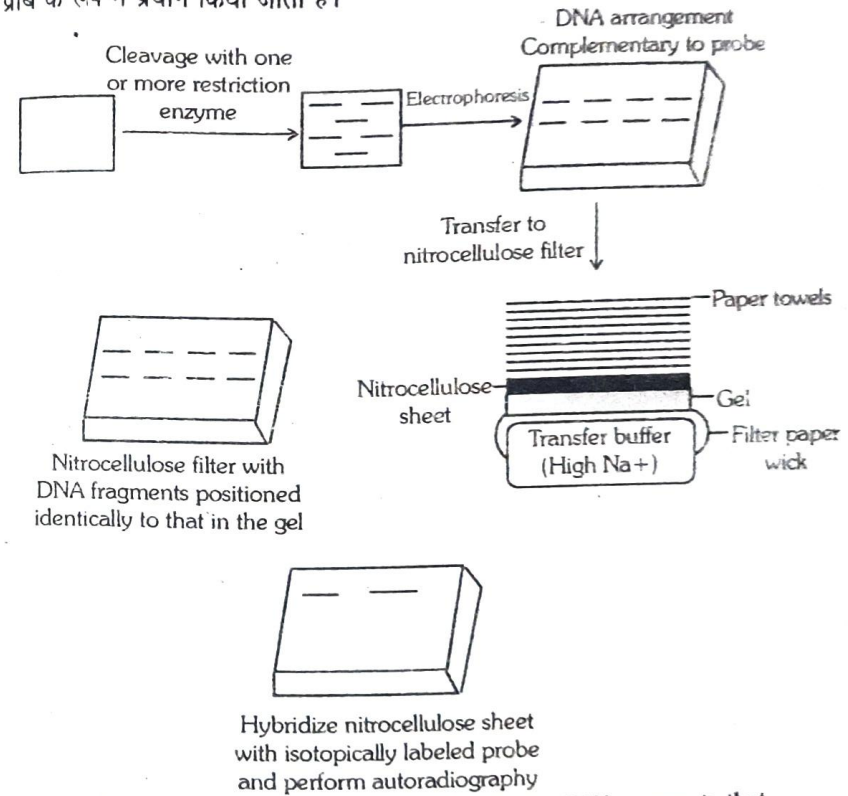


Fig. Southern blotting method of analyzing DNA segments that share homology with a mucleic acid probe

दिये गये DNA (DNA Sample) का यांत्रिक विधि से या प्रतिबंध एन्डोन्यूक्लिएज (Restriction endonuclease) द्वारा पाचन (digestion) किया जाता है, जिससे उसे संख्य खण्डों में विभाजित करते हैं। खण्डों के इस मिश्रण की इलेक्ट्रोफोरेसिस (electrophoresis) की जाती है, इससे DNA अपने आकार के अनुरूप अलग होते हैं। एगरोस जेल (agarose

gel) का उपयोग 20Kb आकार तक के खण्डों के लिये एवं पॉलिएक्रिमाइड जेल (Polyacrylamide gel) का उपयोग अपेक्षाकृत छोटे खण्डों के लिये किया जाता है। अब जेल को क्षार (alkali) से अभिकृत (treat) किया जाता है, जिससे DNA के दोनों स्ट्रैण्ड अलग हो जाते हैं। इन्हें जेल से एक नाइट्रोसैल्युलोज फिल्टर (Nitrocellulose filter) पर स्थानान्तरित किया जाता है। इसके लिये जेल को उपयुक्त बफर (buffer) से तर फिल्टर कागज पर रखा जाता है, इसके ऊपर नाइट्रोसैल्यूलोस फिल्टर की तह को रखा जाता है।

कैपिलरी (Capillary) क्रिया के कारण बफर नीचे के फिल्टर कागज से जेल एवं नाइट्रोसैल्यूलोस में से होता हुआ सूखे फिल्टर कागजों में रखा जाता है। बफर के साथ ही जेल में से DNA खण्ड भी ऊपर जाते हैं और नाइट्रोसैल्युलोज फिल्टर में अटक जाते हैं। यह प्रक्रिया ब्लोटिंग (blotting) कहलाती है। नाइट्रोसैल्यूलोज फिल्टर में DNA खण्डों की वहीं सापेक्ष स्थिति बनी रहती है, जो कि जेल में होते हैं। इस नाइट्रोसैल्यूलोज फिल्टर को 80° पर बेक (bake) करते हैं जिससे DNA अणु फिल्टर से स्थायी रूप से चिपक जाते हैं। इस फिल्टर को एक घोल में प्रीट्रीट (Pretreat) करने के बाद उपयुक्त रेडियोधर्मी (32-P से चिन्हित) एक स्ट्रैण्ड वाले DNA प्रोब के घोल में रखते हैं। यहाँ प्रोब अपने पूरक DNA क्रम से ऐनील (Anneal) हो जाता है। अब फिल्टर को कई बार उपयुक्त घोल से धोते हैं जिससे असंकरित (unhybridized) प्रोब निकल जाते हैं। इस फिल्टर को एक X- किरण फिल्म पर प्रतिबिम्बित किया जाता है तथा फिल्म डेवलेप करने पर उन स्थलों पर बैण्ड दिखायी पड़ते हैं जहाँ पर प्रोब के पूरक क्रम DNA खण्ड जेल में उपस्थित रहे होंगे।

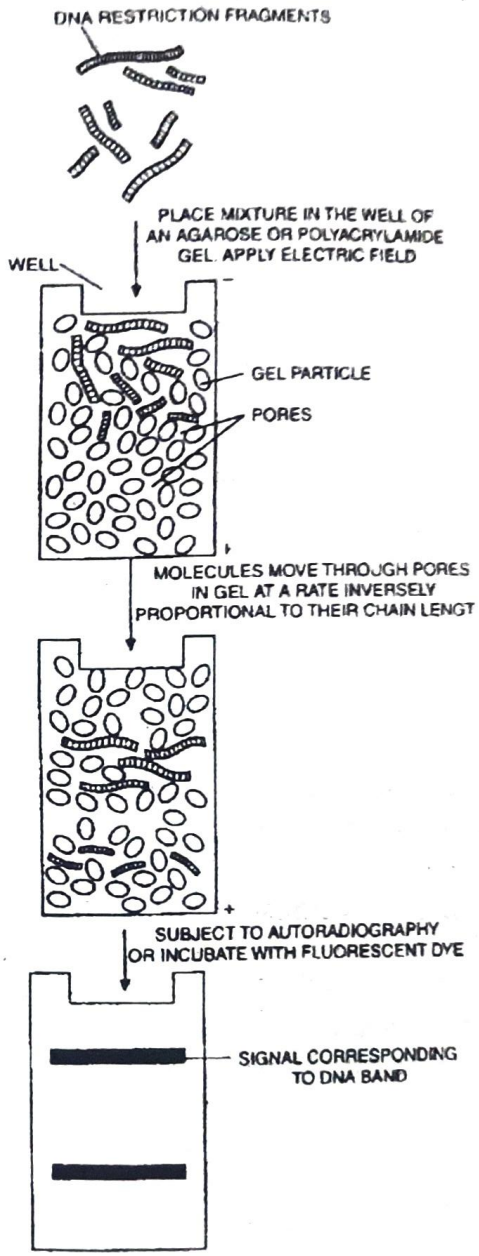
यह विधि अत्यन्त दक्ष एवं संवेदनशील (Sensitive) है। इसका उपयोग DNA फिंगर प्रिंटिंग (DNA Finger Printing) RFLP चित्रण (Mapping) आदि में करते हैं।

नार्दर्न ब्लॉटिंग (Northern Blotting)– यह विधि सदर्न ब्लॉटिंग का विस्तार है और इसका नाम भी उस आधार पर रखा गया है। (सदर्न के विपरीत दिशा, नार्दर्न) इसके उपयोग से DNA क्रम पूरक RNA की पहचान की जाती है तथा उसे अलग किया जाता है।

वेस्टर्न ब्लॉटिंग (Western blotting)– इस विधि के उपयोग से प्रोटीनों के मिश्रण में किसी प्रोटीन विशेष की उपस्थिति को सुस्पष्ट रूप से ज्ञात किया जाता है। इसमें पालिएक्रिलामाइड जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस (Polyacrylamide gel electrophoresis) का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रोटीनों के बैण्ड की पहचान किसी विशिष्ट प्रतिरक्षी (Antibody) या लेक्टिन (lectin) की सहायता से की जाती है। अक्सर पहचान की क्रिया एक सैण्डविच अभिक्रिया (Sandwitch reaction) होती है। इसमें झिल्ली से जुड़े प्रोटीन अणुओं से सामान्य प्रतिरक्षी अणु आबद्ध किये जाते हैं तथा पुनः इस पर कोई अन्य रेडियोधर्मी अणु आबद्ध किया जा सकता है।

प्रश्न–5. जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस तथा डाट ब्लाट तथा स्लाट ब्लाट तकनीक पर टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस– इस तकनीक के द्वारा DNA के खण्डों को उनके आकार तथा वजन के अनुसार पृथक किया जा सकता है। जीनोमिक DNA को ऊतक से अलग करने के बाद प्रतिबन्ध एन्जाइम से काटते हैं और इन खण्डों को एगरोज या पॉलीएक्रिलामाइड जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस की सहायता से अलग करते हैं।



चित्र– **Separation of DNA fragments of different lengths by gel electrophoresis**

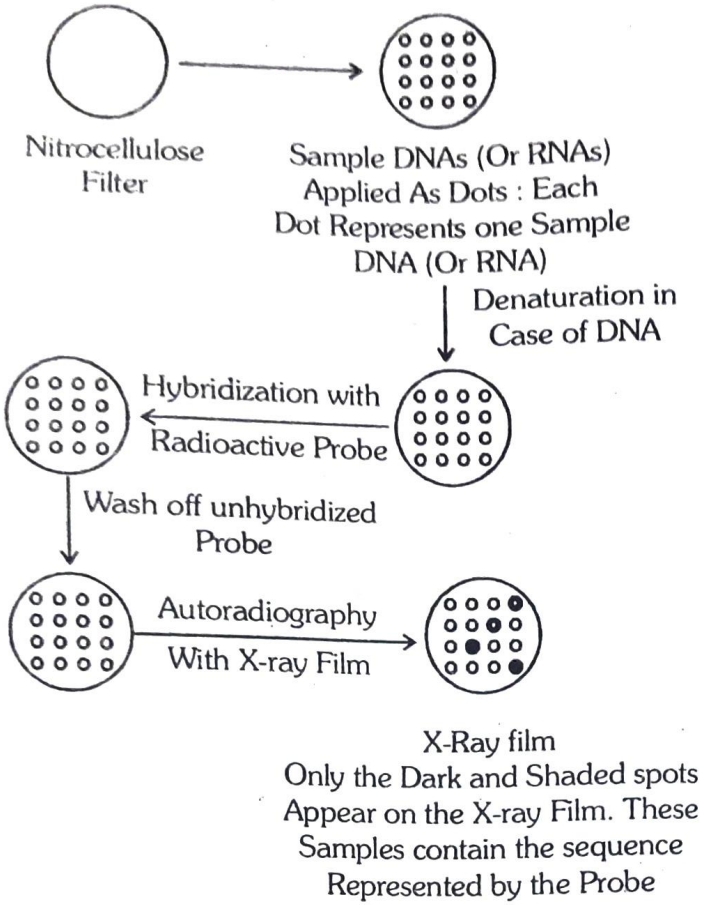


Fig. Diagrammatic sketch of dot blot method

किसी प्रोब का इस्तेमाल करने से पहले DNA खण्डों को इस विधि द्वारा अलग किया जाता है। जैल इलेक्ट्रोफोरेसिस में न्यूक्लिक अम्लों (DNA, RNA) के खण्डों को उच्च वोल्टेज वाली विद्युत धारा की सहायता से उनके आवेश तथा भार के अनुपात से विलगित करते हैं। DNA खण्डों के मिश्रण को जैल से बने कुओं में भरते हैं तथा जैल के दोनों तरफ (+) व (–) पोल लगाकर विद्युत प्रवाहित करते हैं। विद्युत आवेश के कारण बड़े DNA खण्ड कुओं के पास ही रह जाते हैं तथा छोटे खण्ड दूर चले जाते हैं। इसलिये अलग–अलग आकार के DNA खण्ड अपना एक अलग बैण्ड बनाते हैं।

डाट ब्लाट तथा स्लाट ब्लाट तकनीक–इस विधि की सहायता से कई ऊतकों में किसी वांछित DNA खण्ड अथवा m-RNA की उपस्थिति का पता चलता है। इसमें अलग किये गये DNA को अलग–अलग डाट के रूप में एक नाइट्रोसेल्युलोस फिल्टर पर लगाते हैं तथा इसे डीनेचर करने के बाद 80°C पर बेक करते हैं जिससे एक स्ट्रैण्ड DNA फिल्टर से स्थायी

रूप से चिपक जाते हैं। इस फिल्टर को पूर्व उपचारित करने के बाद रेडियोधर्मी एक स्ट्रैण्ड वाले DNA प्रोब के घोल में डालते हैं जहाँ प्रोब केवल उन डाटों से संकरण करता है जिनमें उसके पूरक DNA क्रम उपस्थित होंगे।

डाटों की पहचान ऑटोरेडियोग्राफी द्वारा की जाती है। डाट के रंग की तीव्रता उन डाट में प्रोब के पूरक क्रम की सान्द्रता के समानुपात में होगी। इस विधि से विभिन्न स्पीशीजों में प्रोब के पूरक क्रमों की बहुतायत का भी पता लगाया जाता है। कई बार इस तकनीक में DNA स्पॉट एक मशीन में बने स्लाट की मदद से लगाया जाता है जो कि आकार में अण्डे के समान लम्बे होते हैं। इन्हें डाट ब्लाट की तरह ही उपयोग किया जाता है।

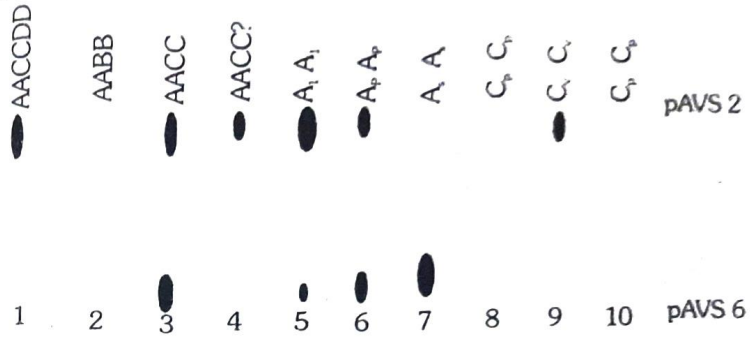


Fig. Slot blots from genomic DNA of 10 Avena species, showing difference in abudance of sequence related to two different probes (pVAs 2, pAVS 6)

प्रश्न–6. वेक्टर क्या है? वेक्टर के विभिन्न गुणों का वर्णन कीजिये।

उत्तर– वेक्टर **(Vector)**– वेक्टर ऐसा DNA अणु है जो उपयुक्त होस्ट कोशिकाओं में स्वतन्त्र रेप्लीकेशन करते हैं और जिनमें इच्छित DNA खण्डों को समाकलित (insert) किया जा सकता है। उदाहरण– प्लाज्मिड, कॉस्मिड, फाज तथा वाइरस।

गुण–

1. इसका विलगन तथा शोधन सरल एवं सुविधाजनक होना चाहिये।
2. इसे होस्ट कोशिका में सरलतापूर्वक पहुँचाया जा सकता हो, अर्थात् ट्रान्सफोर्मेशन सरल होना चाहिये।
3. इसका रेप्लीकेशन होस्ट कोशिका के रेप्लीकेशन से स्ववतन्त्र होना चाहिये।
4. इसमें उपर्युक्त रिपोर्टर जीन होने चाहिये, जिससे ट्रान्सफॉर्मड होस्ट कोशिका की पहचान आसानी से की जा सके।
5. जीन ट्रान्सफर के लिये वेक्टर में इतनी क्षमता होनी चाहिये कि या तो वह स्वयं या अपने फॉरेन DNA को होस्ट क्रोमोसोम में समाकलित कर सकें।
6. वेक्टर में उपर्युक्त स्थलों में अधिक से अधिक रेस्ट्रिक्टेड एन्जाइमों के साइट होने चाहिये, जिससे उसमें DNA खण्ड के समाकलन में सुविधा हो।
7. इसमें ऐसे रिपोर्टर जीन होने चाहिये, जिससे कि फॉरेन DNA युक्त वेक्टर द्वारा ट्रान्सफॉर्मड होस्ट कोशिकाओं को अन्य होस्ट कोशिकाओं से अलग पहचाना जा सके।

8. यदि वेक्टर में फॉरेन DNA की अभिव्यक्ति करनी है, तो इसमें प्रमोटर, ऑपरेटर आदि जीन एवं अन्य bP क्रम उपस्थित होने चाहिये।

प्रश्न–7. प्लाज्मिड वेक्टर से आप क्या समझते हो? ये कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर– **प्लाज्मिड वेक्टर (Plasmid Vector)**– वैक्टीरियल कोशिका में क्रोमोसोम से भिन्न एक सरकुलर, स्वतन्त्र रेप्लीकेशन एवं प्रेषण में सक्षम DNA अणु होते हैं, जिन्हें प्लाज्मिड कहते हैं। ये बैक्टीरिया के क्रोमोसोम में समाकलित भी हो सकते हैं। कुछ विशेष परिस्थितियों के अलावा ये बैक्टीरिया के जीवित रहने के लिये जरूरी नहीं होते। ये निम्न प्रकार के होते हैं–

(i) **F प्लाज्मिड**– कॉन्जुगेशन के लिये उत्तरदायी होते हैं।

(ii) **R प्लाज्मिड**– एंटीबायोटिक्स से रेसिस्टेन्स के जीन होते हैं।

(iii) **कोल प्लाज्मिड**– कोलिसिन प्रोटीन का उत्पादन करते हैं, जो संवेदी ई.–कोली (E Coli) कोशिकाओं के लिये टॉक्सिक होता है।

ट्रान्समिसिबिलिटी (Tranmissibitity) के आधार पर प्लाज्मिडों को दो वर्गों में बाँटा जाता है–

(i) कॉन्जुगेटिव (Conjugative), जो कोन्जुगेशन के माध्यम से DNA प्रेषण करते हैं, जैसे F प्लाज्मिड तथा कुछ R प्लाज्मिड आदि।

(ii) नॉन–कॉन्जुगेटिव (Non-Conjugative), जो कॉन्जुगेशन प्रेरित नहीं करते, जैसे कई R प्लाज्मिड, अधिकांश Col प्लाज्मिड।

बैक्टीरिया की कोशिका में प्लाज्मिड की या तो एक प्रति होती है या कई प्रतियाँ होती हैं। पहली अवस्था में प्लाज्मिड का रेप्लीकेशन बैक्टीरिया के क्रोमोसोम के साथ ही होता है, वहीं दूसरी अवस्था में प्लाज्मिड का रेप्लीकेशन स्वतन्त्र रूप में तथा बैक्टीरिया के क्रोमोसोम की अपेक्षा कहीं अधिक तेजी से होता है। एक बैक्टीरिया में लगभग 1000 प्लाज्मिड हो सकते हैं। ऐसे ही प्लाज्मिडों का उपयोग क्लोनिंग के लिये होता है।

प्रश्न–8. रिट्रोवाइरस वेक्टर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– **रिट्रोवाइरस वेक्टर (Retrovirus Vector)**– इसका जीनोम एक स्ट्रेण्ड वाला DNA होता है। होस्ट कोशिका में रिवर्स ट्रांसक्रिप्टेज द्वारा रिट्रोवाइरस के RNA जीनोम का DNA (दो स्ट्रेण्ड वाला) बनाया जाता है। यह DNA होस्ट के जीनोम में प्रोवाइरस के रूप में समाकलित होता है। प्रोवाइरस जीनोम का ट्रान्सक्रिप्शन तथा ट्रान्सलेशन होता है, इसप्रकार रिट्रोवाइरस कण बनते हैं और ये कल्चर मीडियम में स्रावित (Secrete) होते रहते हैं। इसमें निम्न माड्यूल होते हैं–

(i) रिट्रोवाइरस का 5' LTR तथा 3' LTR (Long terminal repeats)

(ii) S क्रम– mRNA के उत्पादन के लिये

(iii) ई. कोली के वेक्टर pBR 322 का रेप्लीकेशन साइट और एक सेलेक्टेबल जीन।

(iv) R, U5, U3, P तथा Pu के क्रोड क्रम–रिवर्स ट्रान्सक्रिप्शन के लिये।

(v) DNA समाकलन के लिये एक प्रतिबंध साइट।

प्रश्न–9. जीन क्लोनिंग एवं जीन स्थानान्तरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

अथवा

जीन क्लोनिंग पर निबंध लिखिये। [जीवजी 2004,07,13]

अथवा

जीन क्लोनिंग की परिभाषा दीजिये। क्लोनिंग के लिये वांछित DNA खण्ड प्राप्त करने की विधि का विस्तार से वर्णन कीजिये। [जीवजी 2008,12]

उत्तर– **जीन स्थानान्तरण या जीन क्लोनिंग (Gene transfer or Gene cloning)**– आनुवंशिक इंजीनियरिंग के द्वारा जीव की आनुवंशिकी में इच्छित परिवर्तन किया जा सकता है इन परिवर्तनों को लाने के लिये पुनः संयोजी DNA तकनीकि का उपयोग किया जाता है। इस तकनीकि में वांछित DNA का पृथक्करण करने के पश्चात् इस दूसरे जीव के जिनोम में स्थानान्तरित कर दिया जाता है। इस प्रकार बने नये DNA को पुनः संयोजी DNA (recombinant DNA) कहते हैं। जीनों या DNA के पृथक्करण के पश्चात् उन्हें प्लाज्मिड एवं बैक्टीरियोफेज आदि वेक्टर द्वारा उनका क्लोन किया जाता है तथा इन DNA या जीनों की बहुत सी प्रतिकृतियाँ बन जाती हैं। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को जीन क्लोनिंग कहते हैं।

जीन क्लोनिंग के पद– जीन क्लोनिंग की क्रिया निम्न चरणों में पूर्ण होती है–

1. सर्वप्रथम वांछित DNA खण्ड (required DNA Segment) या जीन जिसे दाता या बाहरी DNA (Donor or foreign DNA) कहते हैं, को रेस्ट्रिक्शन एन्जाइम के द्वारा पृथक किया जाता है अथवा इसका कृत्रिम संश्लेषण प्रयोगशाला में किया जाता है।
2. अब वांछित DNA खण्डों को क्लोनिंग वेक्टर (प्लाज्मिड, बैक्टीरियोफेज, या कास्मिड) में स्थानान्तरित कर दिया जाता है तथा DNA लाइगेज एन्जाइम की सहायता से इन्हें आपस में जोड़ दिया जाता है जिसके फलस्वरूप संकर प्लाज्मिड का निर्माण होता है।

जीन स्थानान्तरण के लिये निम्न विधियाँ उपयोग में लायी जाती हैं–

1. **ट्रांसफॉर्मेशन विधि**– इस विधि में वांछित जीन युक्त DNA या जिनोम को वाहक DNA के साथ मिलाकर उसे कैल्सियम फॉस्फेट घोल के द्वारा निक्षेपित किया जाता है जिसमें कई कोशिकायें ट्रांसफार्म हो जाती हैं और उसके DNA के साथ वांछित DNA खण्ड जुड़ जाते हैं। इस प्रकार एक जीव के DNA खण्ड दूसरे जीव के जिनोम में स्थानान्तरित हो जाते हैं।
2. **ट्रांसडक्शन विधि**– इस विधि में सर्वप्रथम वांछित DNA खण्डों को जन्तु वाइरस में निवेशित कर दिया जाता है। इसके पश्चात् इन विषाणुओं को वांछित जीव में संक्रमणित किया जाता है।
3. **DNA इंजेक्शन**– इस विधि में वांछित जीव के जीन के शुद्धीकरण के पश्चात माइक्रोपीपेट्स की सहायता से जन्तु कोशिका के केन्द्रक में डाल दिया जाता है। कोशिका के अन्दर उसकी प्रतिकृतियाँ तैयार हो जाती है। इस विधि से प्राप्त जीवों को ट्रांसजेनिक जीव कहते हैं।

4. उपरोक्त विधि द्वारा प्राप्त संकर प्लाज्मिड DNA को किसी जीवाणु, यीस्ट अथवा किसी कवक की कोशिका मे प्रविष्ट करा दिया जाता है।
5. संकर प्लाज्मिड DNA को जिस कोशा में प्रविष्ट कराया जाता है उसे पोषक कोशिका अथवा क्लोनिंग जीव कहते हैं। इस कोशिका में प्रारम्भ में प्राप्त किया गया वांछित DNA खण्ड उपस्थित होता है। इस प्रकार तैयार किये गये क्लोनिंग जीव का उचित पोषक माध्यम में संवर्धन (culture) किया जाता है। इस प्रकार पुनर्संयोजित DNA की अनेक प्रतियां (copies) प्राप्त कर ली जाती हैं।

जीन क्लोनिंग के लिये पहले उपरोक्त विधियों द्वारा काइमेरिक DNA का निर्माण किया जाता है। फिर इस काइमेरिक DNA को किसी उपयुक्त जीव या कोशिका में प्रवेश कराया जाता है। इस प्रक्रिया को ट्रान्सफॉर्मेशन कहते हैं। इसमें बैक्टीरिया या यूकैरियोट कोशिका का प्रयोग होता है। बैक्टीरिया वर्ग में ग्राम पॉजिटिव (Gram Positive) जैसे ई. कोली स्यूडोमोनोस, राइजोबियम व ग्राम निगेटिव जैसे- बी. सब्टिलिस तथा स्ट्रैप्टोमाइसिटीज यीस्ट, चूहे तथा पौधे, आदि जीव हैं जिनका प्रयोग ट्रांसफॉर्मेशन मे होता है। इन्हे होस्ट कहते है। काइमेरिक DNA को इन होस्टो में प्रवेश कराने की अनेक प्रक्रियायें, उदाहरण के लिये जैसे- ई. कोली में DNA का प्रवेश $CaCl_2$ की मदद से कराते है। ट्रांसफॉर्मेशन के पश्चात् विलयन में से काइमेरिक DNA युक्त कोशिकायें अलग करके मल्टीप्लाई करायी जाती हैं जिसमें इनकी संख्या बहुत अधिक हो जाती है। जरूरत होने पर इस काइमेरिक DNA को अलग कर लिया जाता है।

प्रश्न–10. PC R क्या है? PC R के विभिन्न चरणों का संक्षिप्त वर्णन करते हुये इसके रूपान्तरण समझाइये। [सागर 2007,10]

अथवा

PC R पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। इसके चरणों का भी विवरण कीजिये। [भोपाल 2008]

उत्तर– किसी जीन की बहुत सारी प्रतियों को बनाना जीन ऐम्प्लिफिकेशन कहलाता है। इसके लिये जीन को किसी वेक्टर की मदद से क्लोन (Clone) करते है। इस विधि से जीन एम्प्लिफाई करने में काफी समय तथा कई तकनीकों का सहारा लेना पड़ता है। इस समस्या से छुटकारा पाने के लिये सन् 1985 में कैरीमुलिस ने पॉलिमरेज अभिक्रिया श्रृंखला (Polymerase Chain Reaction PCR) का विकास किया। यह अत्यन्त दक्ष पूर्णतः स्वचालित तथा अत्यन्त शक्तिशाली विधि है। इससे कुछ ही घण्टों मे अरबों प्रतियाँ उत्पादित की जा सकती हैं। PCR के लिये निम्नलिखित की आवश्यकता होती है-

(i) वांछित DNA का मिश्रण
(ii) दोनों 3 सिरों के लिये प्राइमर
(iii) चारों डी–ऑक्सी न्यूक्लियोसाइडों के ट्राइफॉस्फेट अर्थात् d ATP, d CTP, d GTP एवं TT P
(iv) एक उच्च ताप स्थायी (heat stable) DNA पॉलिमरेज जैसे– TOQ पॉलिमरेज थर्मस एक्वेटिकस यह एन्जाइम (Thermus aquaticus) नामक बैक्टीरिया से प्राप्त होती है।

PCR के प्रारंभ में उपर्युक्त चारों चीजों को अभिक्रिया मिश्रण में मिलाया जाता है और DNA अणुओं को डीनेचर करने के लिये उसे 90–98°C तक गर्म किया जाता है। इसके बाद मिश्रण को 40–60°C तक ठन्डा किया जाता है, जिससे दोनों प्राइमर अपने-अपने DNA के स्ट्रैण्ड के छोरों पर ऐनील (anneal) हो जाते हैं। तापमान को उपर्युक्त स्तर पर रखते हुये रासायनिक क्रिया करायी जाती है जिससे DNA का पूरक स्ट्रैण्ड का संश्लेषण होता है। चूँकि प्राइमरों से संश्लेषण एक-दूसरे की दिशा में बढ़ता है, अतः इन दोनों प्राइमरों के बीच स्थित DNA खण्ड का रेप्लिकेशन होता है। Taq पॉलिमरेज 70–75°C तापमान से सर्वाधिक क्षमता से कार्य करता है। यहाँ पर PCR का प्रथम चक्र पूरा हो जाता है और इस तरह से प्रत्येक चक्र में 1–3 मिनट लगते हैं।

इसके पश्चात् द्वितीय चक्र का एम्प्लिफिकेशन (Amplification) प्रारंभ किया जाता है। यह चक्र भी प्रथम चक्र के समान होता है, परन्तु अन्तर यह है कि यहाँ पर DNA स्ट्रैण्डों की संख्या दुगुनी होती है। द्वितीय चक्र को प्रथम चक्र के ही समान पूर्ण करने के पश्चात् हमें DNA खण्डों की संख्या चार गुना प्राप्त हो जाती है। इस तरह से PCR 60 चक्रों तक किया जा सकता है। लेकिन सामान्यतः 20–30 चक्र ही किये जा सकते है PCR के अंतिम चरण में DNA खण्ड को जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस द्वारा शुद्धिकरण करते हैं और शुद्धिकरण के पश्चात् इसका उपयोग किया जा सकता है।

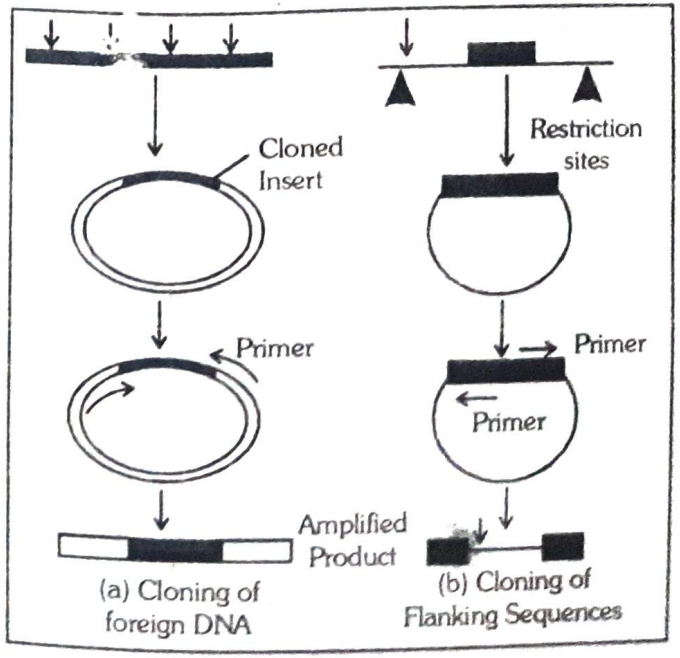


Fig- इनवर्स PCR

PCR के रूपान्तरण (Transformation of PCR)– अलग-अलग उद्देश्य की प्राप्ति के लिये PCR के कई रूपान्तरण किये गये हैं, जिनमें से कुछ निम्नानुसार हैं–

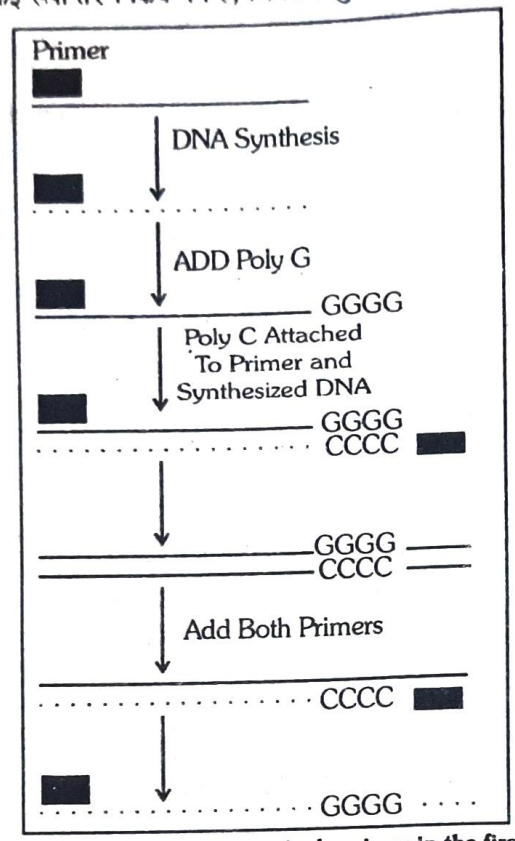


Fig. Anchored PCR, using a single primer in the first cycle

(i) इनवर्स PCR (inverse PCR)– किसी ज्ञात DNA खण्ड के दोनों ओर बाहर की ओर स्थित bp (base pair) का ऐम्प्लिफिकेशन करने की क्रिया को इनवर्स PCR कहते हैं। इसके लिये ऐसे प्राइमरों का प्रयोग किया जाता है, जो DNA खण्ड 5'– छोरों के पूरक होते हैं। इससे प्राइमरों का 3' – OH समूह ज्ञात खण्ड से बाहर की ओर प्रेरित हो जाता है और इसके दोनों छोरों से बाहर की ओर स्थित क्रमों का ऐम्प्लिफिकेशन होता है।

(ii) एंकोर्ड PCR (Anchored PCR)– जब किसी DNA खण्ड या जीन के केवल एक छोर का bp (base pair) क्रम ज्ञात करना हो तो इस छोर के 3'– स्ट्रैण्ड के पूरक क्रम को प्राइमर के रूप में उपयोग करके इस स्ट्रैण्ड की कई प्रतियाँ प्राप्त करते हैं। इन प्रतियों के 3'– छोर पर पॉलि G (Poly–G), पॉलि A, पॉलि C या पॉलि T में से किसी एक की पूँछ (Tail) जोड़ते हैं, और इस पूँछ के कॉम्प्लीमेंटरी पॉलि C प्राइमर का उपयोग करके उस स्ट्रैण्ड के कॉम्प्लीमेंटरी स्ट्रैण्ड का संश्लेषण करते हैं। इस प्रकार प्राप्त दोहरे स्ट्रैण्ड का सामान्य PCR प्रक्रिया से ऐम्प्लिफिकेशन (Amplification) करते हैं।

प्रश्न–11. PCR एवं जीन क्लोनिंग में तुलना समझाइये। [भोपाल 2008,10]

अथवा

PCR एवं जीन क्लोनिंग में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिये। [इन्दौर 2001,04,09,13]

उत्तर– PCR एवं जीन क्लोनिंग में तुलना निम्न प्रकार है–

PCR	जीन क्लोनिंग
(1) यह एक पूर्ण स्वचालित विधि है।	(1) यह स्वचालित विधि नहीं है।
(2) यह सस्ती विधि है।	(2) यह मंहगी विधि है।
(3) अपेक्षाकृत कम समय (4–5 घन्टे) श्रम एवं दक्षता की आवश्यकता पड़ती है।	(3) अधिक समय (2–4 दिन) श्रम एवं दक्षता की आवश्यकता पड़ती है।
(4) इसके लिये प्रतिबन्ध एन्जाइम लाइगेज (ligase) तथा वेक्टर (vector) DNA की आवश्यकता नहीं पड़ती है।	(4) इसमें इन सबकी जरूरत होती है।
(5) बहुत कम DNA जीन की एक प्रति भी पर्याप्त होती है।	(5) अपेक्षाकृत अधिक DNA की आवश्यकता होती है।
(6) इसके बहुत से अनुप्रयोग हैं और आगे भी सम्भावनायें अच्छी हैं।	(6) इसके सीमित अनुप्रयोग हैं।

प्रश्न–12. PCR के अनुप्रयोग लिखिये।

उत्तर– PCR के अनुप्रयोग निम्नलिखित है–

(1) PCR के प्रयोग से भ्रूणों के लिंग का पता लगाया जा सकता है। इन विट्रो फर्टिलाइज्ड पशु भ्रूणों के गर्भाशय में स्थापना के पहले उनका लिंग ज्ञात कर सकते हैं। इसके लिये Y क्रोमोसोम के लिये विशिष्ट प्राइमरों का उपयोग करते हैं।

(2) PCR के प्रयोग से माइक्रोडाइसेक्टेड क्रोमोसोम खण्डों को आवर्धित करके किसी जीन की सम्बन्धित क्रोमोसोम में भौतिक स्थिति ज्ञात कर सकते हैं।

(3) PCR के प्रयोग से जीनोम के DNA की बहुरूपता का अध्ययन किया जाता है।

(4) PCR के प्रयोग से जीनों को किसी पॉपुलेशन के विभिन्न युग्मकों में आवर्धित कर सकते हैं और उनके बीच रिकॉम्बिनेशन आवृत्ति का आंकलन कर सकते हैं। इनके द्वारा मानव में भी लिंकेज मैप सरलता से बना सकते हैं।

(5) PCR के प्रयोग से किसी भी जीन की अनेक प्रतियाँ प्राप्त की जा सकती हैं, जिन्हें जीन क्लोनिंग अथवा DNA सीक्वेन्सिंग के लिये उपयोग किया जा सकता है। सीक्वेन्सिंग से मिले आँकड़ों का रोग निदान, पॉपुलेशन जैनेटिक्स आदि में उपयोग कर सकते हैं।

प्रश्न–13. जीन चिकित्सा क्या है? व्याख्या करते हुये डी. एन. ए. फिंगर प्रिंटिंग का वर्णन कीजिये। [सागर 2007,12,16 भोपाल 2006]

अथवा

आनुवंशिक रोगों में जीन उपचार के महत्व पर निबन्ध लिखिये। [जीवाजी 2008,10,17]

अथवा

डी.एन.ए. अंगुली छापन की विधि का वर्णन कीजिये।

[भोपाल 2006,13 जीवाजी 2007 सागर 2008]

उत्तर– जीन थिरैपी (Gene Therapy)– किसी खराब या अनियंत्रित जीन को उसके विकल्प जीन से बदलने की प्रक्रिया जीन थैरेपी कहलाती है। मनुष्य में बहुत सी आनुवांशिक बीमारियां जीन से ही सम्बन्धित होती हैं जैसे– सिकिल सेल एनीमिया, हन्टिंग्टन कोरिया, हीमोफीलिया आदि।

जीन थिरेपी के प्रकार (Kinds of Gene Therapy)– जीन थिरैपी दो प्रकार की होती हैं–

(1) जर्म लाइन जीन थिरैपी (Germ line gene therapy)

(2) सौमेटिक कोशा जीन थिरैपी (Somatic cell gene therapy)

(1) जनन लाइन जीन थिरैपी (Germ line gene therapy)– इसके अन्तर्गत जीन को जनन कोशिकाओं (शुक्राणु या अण्डे) या जायगोट (zygote) में प्रवेश कराते हैं। यह जीन इन कोशिकाओं के जीन में समाकलित हो जाता है। अतः थिरैपी के कारण उत्पन्न परिवर्तन वंशागत (Heritable) होता है। यह थिरैपी बहुत ही लाभकारी होती है। किन्तु वर्तमान समय में, कई तकनीको के अभाव व नैतिक कारणों से इस तकनीक का प्रयोग मानव में नहीं किया जाता है। प्रायोगिक तौर पर इसका प्रयोग प्रयोगशाला जन्तुओं जैसे– चूहा, खरगोश आदि पर किया जाता है। यह थिरैपी निम्न चरणों में सम्पन्न होती है–

(i) अण्डे का इनविट्रो (Invitro) निषेचन।

(ii) सामान्य जीन का जायगोट के बाद किसी अवस्था में, वाइरस या माइक्रोइंजेक्शन (Micro injection) द्वारा कोशिका में प्रवेश।

(iii) अन्दर प्रवेश करायी गयी जीन का होस्ट कोशिका के जीनोम में समाकलन।

जीनोम में समाकलन के बाद यह जरूरी नहीं है कि नया जीन अपना कार्य करने योग्य अवस्था में आ जायेगा। लेकिन ये केवल कुछ ही जन्तुओं में कार्य कर सकता है।

(2) सौमेटिक कोशा जीन थिरैपी (Somatic cell gene therapy)– इस थिरैपी में जीन को रोगी की सौमेटिक कोशिकाओं (Somatic cells) विशेष रूप से जिन ऊतकों में सम्बन्धित जीन की अभिव्यक्ति स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य हो, में प्रवेश कराते हैं। इस विधि से रोगियों में रोग के लक्षण कम हो जाते हैं, या रोगी बिल्कुल ठीक हो जाता है लेकिन प्रवेश कराया गया जीन अगली पीढ़ी में अपने लक्षण वंशागत नहीं कर पाता है।

इस थिरैपी में मुख्यतः तीन चरण प्रयुक्त होते हैं–

(i) रोगी की रोगग्रस्त ऊतक की कुछ कोशिकाओं को अलग करना।

(ii) सामान्य जीन की प्रतियों, जिससे सम्बन्धित बीमारी हो, को कोशिका में प्रविष्ट कराते हैं।

(iii) नयी ट्रांसजीन कोशिकाओं (Trangenic cells) को रोगी के शरीर में पहुंचाना। इस विधि में दो मुख्य प्रकार होते हैं–

1. संवर्धन जीन उपचार (Augmentation gene therapy)– इस प्रकार की थिरैपी में सामान्य क्रियाशील जीन को रोगग्रस्त कोशा में प्रवेश कराते हैं, जिसके फलस्वरूप कोशिका

में खराब जीन के साथ-साथ सामान्य जीन भी पहुंच जाता है। इस उपचार की दो मुख्य विधियां हैं–

(1) सम्बन्धित जीन की सामान्य क्रियाशील एलील (Functional allele) को रोगी से प्राप्त स्तम्भ कोशिकाओं (Stem cells) में प्रविष्ट कराते हैं, जैसे– लिम्फोसाइटों, बोन मैरो कोशिकाओं आदि में। अब इन कोशिकाओं को रोगी में प्रतिरोपित करते हैं। यह विधि सबसे पहले SCID (तीव्र संयुक्त प्रतिरक्षा ह्रास सिन्ड्रोम, Severe Combined Immune Deficiency Syndrome) रोग के उपचार के लिये प्रयुक्त की गयी थी। यह रोग एडिनोसिन डी. एमिनेस (ADA, Adenosine Deaminase) की कमी के कारण होता है। अतः इसके उपचार के लिये सर्वप्रथम–

(i) ADA जीन के सामान्य एलील को अलग करके क्लोन किया गया।

(ii) फिर इसकी प्रतियों को एक त्रुटिपूर्ण (Defective) रिट्रोवाइरस के जीनोम में समाकलित किया गया। यहाँ रिट्रोवाइरस के अधिकांश जीनों को ADA जीन से प्रतिस्थापित कर दिया गया।

(iii) इसके बाद रोगी के लिम्फोसाइट को प्राप्त किया गया और

(iv) अनेक रिकॉम्बिनेन्ट रिट्रोवाइरसों से संक्रमित किया गया।

(v) अन्त में ADA जीन के लक्षणों को प्रदर्शित करने वाली सफल लिम्फोसाइटों को अलग करके उन्हें रोगी के शरीर में प्रतिरोपित किया गया। रोगी के शरीर में ADA जीन की अभिव्यक्ति के कारण रोगी के प्रतिरक्षा तन्त्र में सुधार पाया गया।

(2) लक्ष्यबद्ध जीन स्थानान्तरण (Targetted gene transfer)– इसमें सम्बन्धित जीन के सामान्य एलील को जीनोम में पूर्व निर्धारित स्थल पर समाकलित करते हैं। होमोलोगस रिकॉम्बिनेशन (Homologous recombination) द्वारा जीनोम में पहले से उपस्थित खराब एलील को नये सामान्य एलील से बदल दिया जाता है। इसके लिये निम्न प्रकार के वेक्टरों का प्रयोग करते हैं–

(i) निवेशन वेक्टर (Insertion vectors)– इन वेक्टरों को लीनियर अवस्था में उनके दोनों सिरों पर उस क्रम के भाग होते हैं जहां सामान्य एलील को समाकलित करना होता है, जबकि स्थानान्तरित किया जाने वाला सामान्य एलील इन क्रमों के बीच में उपस्थित होता है। सिरों वाले क्रमों में होमोलोगस रिकॉम्बिनेशन होता है, जिससे स्थानान्तरित किये जा रहे जीन का द्विगुणन होता है। प्रायः इस वेक्टर का निवेशन (Insertion) खराब एलील की जगह न होकर उसके पड़ौस में होता है। इस प्रक्रिया को निवेशनी रिकॉम्बिनेशन (Insertional recombination) कहते हैं। इन्हीं वेक्टरों का जीन उपचार में उपयोग किया जाता है।

2. प्रतिस्थापन वेक्टर (Replacement vectors)– इन वेक्टरों को लीनियर अवस्था में उनके दोनों सिरों पर स्थानान्तरित किये जा रहे जीन के सिर्फ आधे-आधे भाग उपस्थित होते हैं। इन्हीं क्रमों में होमोलोगस रिकॉम्बिनेशन होता है, जिससे कोशिका के जीनोम में उपस्थित एलील का एक भाग वेक्टर में उपस्थित भाग से प्रतिस्थापित हो जाता है, इसे प्रतिस्थापन रिकॉम्बिनेशन कहते हैं।

प्रश्न– 11. DNA फिंगर प्रिंटिंग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये।

उत्तर– DNA फिंगर प्रिंटिंग (DNA Finger Printing)– प्रतिबन्ध खण्ड लम्बाई बहुरुपिता द्वारा किसी व्यक्ति या विभेद के DNA का मैप बनाना, DNA फिंगर प्रिंटिंग कहलाता है। इसके लिये बहुउपयोगी प्रोब की आवश्यकता होती है।

हत्या या बलात्कार जैसे गम्भीर अपराधों में जब कोई ठोस सबूत का पता नहीं चलता है या संदेही की पहचान मुश्किल होती है तब ऐसी विधि की आवश्यकता महसूस की गई जो कि अपराधी को पहचानने में अचूक एवं विश्वसनीय है। वैज्ञानिकों ने एक इसी तरह की विधि की खोज की जिसमें प्रतिबंध खण्ड लम्बाई बहुरूपिता (Restriction Fragment length Polymorphism, RFLP) द्वारा किसी व्यक्ति के DNA का में बनाया जाता है। इस विधि को 'DNA फिंगर प्रिंटिंग' के नाम से जाना जाता है। RFLP के लिये एक बहुउपयोगी प्रोब (Probe) की आवश्यकता होती हैं और इस तरह का प्रोब बैण्डेड क्रैट सर्प से प्राप्त GATA होता है तथा इसी प्रोब का उपयोग किया जाता है। इस विधि में सूक्ष्म सैटेलाइट DNA जैसे अत्यधिक बहुरूपिता वाले DNA क्रमों का भी प्रोब के रूप में उपयोग करते हैं।

DNA फिंगर प्रिंटिंग का विकास सबसे पहले एलेक जेफ्री ने 1985 में किया था। DNA फिंगर प्रिंटिंग की सहायता से स्ट्रेनों, व्यक्तियों, अपराधियों, पिता–पुत्र संबंधी आदि की सुनिश्चित एवं निःसन्देह पहचान की जा सकती है। हमारे जीनोम में कई सौ विशिष्ट क्षेत्र होते हैं तथा यही विशिष्ट क्षेत्र प्रत्येक मनुष्य के DNA को अपने में अलग विशिष्टता प्रदान करते हैं। सभी मनुष्यों में पाई जाने वाली DNA के कुल न्यूक्लियोटाइड का 1% भाग ही भिन्न होता है।

परन्तु मानव के जहाँ 300 मिलियन न्यूक्लियोटाइड की भारी संख्या में 1% भाग भी बड़ी मात्रा होती है। DNA फिंगर प्रिंटिंग में कार्य निम्न चरणों में पूर्ण किया जाता है–

1. सर्वप्रथम व्यक्ति के DNA का नमूना लेते हैं। यह नमूना प्रायः रक्त से लिया जाता है, परन्तु कभी–कभी वर्षों पुराने वीर्य के धब्बों, रक्त के धब्बों, बलात्कार की शिकार महिलाओं की योनि से लिये गये नमूने, हत्या किये व्यक्ति की हड्डियों, बाल आदि से प्राप्त किये जाते हैं। फिंगर प्रिंटिंग में केवल कुछ नेनोग्राम (10^{-9} gm) DNA की आवश्यकता पड़ती है।
2. नमूने के DNA का उपयुक्त प्रतिबन्ध एन्जाइम से पाचन करते हैं।
3. प्रतिबन्ध एन्जाइम से क्रिया के बाद प्राप्त DNA का जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस करते हैं।
4. जेल में DNA को डीनेचर करने के बाद उसे एक नाइट्रो सेल्युलोज फिल्टर (Nitrocellulose filter) पर स्थानान्तरित करते हैं। DNA को फिल्टर पेपर पर फिक्स (Fix) करने के लिये 80°C पर बेक (bake) करते हैं।
5. अब फिल्टर पर उपस्थित DNA को उपयुक्त रेडियो चिन्हित (Radio labelled) प्रोब से संकरित करते हैं। मुक्त प्रोबों को धोकर हटा देते हैं और संकरित (hybridized) बैण्डों को आटोरेडियोग्राफी द्वारा ज्ञात करते हैं।

उपरोक्त विधि से प्राप्त DNA बैण्डों का पैटर्न ही DNA अंगुली छाप (DNA Finger Printing) कहलाता है। इस विधि का उपयोग करके बलात्कार के संदेही व्यक्ति एवं पीड़ित

व्यक्ति से प्राप्त DNA की तुलना की जाती है। दोनों छाप एक समान होने पर माना जाता है कि संदिग्ध व्यक्ति ही अपराधी है।

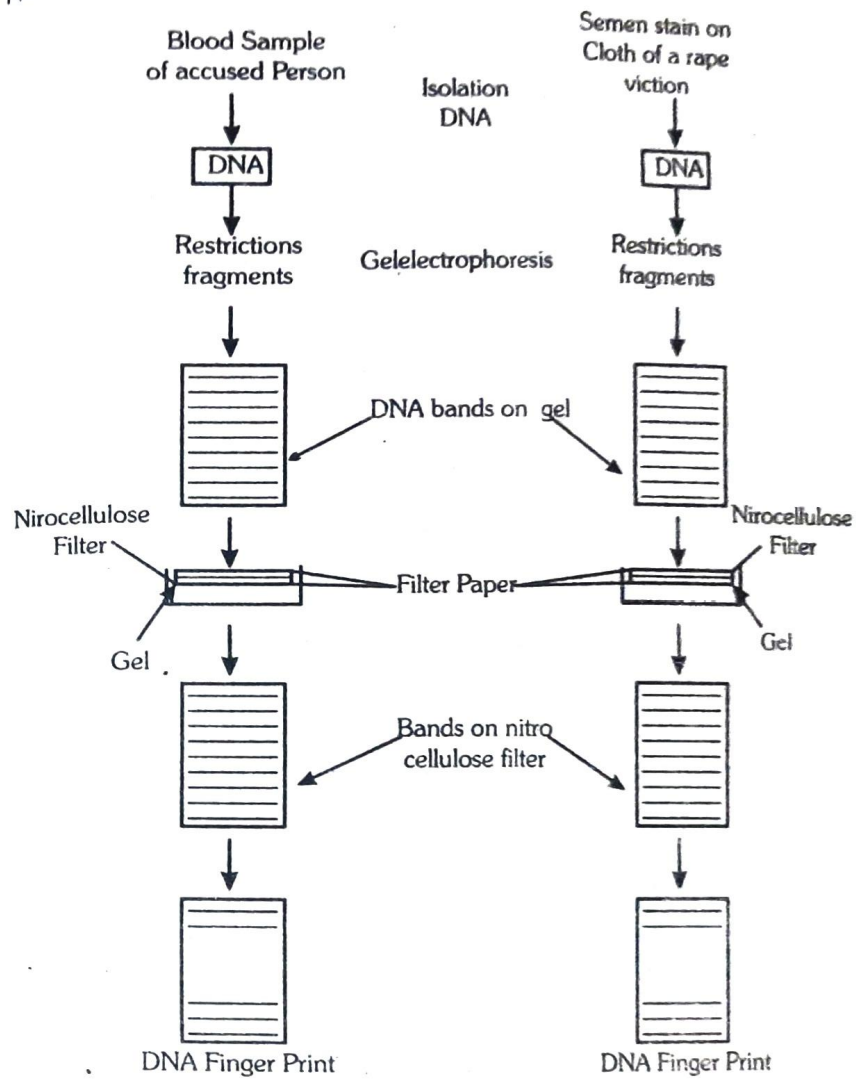


Fig. Representation of DNA finger printing of a Person accused of rape.

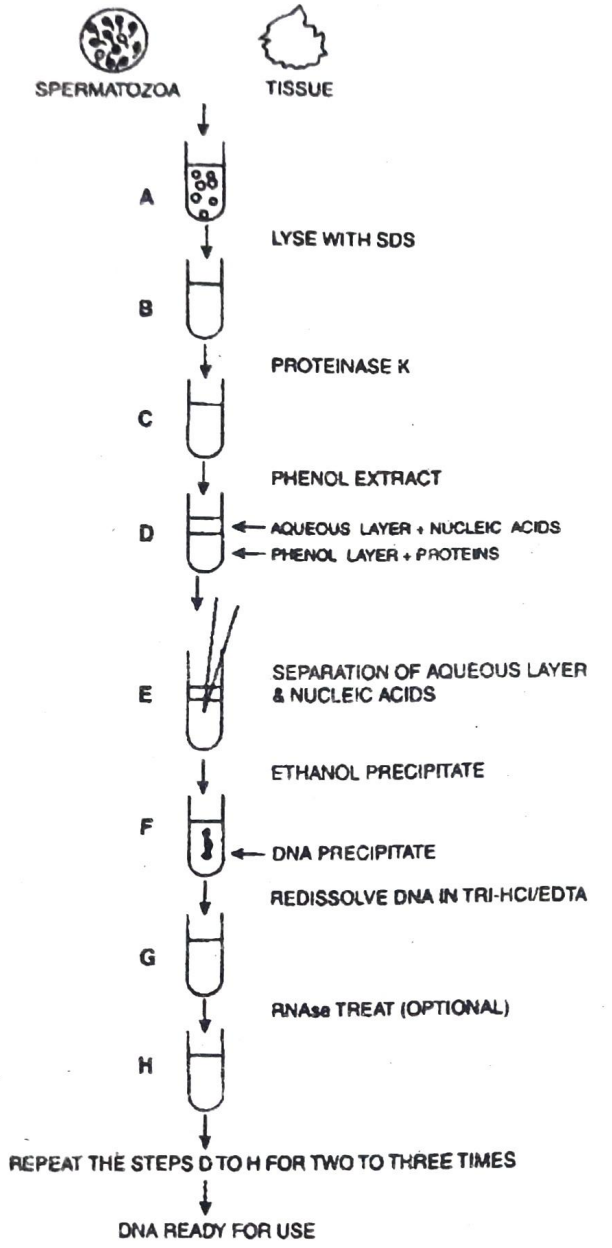


Fig. Steps Involved in isolation of DNA from tissue sample

आनुवंशिक सलाह (Genetic Counselling) तथा बोन मेरो ट्रांसप्लांट में दाता कोशिकाओं की आवृत्ति ज्ञात करने में भी DNA फिंगर प्रिंटिंग विधि का प्रयोग किया जाता है। इसी तरह से पशुपालन में पैतृकत्ता (Parentage) पहचानने तथा मार डाले गये पशुओं की पहचान एवं किसी बच्चे के असली माँ-बाप को पहचानने में भी इस विधि का उपयोग किया जाता है।

प्रश्न–15. DNA अँगुली छापन (Finger Printing) में पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया (PCR) का क्या महत्व है? समझाइये।

उत्तर– DNA अँगुली छापन में पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया (PCR) का महत्व– पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया (PCR) जैव प्रौद्योगिकी की एक अत्यन्त उपयोगी तकनीक है। इसके द्वारा DNA खण्डों की प्रतिलिपियों का निर्माण किया जाता है। यह बहुत दक्ष, पूर्णतः स्वचालित तथा अत्यन्त शक्तिशाली विधि है। इसकी सहायता से DNA की सिर्फ एक प्रति से कुछ ही घण्टों में अरबों प्रतियाँ बनाई जा सकती हैं।

DNA अँगुली छापन में DNA की बहुत अधिक मात्रा में जरूरत होती है। लेकिन कई बार जब किसी सड़े-गले शरीर से प्राप्त ऊतक का DNA अथवा वर्षों पहले मृत व्यक्ति का DNA अँगुली छापन के लिये लिया जाता है तो ऐसे नमूनों में DNA की मात्रा बहुत कम होती है। अतः इनके लिये DNA के खण्डों का पॉलीमरेज श्रृंखला अभिक्रिया द्वारा गुणन कराया जाता है और DNA खण्डों की उपयुक्त मात्रा प्राप्त की जाती है।

❑❑❑

❑ कृपया ध्यान दें

नई शिक्षा नीति इस वर्ष स्नातक तृतीय वर्ष में लागू की गई है। परीक्षा के नये पैटर्न में वस्तुनिष्ठ प्रश्न, लघुउत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घउत्तरीय प्रश्न पूछे जायेंगे। कुछ लघुउत्तरीय प्रश्नोत्तर इस पुस्तक में दिये गये हैं। दीर्घउत्तरीय प्रश्नोत्तर में ही लघुउत्तरीय प्रश्नों के उत्तर निहित हैं। इस हेतु आप लघुउत्तरीय प्रश्न में जितना पूछा जावे, दीर्घउत्तरीय प्रश्न के उत्तर का उतना ही भाग लिखें।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) क्रोमोसोम्स का मुख्य कार्य है–
(अ) माता–पिता से सन्तानों में लक्षणों को वंशागत करना
(ब) वृद्धि
(स) श्वसन (द) जनन।
उत्तर– (अ) माता–पिता से सन्तानों में लक्षणों को वंशागत करना।

(2) गुणसूत्रों की संख्या किसी प्रजाति में–
(अ) स्थिर रहती है (ब) आयु के साथ बढ़ती है
(स) प्रजनन के समय बढ़ जाती है (द) हेप्लॉइड होती है।
उत्तर– (अ) स्थिर रहती है।

(3) लैम्पब्रश क्रोमोसोम वर्टिब्रेट में पाया जाता है–
(अ) सभी कोशिकाओं में (ब) केवल सोमैटिक कोशिकाओं में
(स) केवल ऊसाइट्स में (द) किसी भी कोशिका में नहीं।
उत्तर– (स) केवल ऊसाइट्स में।

(4) पोलीटीन गुणसूत्रों की खोज की थी–
(अ) फ्लेमिंग ने (ब) बालबियानी ने
(स) हॉवेल एवं स्टर्न ने (द) विल्सन ने।
उत्तर– (ब) बालबियानी ने।

(5) एक जाति के जन्तुओं में क्रोमोसोम की संख्या–
(अ) एक ही होती है (ब) भिन्न–भिन्न होती है
(स) दोगुनी होती है (द) हेप्लॉइड होती है।
उत्तर– (अ) एक ही होती है।

(6) किसी प्राणी के शारीरिक लक्षण होते हैं–
(अ) हेटेरोटाइप (ब) फीनोटाइप
(स) हिट्रोटाइप (द) मोनोटाइप।
उत्तर– (ब) फीनोटाइप।

(7) निम्नलिखित में से RNA में एक अनुपस्थित होता है–
(अ) थाइमीन (ब) यूरेसिल
(स) ग्वानीन (द) साइटोसिन।
उत्तर– (अ) थाइमीन।

(8) DNA अणु बना होता है–
(अ) पेण्टोज सुगर, फॉस्फोरिक एसिड तथा पिरिमिडीन
(ब) पेण्टोज सुगर, फॉस्फोरिक एसिड, पिरिमिडीन तथा प्यूरिन्स
(स) पेण्टोज सुगर, फॉस्फोरिक एसिड तथा प्यूरिन्स

(द) पेण्टोज सुगर, पिरिमिडीन तथा प्यूरिन्स।
उत्तर– (ब) पेण्टोज सुगर, फॉस्फोरिक एसिड, पिरिमिडीन तथा प्यूरिन्स।

(9) डबल हेलिक्स DNA मॉडल किसने दिया?
(अ) फिशर तथा हेलडेन (ब) वाटसन एवं क्रिक
(स) लैमार्क तथा डार्विन (द) ह्यूगो डी व्रीज।
उत्तर– (ब) वाटसन एवं क्रिक।

(10) DNA के प्यूरीन्स हैं–
(अ) यूरेसिल तथा ग्वानीन (ब) ग्वानिन तथा एडीनिन
(स) एडीनिन तथा साइटोसीन (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (ब) ग्वानिन तथा एडीनिन।

(11) डी.एन.ए., आर. एन.ए. से किस बात में भिन्न है?
(अ) शर्करा एवं पिरिमिडीन्स की प्रकृति में
(ब) केवल शर्करा की प्रकृति में
(स) केवल प्यूरीन्स की प्रकृति में (द) उपर्युक्त किसी में भी नहीं।
उत्तर– (अ) शर्करा एवं पिरिमिडीन्स की प्रकृति में।

(12) निम्नलिखित में से किसके बहुलक न्यूक्लिक अम्ल होते हैं?
(अ) न्यूक्लियोप्रोटीन्स के (ब) ग्लोब्यूलिन के
(स) न्यूक्लियोटाइड्स के (द) न्यूक्लियोसाइड्स के।
उत्तर– (स) न्यूक्लियोटाइड्स के।

(13) डी.एन.ए. की प्यूरीन्स प्रदर्शित की जाती है–
(अ) यूरेसिल एवं ग्वानीन द्वारा (ब) ऐडेनीन एवं साइटोसिन द्वारा
(स) ग्वानीन एवं ऐडेनीन द्वारा (द) उपर्युक्त में किसी के द्वारा नहीं।
उत्तर– (स) ग्वानीन एवं ऐडेनीन द्वारा।

(14) आनुवंशिक सूचनाओं के बहाव को क्रिक द्वारा किस रूप में प्रस्तुत किया गया?
(अ) केन्द्रीय सिद्धान्त (ब) एक दिशीय
(स) रिवर्स फ्लो (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (ब) एक दिशीय।

(15) डी.एन.ए. का वह छोटे से छोटा भाग जिसमें एक पोलीपेप्टाइड के संश्लेषण सम्बन्धी सूचना निहित होती है, कहलाता है–
(अ) म्यूटॉन (ब) रेकॉन
(स) सिस्ट्रॉन (द) जम्पिंग जीन।
उत्तर– (स) सिस्ट्रॉन।

(16) स्प्लिट जीन पाये जाते हैं–
(अ) प्रोकैरियोट में (ब) यूकैरियोट में
(स) दोनों में (द) किसी में नहीं।
उत्तर– (ब) यूकैरियोट में।

(17) न्यूक्लियोसोम का कोर अणु है–
(अ) पेण्टामर (ब) टेट्रामर
(स) ऑक्टामर (द) डाइमर।
उत्तर– (स) ऑक्टामर।

(18) घुलनशील RNA कहलाता है–
(अ) r-RNA (ब) m-RNA
(स) t-RNA (द) उपर्युक्त सभी।
उत्तर– (स) t-RNA

(19) DNA से m-RNA का निर्माण कहलाता है–
(अ) अनुवाद (ब) स्थानान्तरण
(स) अनुलेखन (द) ट्रांसडक्शन।
उत्तर– (स) अनुलेखन।

(20) जैनेटिक्स में अध्ययन होता है–
(अ) आनुवंशिकी तथा परिवर्तन का (ब) कोशिका संरचना का
(स) तापीय रचना का (द) पादपों तथा वातावरण का।
उत्तर– (अ) आनुवंशिकी तथा परिवर्तन का।

(21) फीनोकापी में–
(अ) जीनोटाइप एक होता है (ब) जीनोटाइप भिन्न होता है
(स) फीनोटाइप भिन्न होता है (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (ब) जीनोटाइप भिन्न होता है।

(22) केन्द्रकीय छिद्र सम्मिश्रण का भाग है–
(अ) स्कफोल्ड (ब) बॉस्केट
(स) ट्रान्सपोर्टर (द) उपरोक्त सभी।
उत्तर– (द) उपरोक्त सभी।

(23) एक क्रोमोसोम पर दो जीन्स के मध्य दूरी अधिक होने पर–
(अ) लिंकेज का बल अधिक होगा (ब) लिंकेज का बल कम होगा
(स) लिंकेज के बल में कोई परिवर्तन नहीं होगा
(द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (ब) लिंकेज का बल कम होगा।

(24) पूर्ण लिंकेज पाया जाता है–
(अ) नर ड्रॉसोफिला में (ब) मादा ड्रॉसोफिला में
(स) पक्षियों में (द) लिजर्ड्स में।
उत्तर– (अ) नर ड्रॉसोफिला में।

(25) क्रॉसिंग–ओवर अधिक होगा यदि–
(अ) लिंक्ड जीन्स एक–दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होती हैं
(ब) लिंक्ड जीन्स एक–दूसरे के पास–पास स्थित होती हैं

(स) उपर्युक्त दोनों ही (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) लिंक्ड जीन्स एक–दूसरे से अधिक दूरी पर स्थित होती हैं।

(26) एक वर्णान्ध नारी सामान्य पुरुष से विवाह करती है, तो इससे उत्पन्न बच्चे होंगे–
(अ) वर्णान्ध पुत्र एवं वाहक पुत्रियाँ (ब) वर्णान्ध पुत्र व पुत्रियाँ
(स) वर्णान्ध पुत्रियाँ व सामान्य पुत्र (द) सामान्य पुत्र व पुत्रियाँ।
उत्तर– (अ) वर्णान्ध पुत्र एवं वाहक पुत्रियाँ।

(27) आनुवंशिक लक्षण है–
(अ) अन्धापन (ब) माँसल शरीर
(स) रंग अन्धापन (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (स) रंग अन्धापन।

(28) निम्न में कौन–सा गुणसूत्र में संरचनात्मक परिवर्तन नहीं है?
(अ) प्रतिलोमन (ब) विलोपन
(स) प्लॉयडी (द) द्विगुणन।
उत्तर– (स) प्लॉयडी।

(29) जर्म कोशिकाओं में म्यूटेशन–
(अ) एक ही जीव के उसके वंशज में देखा जा सकता है
(ब) केवल जीव के दूसरे वंशज के सदस्यों को देखा जा सकता है
(स) अत्यधिक घातक होते हैं
(द) कम घातक होते हैं।
उत्तर– (ब) केवल जीव के दूसरे वंशज के सदस्यों को देखा जा सकता है।

(30) म्यूटेशन से–
(अ) कम परिवर्तन होते हैं (ब) बहुत ही कम परिवर्तन होते हैं
(स) बड़े परिवर्तन होते हैं (द) ये सभी।
उत्तर– (द) ये सभी।

(31) व्यक्ति जिसने म्यूटेशन के लिये X-रेज का उपयोग किया–
(अ) मॉर्गन (ब) हुकर
(स) मुलर (द) खुराना।
उत्तर– (स) मुलर।

(32) म्यूटेशन जिससे जीव की मृत्यु हो जाती है, कहलाते हैं–
(अ) लीथल (ब) ऑटोसोमल
(स) घातक (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) लीथल।

(33) जैनेटिक म्यूटेशन पाया जाता है–
(अ) DNA में (ब) RNA में
(स) क्रोमोसोम में (द) न्यूक्लियस में।
उत्तर– (अ) DNA में

(34) म्यूटेशन्स–
(अ) अधिकांशतः लाभदायक होते हैं (ब) सदैव लाभदायक होते हैं
(स) बहुत ही कम लाभदायक होते हैं (द) सदैव हानिकारक होते हैं।
उत्तर– (स) बहुत ही कम लाभदायक होते हैं।

(35) मानव के लिये कौन–सी जीन थिरैपी को मान्यता प्राप्त है?
(अ) जनन लाइन जीन थिरैपी (ब) सोमैटिक कोशा जीन थिरैपी
(स) उपर्युक्त दोनों (द) कोई नहीं।
उत्तर– (ब) सोमैटिक कोशा जीन थिरैपी।

(36) DNA अँगुली छापन में DNA की कितनी मात्रा की आवश्यकता होती है?
(अ) 1 ग्राम (ब) 1 मिलीग्राम
(स) 1 नैनोग्राम (द) 1 माइक्रोग्राम।
उत्तर– (स) 1 नैनोग्राम।

(37) हत्यारों को निम्नलिखित में से किसके द्वारा पहचाना जा सकता है?
(अ) DNA फिंगर प्रिंटिंग से (ब) DNA पुनः संयोजन तकनीक से
(स) जीन क्लोनिंग से (द) जीन चिकित्सा से।
उत्तर– (अ) DNA फिंगर प्रिंटिंग से।

(38) टर्नर सिण्ड्रोम में गुणसूत्रों की संख्या–
(अ) 44 (ब) 45
(स) 46 (द) 47
उत्तर– (ब) 45

(39) मंगोलियन या डाउन सिण्ड्रोम में क्रोमोसोम्स की संख्या–
(अ) 45 (ब) 46
(स) 44 (द) 47
उत्तर– (द) 47

(40) डाउन सिण्ड्रोम किस प्रकार की बीमारी है?
(अ) ऑटोसोमल (ब) सैक्स लिंक्ड
(स) वाइरल (द) बैक्टीरियल।
उत्तर– (अ) ऑटोसोमल।

(41) पिता A रुधिर वर्ग और माता B रुधिर वर्ग की हो तो इनकी सन्तानों में कौन–सा वर्ग सम्भव है?
(अ) चारों (ब) केवल AB
(स) केवल A (द) केवल O
उत्तर– (द) चारों

(42) स्टैगार्डकाट में DNA के छोर–
(अ) कोहेसिव होते हैं (ब) ब्लंट होते हैं
(स) प्लेन होते हैं (द) इनमें से कोई नहीं।

उत्तर– (अ) कोहेसिव होते हैं।

(43) pBR 322 क्या है?
(अ) जन्तु (ब) पादप
(स) वाइरस (द) वेक्टर।
उत्तर– (द) वेक्टर।

(44) जीन की सिंथेसिस होती है–
(अ) फॉस्फोडाईस्टर विधि से (ब) फॉस्फोट्राइईस्टर विधि से
(स) फॉस्फाइट ट्राईस्टर विधि से (द) तीनों से।
उत्तर– (द) तीनों से।

(45) PCR में निम्न की आवश्यकता होती है–
(अ) प्राइमर (ब) Taq पॉलीमरेस
(स) वांछित DNA (द) उपर्युक्त सभी की।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी की।

(46) इलेक्ट्रोपोरेशन में कोशा को अति उच्च वोल्टेज से कितने समय के लिये प्रभावित किया जाता है?
(अ) 1 घण्टे के लिये (ब) 1 मिनट के लिये
(स) कुछ सेकण्ड के लिये (द) कुछ मिली सेकण्ड के लिये।
उत्तर– (द) कुछ मिली सेकण्ड के लिये।

(47) PCR में निम्न की आवश्यकता होती है–
(अ) प्राइमर (ब) Taq पॉलीमरेस
(स) वांछित DNA (द) सभी की।
उत्तर– (द) सभी की।

(48) DNA का DNA से संकरण कराया जाता है–
(अ) नार्दर्न ब्लॉटिंग में (ब) सदर्न ब्लॉटिंग में
(स) वेस्टर्न ब्लॉटिंग में (द) सभी में।
उत्तर– (ब) सदर्न ब्लॉटिंग में।

(49) स्टैगार्डकाट में DNA के छोर–
(अ) कोहेसिव होते हैं (ब) ब्लंट होते हैं
(स) प्लेन होते हैं (द) इनमें से कोई नहीं।
उत्तर– (अ) कोहेसिव होते हैं।

(50) AB रुधिर वर्ग के रोगी को किस वर्ग के व्यक्ति का रुधिर दे सकते हैं?
(अ) A (ब) AB
(स) B (द) A, B, AB या O
उत्तर– (द) A, B, AB या O

(51) किस रुधिर वर्ग के व्यक्ति यूनिवर्सल डोनर होते हैं?
(अ) A (ब) B
(स) O (द) AB
उत्तर– (स) O

(52) pBR 322 क्या है?
(अ) जन्तु (ब) पादप
(स) वाइरस (द) वेक्टर।
उत्तर– (द) वेक्टर।

(53) जीन की सिंथेसिस होती है–
(अ) फॉस्फोडाइईस्टर विधि से (ब) फॉस्फोट्राइईस्टर विधि से
(स) फॉस्फाइट ट्राईईस्टर विधि से (द) तीनों से।
उत्तर– (द) तीनों से।

(54) PCR में निम्न की आवश्यकता होती है–
(अ) प्राइमर (ब) Taq पॉलीमेरस
(स) वांछित DNA (द) उपर्युक्त सभी की।
उत्तर– (द) उपर्युक्त सभी की।

❑❑❑

कृपया ध्यान दें

VVP **विश्वविद्यालय प्रकाशन, ग्वालियर** द्वारा प्रकाशित **बी.ए., बी.कॉम. तथा बी.एस-सी.** की '**20 प्रश्न**' पुस्तकें खरीदते समय **प्रत्येक पेज पर 2024 छपा देखकर सही तथा असली पुस्तक** ही खरीदें। बी.ए., बी.कॉम. तथा बी.एस-सी. अंग्रेजी माध्यम में भी प्रकाशित हैं।